ब्रह्मसूत्राणि ।

श्रीमन्महर्षिवर्यव्यासप्रणीतानि ।

श्रीमन्मौक्तिकनाथयोगिविरचित-

ब्रह्मसूत्रसारार्थदीपिकानाम-

भाषाटीकासहितानि ।

तानि च

क्षेमराज-श्रीकृष्णदासश्रेष्ठिना

मुम्बय्यां

स्वकीये "श्रीवेङ्कटेश्वर" (स्टीम) मुद्रणयन्त्रालये

मुद्रयित्वा प्रकाशितानि ।

संवत् १९६६, शके १८३१.

भूमिका।

प्रिय पाठकगण ! इस महादुःखसागररूप संसारके विषे धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष इन चारों पुरुषार्थोंकी इच्छा कौन नहीं करते हैं उनमें भी जो अतिउत्तम संस्कारवाले भव्य पुरुष हैं वे अध्यात्म, अधिभूत, अधिदैव इस त्रिविधतापरूप दुःखकी अत्यन्त निवृत्तिके अर्थ परमपुरुषार्थरूप मोक्षकीही इच्छा करते हैं और अत्यन्त दुःखनिवृत्तिरूप मोक्ष वेदान्तशास्त्रके श्रवण, मनन, निदिध्यासनादि साधनोंसे ही होता है और संस्कृत वेदान्तशास्त्रके श्रवण, मनन, निदिध्यासनादि साधनोंमें व्याकरणादि शास्त्रके संस्काररहित पुरुषोंकी प्रवृत्ति नहीं होसकती ऐसा विचार करके श्रीमन्महाराजाधिराज छत्रपति जोधपुर महाराजके पुराने दिवान श्रीयुत मुहुतोपाह्वय पूर्णचन्द्रात्मज भगवद्भक्तिविवेकादिसत्साधनसंपन्न सारासारविचारकठिनकुठारमारविदारिताशेषमहामोहान्धकार वैश्यजनसमूहाग्रगणनीय श्रीयुत मुहुता गणेशचंदजीकी प्रार्थनासे संवत १९५० में श्रीमच्छंकराचार्य भगवत्पूज्यपादकृत भाष्यके अनुसार यह **ब्रह्मसूत्रसारार्थप्रदीपिका**नाम श्रीमद्वेदव्यासभगवत्प्रणीत ब्रह्मसूत्रोंकी भाषाटीका बनायके प्रसिद्ध सेठ खेमराज श्रीकृष्णदासके अतिश्रेष्ठ "श्रीवेङ्कटेश्वर" स्टीम-प्रेसमें मुद्रित करायके सर्वसज्जनोंके अभिमुख मैंने निवेदित की थी, परन्तु उस प्रथम आवृत्तिमें हमारे दृष्टिदोषसे वा छापनेवालेके दृष्टिदोषसे कहीं २ अक्षर मात्राकी अशुद्धि रही थीं उन अशुद्धियोंको निकालके यह द्वितीय आवृत्ति बहुत शुद्ध कियी गई है और प्रथम आवृत्तिमें द्वादशसूत्रोंके पदच्छेद मैंने किये थे पीछे ग्रन्थवृद्धिके भयसे अग्रिमसूत्रोंके पदच्छेद नहीं किये थे अब बहुतसे सज्जन कहने लगे कि सब सूत्रोंके पदच्छेद होवें तो बहुत उपयोगी होवे इससे इस द्वितीय आवृत्तिमें सब सूत्रोंके पदच्छेद कर दिये हैं सो भव्य पुरुष देखेंगे और भूलचूक माफ करेंगे. यहभी ध्यान रहे कि, इस ग्रंथका पुनर्मुद्रणादि सर्वाधिकार "श्रीवेङ्कटेश्वर" (स्टीम) यन्त्रालयाध्यक्ष सेठ खेमराज श्रीकृष्णदास महोदयको दे दिया है । अन्य महाशय छापनेका इरादा न करें इत्यलम् ॥

श्रीमन्मौक्तिकनाथयोगीन्द्र.

अबकी बार तृतीयावृत्तिमें भी संशोधन कर उत्तम व्यवस्थासे इसका मुद्रण हुआहै । आशा है कि सज्जन महोदय इसे स्वीकार कर स्वयं लाभ उठावेंगे और मुझे भी कृतार्थ करेंगे ।

भवदीय कृपाकांक्षी
खेमराज श्रीकृष्णदास.
"श्रीवेङ्कटेश्वर स्टीम प्रेस-बंबई.

॥ श्रीः ॥

अथ ब्रह्मसूत्रविषयाऽनुक्रमणिका ।

प्रथमोऽध्यायः १.

सं० — विषय. — पृष्ठ.

प्रथमः पादः १.

१ ब्रह्मविचारकथन १
२ ब्रह्मको लक्ष्यत्वकथन ... २
३ ब्रह्मको वेदकर्तृत्व कथन ... ३
४ वेदान्तको ब्रह्मबोधकत्वकथन ४
५ प्रधानको जगत्कर्तृत्वाऽभावकथन ५–११
६ आनन्दमयकोशको परमात्मत्वकथन १२–१९
७ आदित्यान्तर्गत हिरण्मय पुरुषको ईश्वरत्व कथन २०–२१
८ परब्रह्मको आकाश शब्दवाच्यत्वकथन . . २२
९ ब्रह्मको आकाश शब्दकी न्याई प्राणशब्दवाच्यत्वकथन ... २३
१० परब्रह्मको ज्योतिश्शब्दवाच्यत्व कथन २४–२७
११ ब्रह्मको प्राणशब्दप्रतिपाद्यत्वकथन २८–३१

द्वितीयः पादः २.

१२ ब्रह्मको उपास्यत्वका कथन ... १–८
१३ ब्रह्मको जगत्कर्तृत्वकाकथन ... ९–१०
१४ चेतन जीव और ईश्वरको हृद्गुहागतत्वकाकथन ११–१२
१५ छाया और जीव और अन्यदेव इनका त्यागके परब्रह्मकोही उपास्यत्वका कथन १३–१७
१६ प्रधान और जीवसे इतर ईश्वरकोही अन्तर्यामि शब्द वाच्यत्वकाकथन १८–२०
१७ प्रधान और जीवके निराकरणपूर्वक ईश्वरको भूतयोनित्वका कथन २१–२३
१८ ब्रह्मको वैश्वानरशब्द वाच्यत्वका कथन २४–३२

तृतीयः पादः ३.

१९ सूत्रात्मा हिरण्यगर्भ प्रधानभोक्ता जीव ईश्वर इनके मध्यमें केवल ईश्वरकोही सर्वाधिष्ठानभूतत्वका कथन १–७
२० प्राण परेशके मध्यमें परेशकोही मन्यशब्दकरके श्रेष्ठत्वका कथन ८–९
२१ प्रणव और ब्रह्मके मध्यमें ब्रह्मकोही अक्षर शब्द वाच्यत्वका कथन १०–१२
२२ अपर और परब्रह्मके मध्यमें परब्रह्मकोही त्रिमात्रप्रणव करके ध्येयत्वका कथन १३
२३ दहराकाशकरके प्रतीयमान वियत् जीव ब्रह्म इनके मध्यमें ब्रह्मकोही दहराकाशवाच्यत्वका कथन... १४–१८

सं०	विषय.	पृष्ठ.
२४	अक्षिपुरुष करके प्रतीयमान जीव परेशके मध्यमें परेशकोही तत्पद वाच्यत्वका कथन	१९-२१
२५	जगत्प्रकाशत्व करके प्राप्त भया सूर्यादि तेजःपदार्थ चैतन्यके मध्यमें चैतन्यकोही तत्प्रकाशत्वका कथन	२२-२३
२६	जीवात्मा परमात्माके मध्यमें परमात्माकोही अंगुष्ठमात्र पुरुष शब्दवाच्यत्वका कथन ...	२४-२५
२७	देवतोंको निर्गुणाविद्याके विषे अधिकारका कथन	२६-३३
२८	शूद्रको वेदानधिकारकथनपूर्वक शोकाऽऽकुलताकरके शूद्र नाममात्रधारी जानश्रुति राजाको वेदविद्याकी प्राप्तिका कथन ...	३४-३८
२९	प्राणशब्दकरके वज्र वायु परेश इनके मध्यमें परेशकोही प्राणशब्दवाच्यत्वका कथन	३९
३०	ब्रह्मको परज्योतिष्का कथन	४०
३१	ब्रह्मको आकाश शब्द वाच्यत्व का कथन	४१
३२	ब्रह्मको विज्ञानमयशब्द वाच्यत्वका कथन	४२-४३

चतुर्थः पादः ४

सं०	विषय.	पृष्ठ.
३३	कारणावस्थाको प्राप्त हुये स्थूल शरीरकोही अव्यक्त शब्द वाच्यत्वका कथन	१-७
३४	श्रुतिप्रमित प्रकृति और स्मृतिसंमत प्रधानके मध्यमें तादृश प्रकृतिकोही अजाशब्दवाच्यत्वका कथन	८-१०
३५	प्राण चक्षु श्रोत्र मन अन्न इनको पञ्चपञ्चजनशब्दवाच्यत्वका कथन	११-१३
३६	ब्रह्मप्रतिपादक वेदान्तवाक्यसमन्वयको युक्तियुक्तत्वका कथन	१४-१५
३७	प्राण जीव परमात्माके मध्यमें परमात्माकोही समस्त जगत्कर्तृत्व करके बालाकि करके ब्रह्मत्वेन उक्त षोडश पुरुषको कर्तृत्वका निराकरण	१६-१८
३८	संशयित जीव परमात्माके मध्यमें परमात्माकोही श्रवण मननादि विषयीकृतत्वका कथन ...	१९-२०
३९	ब्रह्मको निमित्त उपादान उभय कारणत्वका कथन . . .	२१-२६
४०	अत्युक्त परमाणु शून्यादिकोंको जगत्कारणत्वनिराकरणपूर्वक ब्रह्मकोही जगत्कारणत्व कथन	[illegible]

इति प्रथमोऽध्यायः ॥

द्वितीयोऽध्यायः २.

प्रथमः पादः १.

सं०	विषय.	पृष्ठ.
४१	सांख्यस्मृतिकरके वेदसंकोचको अयुक्तत्वकथन	१-२
४२	योगस्मृति करके वेदसंकोचको अयुक्तत्व कथन	[illegible]
४३	वैलक्षण्यादि युक्तिद्वाराऽपि वेदान्तवाक्यको अबाधत्वका कथन	४-११
४४	काणाद बौद्धादिकोंकी स्मृतियुक्तिकरके भी वेदान्तवाक्यको अबाध्यत्वका कथन	१२

सं०	विषय.	पृष्ठ.
४५	भोक्तृ भोग्य भेदवाले परब्रह्मकोभी अबाध्य अद्वैतत्वका-कथन	१३
४६	ब्रह्मके विषे भेद अभेदको व्यावहारिकत्व और अद्वैतत्वको पारमार्थिकत्वका कथन ...	१४–२०
४७	सर्वज्ञता करके जीव और संसारको मिथ्या और अपनेको निर्लेप देखनेवाले परमेश्वरको हिताहितभाग्दोषभावका कथन	२१-२३
४८	अद्वितीय ब्रह्मकोभी क्रमकरके नानाकार्यसृष्टिकी संभावनाका कथन	२४–२५
४९	ईश्वरको उपादानरूप परिणामिकारणत्वका व्यवस्थापन ...	२६–२९
५०	ईश्वरको अशरीरी होनेपरभी मायावित्व कथन	३० ३१
५१	नित्यतृप्त ईश्वरकोभी प्रयोजनके विना अशेष जगतके उत्पादकत्वका कथन....	३२–३३
५२	कर्म करके नियंत्रित जीवको सुख दुःखका निमित्तमात्र और जगतके संहारका कर्ता जो ईश्वर तिसको नैर्घृण्य दोषाभावका कथन	३४–३६
५३	निर्गुणब्रह्मकोभी विवर्त्तरूप करके प्रकृतित्व सिद्धि	३७

द्वितीयः पादः २

सं०	विषय.	पृष्ठ.
५४	सांख्यानुमतप्रधानको जगद्धेतुत्वखण्डन	१–१०
५५	असदृशोद्भवमें काणाद दृष्टान्तको अस्तित्व	११
५६	परमाणुसंयोगकरके जगदुत्पत्तिको युक्ति विरुद्धत्व ...	१२–१७
५७	ईश्वरसे भिन्न और बाह्यवस्तु अस्तित्ववादि बौद्धविशेषोंके सम्मत जो परमाणु और शब्दस्पर्शादिक तिनको जगदुत्पादकत्वमतखण्डन	१८–२७
५८	विज्ञानवादिबौद्धसंमत विज्ञानको जगत्कर्तृत्वादि खण्डन...	२८–३२
५९	जीवादि सप्तपदार्थवादी बौद्धके मतका खंडन...	३३–३६
६०	तटस्थ ईश्वरवादको अयुक्तत्वकथन	३७–४१
६१	जीवोत्पत्त्यादिकोंको अयुक्तत्वकथन	४२–४५

तृतीयः पादः ३

सं०	विषय.	पृष्ठ.
६२	वेदान्तवादीके मतमें आकाशको अनित्यत्वकथन	१–७
६३	स्वरूपवाले ब्रह्मसे वायुकी उत्पत्तिका कथन	८
६४	चिद्रूपब्रह्मको अनन्यत्व और जगज्जनकत्वकथन	९
६५	कार्यकारणके अभेदकरके वायुभूतब्रह्मसे तेजकी सृ० क० ...	१०
६६	वेदोक्त तेजोरूप ब्रह्मसे जलोत्पत्तिका कथन...	११
६७	छान्दोग्यउपनिषद्में उक्त जलसे उत्पन्न भये अन्नको पृथिवीत्वका कथन	१२
६८	पूर्वपूर्वकार्योपाधिक ब्रह्मसे उत्तरोत्तरकार्योत्पत्तिकथन ...	१३

सं०	विषय.	पृष्ठ.
६९	लयकालमें पृथिव्यादिकोंके विपरीत क्रमका कल्पन कथन ...	१४
७०	प्राणादिकोंका भूतोंके विषे अन्तर्भाव होनेसे तिनकी सृष्टिक्रमका भंग नहीं	१५
७१	देहके जन्ममरणको मुख्य होनेसे जीवको तिनकी गौणता ...	१६
७२	जीवके जन्मको औपाधिक होनेसे जीवको वस्तुतो नित्यत्व	१७
७३	जीवको अचिद्रूपत्वखंडनपूर्वक चिद्रूपत्वका कथन .	१८
७४	जीवको अणुत्वखंडनपूर्वक सर्वगतत्वका कथन .	१९–३२
७५	जीवको अकर्तृत्वखंडन पूर्वक कर्तृत्वप्रतिपादन	३३–३९
७६	जीवकर्तृत्वको अध्यस्त होनेसे अवास्तवत्वकथन .. .	४०
७७	जीवको ईश्वर करके प्रवृत्त होनेसे रागप्रवृत्तत्वाभाव	४१–४२
७८	औपाधिक कल्पनाकरके जीव ईशकी और जीवोंकी परस्पर व्यवहारव्यवस्था	४३–५३

चतुर्थः पादः ४.

सं०	विषय.	पृष्ठ.
७९	इन्द्रियोंको अनादित्वखंडनपूर्वक आत्मसमुत्पन्नत्वकथन ..	१–४
८०	इन्द्रियोंकी एकादश संख्या वेदान्तसम्मत....	५–६
८१	सांख्यमतमें इन्द्रियोंको सर्वगतत्वनिराकरणपूर्वकपरिच्छिन्नत्वका कथन	७
८२	प्राणको अनादित्व खंडनपूर्वक तिसकी उत्पत्तिका समाधान	८
८३	प्राणवायुको स्वतंत्रताका कथन	९–१२
८४	प्राणको समष्टिरूपकरके आधिदैविकी विभुता और आध्यात्मिकी अल्पता अदृश्यता च इन्द्रियवत् . .	१३
८५	इन्द्रियगणको देवविशेषाधीनत्व कथन	१४–१६
८६	विलक्षण होनेसे प्राणसे इन्द्रियको पृथक्त्व कथन	१७–१९
८७	सर्वजगतके रचनेमें जीवको अशक्त होनेसे और ईशको सर्वशक्तिमान होनेसे ईशकोही जगत्कर्तृत्व कथन	२०–२२

इति द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

तृतीयोऽध्यायः ३.

प्रथमः पादः १.

सं०	विषय.	पृष्ठ.
८८	भावि शरीर बीजरूप सूक्ष्मभूतवेष्टित जीवका यहांसे गमन.. .	१–७
८९	कर्मान्तरकरके सानुशय जीवका लोकान्तरसे आरोहण	८–१२
९०	पापियोंका यमलोकमें गमन	१३–२१
९१	अवरोही जीवको वियदादि समानत्वकथन	२२
९२	स्वर्गसे अवतरणकालमें स्वर्ग वृष्टि पृथिवी पुरुष योषित् इनके विषे क्रमसे उत्पन्न जीवका स्वर्ग और वृष्टिमें जो जन्म तिससे त्वरा इतरके विषे विलंब	२३

सं०	विषय.	पृष्ठ.
१२०	ब्रह्मज्ञानीको नियमसे मुक्ति नतुपाक्षिकी...	३२
१२१	आत्मस्वरूपलक्षकनिषेधाका परस्परमें उपसंहर्त्तव्यत्व ...	३३
१२२	ऋतंपिबंतौ इस मंत्रमें और द्वासुपर्णा इस मंत्रमें एकवेद्य	३४
१२३	एक शाखामें स्थित उषस्त कहोल ब्राह्मणमें एकविद्या कथन	३५–३६
१२४	उपासनाके अर्थ पृथक् होनेतैं उपास्यका द्विविधज्ञान	३७
१२५	सत्यविद्याको एकत्व प्रतिपादन	३८
१२६	दहराकाश और हार्दाकाशको उपसंहर्त्तव्यत्व	३९
१२७	उपासकके भोजनमें प्राणाहुतिके लोपकी आपत्ति ...	४०–४१
१२८	उद्गीथकर्मकी अंगीभूत देवतोपासनाको अनियतत्व ...	४२
१२९	संवर्गविद्योक्त आधिदैव वायु और अध्यात्मप्राणके अनुचिन्तनको पृथक्त्व कथन	४३
१३०	मनश्चिदादिकोंका स्वतंत्र विद्यात्वका स्वीकार	४४–५२
१३१	भौतिकको आत्मत्वखंडनपूर्वक तदन्यको आत्मत्वप्रति०	५३–५४
१३२	ऐतरेयगत उक्थउपासनामें पृथिव्यादिदृष्टिके कौषीतकीमें समानता	५५–५६
१३३	विराटरूप समग्र वैश्वानरको ध्यातव्यत्व है तिसके अंशको नहीं....	५७
१३४	अनुष्ठानके योग्य शांडिल्यदहरादि विद्याको वेद ब्रह्मको भिन्न होनेतैं भिन्नत्व कथन...	५८
१३५	आत्माकी सगुण उपासनामें एककी वा दोकी वा बहुतकी उपासनाका वैकल्पिक नियम कथन	५९
१३६	विकल्प करके वा समुच्चय करके प्रतीक उपासनाको ऐच्छिकत्व	६०
१३७	विकल्प और समुच्चयको यथाकामता	६१–६६

चतुर्थः पादः ४.

सं०	विषय.	पृष्ठ.
१३८	आत्मज्ञानको स्वतंत्रत्व है अन्यर्थत्व नहीं और ऊर्ध्वरेताके आश्रमको अस्तित्वव्यवस्थापन	१–१७
१३९	लोककी कामनावाले आश्रमीको ब्रह्मनिष्ठत्वकी अयोग्यता	१८–२०
१४०	उद्गीथाऽवयव ओंकारको स्तुत्यत्व	२१–२२
१४१	औपनिषदके आख्यानको विद्यास्तावकत्व	२३–२४
१४२	आत्मबोधको कर्माऽनपेक्षत्व	२५
१४३	विद्याको स्वोत्पत्तिमें कर्मापेक्षत्व	२६–२७
१४४	आपत्कालमें सर्वाऽन्नभक्षण	२८–३१
१४५	विद्याके अर्थ आश्रमके धर्म यज्ञादिकोंका सुकृत अनुष्ठान	३२–३५
१४६	अनाश्रमीको ज्ञानकी संभावना	३६–३९
१४७	आश्रमीको अवरोहाऽभावनिरूपण	४०
१४८	भ्रष्ट ऊर्ध्वरेताको प्रायश्चित्तका सद्भाव	४१–४२

सं०	विषय.	पृष्ठ.
१४९	भ्रष्ट ऊर्ध्वरेताके प्रायश्चित्तको आमुष्मिकशुद्धिजनकत्व और तादृश शुद्धिवालेको व्यवहाराऽयोग्यत्व	४३
१५०	उपासनाको ऋत्विककर्मत्वकथन	४४–४६
१५१	मौनको विधेयत्वकथन ...	४७–४९
१५२	बाल्यको भावशुद्धित्व और कामचारत्वाऽभाव	५०
१५३	इस जन्ममें वा जन्मान्तरमें ज्ञानोत्पत्ति	५१
१५४	सालोक्यादि मुक्तिको जन्य होनेतें सातिशयत्व और निर्वाण मुक्तिको निरतिशयत्व	५२

इति तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

चतुर्थोऽध्यायः ४:

प्रथमः पादः १.

सं०	विषय.	पृष्ठ.
१५५	श्रवणादिकोंको आवर्तनीयत्व	१–२
१५६	ज्ञाता जीवके स्वात्मता करके ब्रह्मका ग्रहण	३
१५७	प्रतीककेविषे अहंदृष्टिकाअभाव	४
१५८	अब्रह्म प्रतीकके विषे ब्रह्मदृष्टिकर्त्तव्यत्व	५
१५९	कर्मके अंगमें आदित्यादि दृष्टिको कर्त्तव्यत्व	६
१६०	उपासनामें आसनका नियम	७–१०
१६१	ध्यानके साधन ऐकाग्र्यको प्रधान होनेतें दिग्देशकालका अनियम	११
१६२	उपासनाकी मरणपर्यंत आवृत्ति	१२
१६३	ज्ञानीका पापलेपका अभाव	१३
१६४	ज्ञानीको पुण्यलेपका अभाव	१४
१६५	जैसेज्ञानोदयकालमें संचित पुण्यपापका नाश होता है तैसे आरब्ध पुण्यपापके नाशका अभाव	१५
१६६	अग्निहोत्रादि नित्यकर्मका विद्योपयोगी जो अंश तिसकाअविनाश	१६–१७
१६७	सोपासन और निरुपासन जो नित्यकर्म तिसको तारतम्यता करके विद्यासाधनत्व ...	१८
१६८	अधिकारीको मुक्तिका सद्भाव	१९

द्वितीयः पादः २.

सं०	विषय.	पृष्ठ.
१६९	मनके विषे वागादिकोंकी वृत्तिका लय है स्वरूपसे नहीं....	१–२
१७०	प्राणके विषे मनकी वृत्तिका लय	३
१७१	प्राणका जीवमें लय पुनः भूतोंमें लय	४–६
१७२	ज्ञानी और अज्ञानीकी उत्क्रान्ति सम	७
१७३	तेजआदिकोंका वृत्तिद्वारा परमात्मामें लय	८–११
१७४	देहमें प्राणोत्क्रान्तिका निषेध	१२–१४
१७५	तत्त्वज्ञानीके वागादिकों का परमात्मामें लय	१५
१७६	तत्त्वज्ञानीके वागादिकोंका निःशेष करके परमात्मामें लय...	१६
१७७	उपासककी उत्क्रान्तिकी विशेषता	१७
१७८	रात्रिमें मरणवालेको भी रश्मिकी प्राप्ति	१८–१९
१७९	दक्षिणायनमें मरे उपासकको ज्ञानफलकी प्राप्ति	२०–२१

सं०	विषय.	पृष्ठ.
	तृतीयः पादः ३.	
१८०	अर्चिरादि ब्रह्मलोकमार्गकी एकता	१
१८१	संवत्सर और आदित्यके मध्यमें देवलोक वायुलोकका सन्निवेश	२
१८२	वरुणादिकोंके सन्निवेशसे अर्चिरादि मार्गका व्यवस्थापन	३
१८३	अर्चिरादिकोंको आतिवाहिकत्व...	
१८४	उत्तरमार्ग करके काय ब्रह्मके प्रति गमन	७–१४
१८५	प्रतीकोपासकको ब्रह्मलोककी अप्राप्ति	१५–१६
	चतुर्थः पादः ४.	
१८६	मुक्तिरूपवस्तुकोपुरातनत्व....	१–३
१८७	मुक्तपुरुषको ब्रह्मसे अभिन्नत्व	
१८८	मुक्त स्वभूत ब्रह्मको युगपत्सविशेषत्व निर्विशेषत्व ...	५–७
१८९	अर्चिरादि मार्ग करके ब्रह्मलोकको प्राप्त भये उपासकके भोग्यवस्तुकी सृष्टिमें मानस संकल्पकोही हेतुता ...	८–९
१९०	एक पुरुषकोभी देहके भाव अभावमें ऐच्छिकत्व	१०–१४
१९१	सर्वदेहोंको सात्मकत्व ...	१५–१६
१९२	ब्रह्मलोकमें गये उपासकको जगत्सृष्टिके विषे स्वतंत्रता नहीं परंतु भोग मोक्षमें स्वतंत्रताहै	१७–२२

इति चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

॥ इति ब्रह्मसूत्रविषयाऽनुक्रमणिका ॥

ॐ

अथ ब्रह्मसूत्राणि.

भाषाटीकासहितानि ।

प्रथमोऽध्यायः १.

प्रथमः पादः ।

ॐ-अथातो ब्रह्मजिज्ञासा ॥ १ ॥

प्रणम्य सच्चिदानंदं गुरुं चाज्ञाननाशकम् ॥
सारार्थं ब्रह्मसूत्राणां कथयामि यथामति ॥ १ ॥

इस सूत्रके-अथ१अतः२ब्रह्मजिज्ञासा३यह तीन पद हैं ॥ अथ शब्दका आनंतर्य अर्थ है । अतः शब्दका हेतु अर्थ है । ब्रह्मजिज्ञासा शब्दका अर्थ ब्रह्मको विषय करनेवाली इच्छा है । कर्तव्य पदका अध्याहार करना ॥ तथाच ॥ यस्मात् अग्निहोत्रादिकोंका फल जो स्वर्गादिक सो अनित्य है तस्मात धर्मजिज्ञासाके अनंतर अथवा साधनसंपत्तिके अनंतर ब्रह्मकी जिज्ञासा (जाननेकी इच्छा) करनी अथवा ब्रह्मका विचार करना यह सूत्रका सारार्थ है ॥ १ ॥

प्रथम सूत्रमें कहा है कि ब्रह्मकी जिज्ञासा मुमुक्षु पुरुषको करने-योग्य है तिस ब्रह्मका लक्षण क्या है अतः भगवान् सूत्रकार ब्रह्मका तटस्थ लक्षण कहते हैं ॥

जन्माद्यस्य यतः ॥ २ ॥

इस सूत्रके–जन्मादि १ अस्य२ यतः ३ यह तीन पद हैं ॥ जन्म शब्दका अर्थ उत्पत्ति है । आदि शब्दसे स्थिति और प्रलय गृहीत होते हैं । अस्य इस पदका अर्थ नामरूपात्मक संपूर्ण जगत् है ॥ यतः यह कारणका निर्देश है ॥ तथाच ॥ नामरूपात्मक संपूर्ण जगत्का जन्म स्थिति प्रलय (यतः) जिस सर्वज्ञ सर्वशक्तिमान् कारणरूप परमेश्वरसे होतेहैं सो ब्रह्महै । यह सूत्रका सारार्थ है और इसी अर्थको "यतो वा इमानि भूतानि जायंते येन जातानि जीवंति यत्प्रयंत्यभिसं विशंति" ॥ यह श्रुति भी कहती है । इसका अर्थ यह है कि जिस कारण रूप परमेश्वरसे यह भूत(प्राणी) उत्पन्न होतेहैं और जिस करके जीवते हैं और जिसको प्राप्त होके लीन होते हैं सो ब्रह्म है ॥ २ ॥

पूर्व जो कहा कि नामरूपात्मक सर्व जगत्का कारण सर्वशक्तिमान् ब्रह्म है इसी अर्थको दृढ करते हैं भगवान् सूत्रकार ॥

शास्त्रयोनित्वात् ॥ ३ ॥

इस सूत्रका–शास्त्रयोनित्वात् १ यह एकही समस्त[1] पद है॥अनेक विद्याका स्थानभूत और सर्व अर्थका प्रकाशक जो महान् ऋग्वेदादि शास्त्र तिसका योनि (कारण) ब्रह्म है. ऐसे ऋग्वेदादि शास्त्रका सर्वज्ञ ब्रह्मके विना अन्य कोईभी कारण नहीं होसकता॥अथवा ऋग्वेदादि शास्त्रही ब्रह्मसद्भावमें योनि (कारण) अर्थात् प्रमाण है ॥ ३ ॥

ब्रह्ममें वेद प्रमाण नहीं होसकता,काहेतें वेद यज्ञादि क्रियाको तथा उपासनाको कहता है और ब्रह्म सिद्धवस्तु है, तिसको वेद प्रतिपादन करे नहीं । इस पूर्वपक्षको दूर करते हैं भगवान् सूत्रकार ॥

तत्तु समन्वयात् ॥ ४ ॥

इस सूत्रके–तत् १ तु२ समन्वयात् ३ यह तीन पद हैं॥ तु शब्दका

१ व्याकरण रीतिसे समास किये पदको समस्त कहते हैं ।

अर्थ पूर्वपक्षकी निवृत्ति है । तत्शब्दका अर्थ जगत्की उत्पत्ति स्थिति लयका कारण सर्व शक्तिमान् ब्रह्म है। समन्वयात् इस पदका अर्थ सर्व वेदान्त वाक्योंका तात्पर्यसे ब्रह्ममें संबंधहै॥तथा च ॥(तत) जगत्की उत्पत्ति स्थिति लयका कारण सर्व शक्तिमान् ब्रह्म वेदांत शास्त्रसे प्राप्त होता है ॥ कथम् ? (कैसे) (समन्वयात्) सर्व वेदांत वाक्योंका तात्पर्य करके ब्रह्ममें संबंध होनेतें ॥ ४ ॥

सांख्यशास्त्रवादी त्रिगुणात्मक अचेतन प्रधान प्रकृतिको जगत्का कारण मानते हैं तिनका मत दूर करते हैं भगवान् सूत्रकार ॥

ईक्षतेर्नाशब्दम् ॥ ५ ॥

इस सूत्रके—ईक्षतेः १ न २ अशब्दम् ३ यह तीन पद हैं॥ ईक्षतेः इस पदका अर्थ ईक्षण (संकल्प) है । न शब्दका अर्थ निषेध है । अशब्दम् इस पदका अर्थ इहां प्रधान है ॥ तथा च ॥ (अशब्दम्) प्रधानप्रकृति जगत्का कारण ।(न)नहीं है कथम्—(ईक्षतेः)"तदैक्षत बहु स्यां प्रजायेय" इत्यादि श्रुतिमें ईक्षणका श्रवण होनेतें ईक्षण चेतनमें होता है अचेतन प्रधानमें नहीं होसकता । श्रुतिका अर्थ यह है । तत् । सत शब्दवाच्य कारण ब्रह्म ईक्षण करता भया मैं बहु प्रपंचरूप करके उत्पन्न होओं इति ॥ ५ ॥

पूर्व जो कहा कि अचेतन प्रधान जगतका कारण नहीं हो सकता है।ईक्षणका श्रवण होनेतें।सो ईक्षण जैसे "तत्तेज ऐक्षत"सो तेज ईक्षण करता भया इति श्रुत्यर्थः ॥ इस श्रुतिवाक्यमें उपचारमात्रसे अर्थात् अमुख्यतासे अचेतन तेजमें ईक्षणप्रतीत होताहै तैसे अचेतन प्रधान में भी हो सकता है इस शंकाको दूर करते हैं भगवान् सूत्रकार ॥

गौणश्चेन्नात्मशब्दात् ॥ ६ ॥

इस सूत्रके—गौणः १ चेत् २ न ३ आत्मशब्दात् ४ यह चार पदहैं॥ गौण शब्दका अर्थ अमुख्यता है । चेत् शब्दकाअर्थ यदिहै । न शब्द

का अर्थ निषेध है । आत्मशब्दात् इस पदका अर्थ हेतु है॥तथा च ॥ (चेत्) यदि अचेतन तेजकी न्याईं सांख्यवादी अचेतन प्रधानमेंभी (गौणः) अमुख्य ईक्षण कहें सो (न) कहिये नहीं हो सकता है । कस्मात् काहेतें (आत्मशब्दात्) ईक्षणका मुख्य कर्ता ब्रह्महै तिस ब्रह्ममें ही चेतन जीव रूप करके आत्मशब्दका प्रयोग होनेतें॥६॥

पूर्व जो कहा कि आत्मशब्दका प्रयोग अचेतनमें नहीं हो सकताहै किंतु जीव चेतनमें होता है सो समीचीन नहीं,काहेतें आत्मशब्दका प्रयोग चेतन और अचेतन दोनोंमें साधारण होनेतें । जैसे इंद्रियात्मा इस वाक्यमें आत्मशब्दका प्रयोग अचेतन इंद्रियमें है तैसें अचेतन प्रधानमेंभी हो सकता है इत्याशंक्याह ॥

तन्निष्ठस्य मोक्षोपदेशात् ॥ ७॥

इस सूत्रके—तन्निष्ठस्य १ मोक्षोपदेशात् २ यह दो पद हैं ॥ तन्निष्ठस्य इसपदका अर्थ सत्पदार्थ ब्रह्मविषे अभेद ज्ञानवान् पुरुष है । मोक्षोपदेशात् इस पदका अर्थ मोक्षका उपदेश है ॥ तथा च ॥ सत्पदार्थ ब्रह्मविषे अभेद ज्ञानवाले पुरुषको मोक्षका उपदेश कथन है । और प्रधान सत् शब्दका वाच्य नहीं है ॥ ७ ॥

प्रधान सत् शब्दका वाच्य क्यों नहीं है अत आह ॥

हेयत्वावचनाच्च ॥ ८ ॥

इस सूत्रके—हेयत्वावचनात्१च२यह दो पदहैं ॥ हेयत्व जो त्याग तिसका अवचन नहीं कहना यह हेयत्वावचानात् इस पदका अर्थ है। च शब्दका अर्थ प्रतिज्ञाविरोधहै ॥ तथाच ॥ यदि अनात्मा प्रधान सत् शब्दका वाच्य होवे तो जैसे कोई पुरुष किसीको अरुन्धती दिखावे सो प्रथम तिसके समीप स्थूलतारेको दिखायके पीछे तिसका त्यागकरायके अरुंधती दिखाताहै।तैसे स आत्मा तत्त्वमसि

इत्यादि वाक्योंमें आत्माको बतायके पीछे तिसका त्याग करायके प्रधानकों बताया चाहिये और नहीं बताता है। और जो आत्मा का त्याग करावे तो प्रतिज्ञाविरोध होवे। कारण कि ज्ञानसे सर्व कार्यका ज्ञान होता है यह प्रतिज्ञा है जैसें सुवर्णके ज्ञानसे सुवर्णके कार्य कुण्डलादिकोंका ज्ञान होता है तैसे प्रधानके ज्ञानसे सर्व जगत्का ज्ञान होना चाहिये और होता नहीं है ॥ ८ ॥

प्रधान शब्दका वाच्य कैसे नहीं है अत आह भगवान् सूत्रकारः ॥

स्वाप्ययात् ॥ ९ ॥

इस सूत्रका–स्वाप्ययात् १ यह एकही समस्त पद है ॥ तथाच ॥ सुषुप्ति अवस्था विषे स्व कहिये जीवात्मका सत् शब्द वाच्य परमात्मामें (अप्यय लय) होताहै। और जिसमें जीवात्मा लीनहोता है सो सत् शब्दका वाच्य है और जगत्का करण-है प्रधान करण नहीं है ॥ ९ ॥

प्रधान जगत्का कारण क्यों नहीं है अत आह।

गतिसामान्यात् ॥ १० ॥

इस सूत्रका–गतिसामान्यात् १ यह एकही समस्त पद है॥जैसे सर्व नेत्रोंसे एकरूपकाही समान अवगति (ज्ञान) होता है तैसे सर्व वेदांत शास्त्रसे समान एक चेतन कारणकीही अवगति (ज्ञान) होता है। इसीसे सर्वज्ञ ब्रह्म जगत्का कारण है ॥ १० ॥

सर्वज्ञ ब्रह्म जगत्का कारण कैसे है अत आह ॥

श्रुतत्वाच्च ॥ ११ ॥

इस सूत्रके–श्रुतत्वात् १ च २ यह दो पद हैं ॥ श्रुतत्वात् इस पदका अर्थ श्रवणहै। च शब्द पुनः अर्थको कहताहै॥ तथा च॥(च)पुनः सर्वज्ञ ईश्वर जगत्का कारण है ॥ क्योंकि श्वेताश्वतरमंत्रोपनिषद्के विषे श्रवण होनेतें ॥ ११ ॥

तैत्तिरीय उपनिषद्के विषे अन्नमय १ प्राणमय २ मनोमय ३ विज्ञानमय ४ आनंदमय ५ यह पंचकोश कथन करेहैं। तहां संशय होताहै कि,आनंदमय शब्दसे मुख्य आत्माका ग्रहणहै अथवा अन्नमयादिकोंकी न्याईं अमुख्य आत्माका ग्रहणहै ? अत आह सूत्रकार ॥

आनंदमयोभ्यासात् ॥ १२ ॥

इस सूत्रके-आनंदमयः१अभ्यासात्२यह दो पद हैं॥आनंदमय शब्दका अर्थ इहां मुख्य परमात्मा है॥अभ्यास शब्दका अर्थ वारंवार कथन है॥तथा च ॥ आनंदमय नाम मुख्य परमात्माका है कस्मात् अभ्यासात्"आनंदं ब्रह्मणो विद्वान्न बिभेति कुतश्चन ॥आनंदो ब्रह्मेति व्यजानात्२"इत्यादि बहुत श्रुतियोंके विषे आनंद शब्दका वारंवार कथन होने तें । यह इस सूत्रका सारार्थ है ॥ और प्रथम श्रुतिका अर्थ यह है कि ब्रह्मके आनंदको जाननेवाला विद्वान् किसीसे भी भय नहीं करताहै । १ । द्वितीय श्रुतिका-जो आनंदहै सो ब्रह्म जानना यह अर्थ है ॥ १२ ॥

शंका और समाधानका विधायक सूत्र कहतेहैं ॥

विकारशब्दान्नेति चेन्न प्राचुर्यात् ॥ १३ ॥

इस सूत्रके-विकारशब्दात्१ न २ इति ३ चेत्४न५प्राचुर्यात्६यह छह पद हैं॥आनंदमय शब्दसे परमात्माका ग्रहण(न) नहीं हो सकता कस्मात् (विकारशब्दात्) आनंद शब्दके अगाडी व्याकरण सूत्रसे विकार अर्थके विषे मयट् प्रत्यय होनेतैं॥आनंदमय नाम विकारवान्का है और परमात्मा विकारवान् नहीं है॥(इति चेन्न) ऐसे न कहो । कस्मात् (प्राचुर्यात्) प्रचुर अर्थके विषे मयट् प्रत्यय होने तैं ॥ आनंदमय नाम प्रचुर (बहुत) आनंदवाले परमात्माका है ॥ १३ ॥

इसी अर्थको दृढ करतेहैं ॥

तद्धेतुव्यपदेशाच्च ॥ १४ ॥

इस सूत्रके—तद्धेतुव्यपदेशात् १ च२ यह दो पद हैं॥जैसे इहां प्राचुर्य अर्थके विषे मयट् प्रत्यय है तैसेही "एष ह्येवानंदयाति" इत्यादि श्रुति ब्रह्मको आनंद हेतुका व्यपदेश कथन करती है यह इस सूत्रका सारार्थ है ॥ श्रुतिका अर्थ यह है कि यह परमात्मा सर्वको आनंद देताहै ॥ अर्थात सर्वके आनंदका हेतु परमात्मा है इति ॥ १४ ॥

मांत्रवर्णिकमेव च गीयते ॥ १५ ॥

इस सूत्रके मांत्रवर्णिकम्१एव २ च ३ गीयते ४ यह चार पद हैं॥ "सत्यं ज्ञानमनंतं ब्रह्म" । इस मंत्रके विषे । सत्य १ ज्ञान २ अनंत ३ इन विशेषणों करिके जो ब्रह्म निश्चित भया है सो(मांत्रवर्णिकम्) ब्रह्म है, सो ब्रह्म आनंदमय शब्द करके (गीयते) कथन करिये है ॥ १५ ॥

नेतरोनुपपत्तेः ॥ १६ ॥

इस सूत्रके—न १ इतरः२अनुपपत्तेः ३ यह तीन पद हैं॥ ईश्वरसे इतर अन्य संसारी जीवात्माकाआनंदमय शब्द करके कथन नहीं हो-सकता[१] । कस्मात् (अनुपपत्तेः) "सोऽकामयत बहुस्यां प्रजायेय" इत्यादि श्रुति आनंदमयकोही जगत्का कर्ता कहती है। सो जगत्का कर्तृत्वपना जीवात्माके विषे अनुपपन्न है यह इस सूत्रका सारार्थ है॥ और श्रुतिका अर्थ यह है कि सो आनंदमय परमात्मा इच्छा करता भया मैं बहु प्रपंचरूप करके उत्पन्न होओं इति ॥ १६ ॥

भेदव्यपदेशाच्च ॥ १७ ॥

इस सूत्रके—भेदव्यपदेशात् १ च२यह दो पद हैं॥ (च)पुनःआनंदमय संसारी जीव नहीं है। कस्मात्(भेदव्यपदेशात्) आनंदमय

१ बनता नहीं ।

प्रकरणके विषे "रसो वै सः । रसं ह्येवायं लब्ध्वानंदी भवति" इत्यादि श्रुतिकरके जीव और आनंदमयके भेदका कथन होनेतें । यह इस सूत्रका सारार्थ है॥और श्रुतिका अर्थ यह है कि।सो आनंदमय(रस) सुखरूपहै और तिस रसकोही प्राप्त होके यह जीव आनंदित होता है इति ॥ १७ ॥

ननु आनंदरूप सत्त्वगुणवाला प्रधान आनंदमय शब्दका अर्थहै। अत आह ॥

कामाच्च नानुमानापेक्षा ॥ १८ ॥

इस सूत्रके–कामात् १ च २ न ३ अनुमानापेक्षा ४ यह चार पद हैं॥ आनंदमय प्रकरणके विषे । "सोऽकामयत बहु स्यां प्रजायेय"॥ इस श्रुतिकरके । काम (इच्छा)का निर्देश होनेतें अनुमानसे जानने योग्य सांख्यपरिकल्पित अचेतन प्रधान । आनंदमय शब्दकरके अथवा कारण शब्द करके । अपेक्षित।वांछित नहीं है ।यह इस सूत्रका सारार्थ है ॥ और श्रुतिका अर्थ 'नेतरोनुपपत्तेः' इस सूत्रकी व्याख्यामें कर आयेहैं ॥ १८ ॥

अस्मिन्नस्य च तद्योगं शास्ति ॥ १९ ॥

इस सूत्रके–अस्मिन् १ अस्य २ च ३ तद्योगम् ४ शास्ति५ यह पांच पद हैं॥सांख्यपरिकल्पित प्रधान और जीव आनंदमय शब्दके अर्थ नहीं हैं ।कथं (अस्मिन्) इस आनंदमय परमात्माके विषे(अस्य) इस प्रतिबुद्ध जीवका (तद्योगं) तद्रूप करके आनंदस्वरूपकी प्राप्तिको अर्थात् मुक्तिको शास्त्रहै सो । शास्ति । कहता है ॥ १९ ॥

"य एषोऽन्तरादित्ये य एषोऽन्तराऽक्षिणि"इत्यादि श्रुति उपासनाके वास्ते कहती है कि आदित्यमण्डलके विषे पुरुष है । और नेत्रके विषे पुरुष है । तहां संशय है कि सो पुरुष संसारी है अथवा नित्य सिद्ध परमेश्वर है अत आह ॥

अंतस्तद्धर्मोपदेशात् ॥ २० ॥

इस सूत्रके–अंतः १ तद्धर्मोपदेशात् २ यह दोपदहैं ॥ आदित्य-मण्डलके विषे और नेत्रके विषे संसारी पुरुष नहींहै ।किंतु नित्यसिद्ध परमेश्वर है॥कस्मात्(तद्धर्मोपदेशात्)"य आत्मा अपहतपाप्मा" ॥ इत्यादि श्रुतिकरके सर्वपापरहितत्व धर्मका उपदेश होनेतें । यह इस सूत्रका सारार्थ है ॥ और श्रुतिका अर्थ यह है कि जो आत्मा है सो अपहतपाप्मा (सर्व पापसे रहित) है । इति ॥ २० ॥

भेदव्यपदेशाच्चान्यः ॥ २१ ॥

इस सूत्रके–भेदव्यपदेशात् १ च २ अन्यः ३ यह तीन पदहैं ॥ आदित्यादि शरीराभिमानी जीवसे अंतर्यामी ईश्वर (अन्यः)न्यारा है कस्मात् । भेदव्यपदेशात्)"य आदित्ये तिष्ठन्नादित्यादंतरो यमादित्यो न वेद"इत्यादि श्रुतिकरके भेदका व्यपदेश(कथन) होनेतें। यह इस सूत्रका सारार्थ है ॥ और श्रुतिका अर्थ यह है कि जो ईश्वर आदित्यके विषे स्थित है और आदित्यसे न्यारा है जिसकों आदित्य भी नहीं जानता है इति ॥ २१ ॥

छांदोग्योपनिषद्के विषे श्रवण होताहै कि शालावत्यब्राह्मण जैबालिराजाके प्रति पूछताभया कि(इस भूलोकका तथा अन्य लोकका आधार कौन है)? तब राजा कहता भया कि आकाशहै । तहां संशय होताहै कि इहां आकाश शब्द करिकै परब्रह्मका ग्रहणहै अथवा भूताकाशका ग्रहणहै अत आह ॥

आकाशस्तल्लिङ्गात् ॥ २२ ॥

इस सूत्रके–आकाशः१तल्लिङ्गात्२ यह दो पद हैं॥ इहां आकाश शब्द करिकै परब्रह्मका ग्रहण युक्त है। कस्मात् (तल्लिङ्गात्) "सर्वाणि ह वा इमानि भूतानि आकाशादेव समुत्पद्यंते आकाशं प्रत्यस्तं यंति"

इत्यादि श्रुतिकों ब्रह्मका लिङ्ग ज्ञापक होनेतैं यह इससूत्रका सारार्थ है ॥और श्रुतिका अर्थ यह है कि यह सर्वभूत अकाशसेही उत्पन्न होते हैं और आकाशके विषेही लीनहोते हैं और सर्वकी उत्पत्ति और लय-का भूताकाशमें संभव नहीं किंतु परब्रह्ममें संभव है इति ॥ २२ ॥

सामवेदीयोद्गीथप्रकरणके विषेश्रवण होताहै कि। चाक्रायणऋषि प्रस्तोता (स्तुतिकरनेवाले) को कहता भया कि हे प्रस्तोतः जिस देवताकी तूं स्तुति करता है तिस देवताकों नहीं जानके मेरे समीप स्तुति करेगा तो तेरा शिर टूट पडेगा जब प्रस्तोता भयकरके पूछता भया कि सो देवता कौन है । तब ऋषि उत्तर देता भया कि सो देवता प्राण है तहां संशय है कि प्राण शब्दसे परब्रह्मका ग्रहण है अथवा प्राणवायुका ग्रहण है । अत आह ॥

अत एव प्राणः ॥ २३ ॥

इस सूत्रके—अतः १ एव २ प्राणः ३ यह तीन पद हैं ॥ इहां प्राण शब्दसे परब्रह्मकाही ग्रहण है और प्राणवायुका नहीं । कस्मात्। अतः "सर्वाणि ह वा इमानि भूतानि प्राणमेवाभिसंविशंति प्राणमभ्युज्जि-हते" इस श्रुतिके विषे प्राणकों ब्रह्मका लिंग होनेतैं । यह इस सूत्रका सारार्थ है ॥ और श्रुतिका अर्थ यह है कि सर्वभूति प्राणके विषे लीन होतेहैं।और प्राणसे ही उत्पन्न होते हैं ॥ २३ ॥

छांदोग्यउपनिषद्में श्रवण होता है कि इस द्युलोकसे परे ज्यो-तिका प्रकाश है तहां संशय है कि ज्योतिःशब्दसे आदित्यादिज्यो-तिका ग्रहण है, अथवा परमात्माका ग्रहण है अत आह ॥

ज्योतिश्चरणाभिधानात् ॥ २४ ॥

इस सूत्रके—ज्योतिः १ चरणाभिधानात् २ यह दो पद हैं॥यहां ज्योतिःशब्द करके आदित्यादि ज्योतिका ग्रहण नहीं है किंतु पर-मात्माका ग्रहण है।कस्मात्(चरणाभिधानात)पादोऽस्य सर्वा भूतानि

त्रिपादस्यामृतं दिवि" इस मंत्र करके चरणपादका अभिधान कथन-होणे तैं । यह इस सूत्रका सारार्थ है ॥ और मंत्रका अर्थ यह है कि यह सर्व जगत् इस पुरुषका एकपाद अंश है और 'दिवि' स्वप्रकाशस्वरूपके विषे त्रिपाद (अमृतरूप) है ॥ २४ ॥

छन्दोभिधानान्नेति चेन्न तथा चेतो-ऽर्पणानिगदात्तथा हि दर्शनम् ॥ २५ ॥

इस सूत्रके—छंदोभिधानात् १ न २ इति ३ चेत् ४ न ५ तथा६ चेतोऽर्पणनिगदात् ७ तथा ८ हि ९ दर्शनम् १० यह दश पद हैं ॥ पूर्वपक्षः ॥"पादोस्य सर्वा भूतानि"इस वाक्य करके चतुष्पद गायत्री छंदका अभिधान होनेसे ब्रह्मका अभिधान नहीं है ॥ उत्तरपक्षः ॥ (इतिचेन्न) ऐसे न कहो । कस्मात्।(तथा चेतोर्पणनिगदात्) गायत्री-रूपछंदके द्वारा गायत्र्यनुगतब्रह्मके विषे चित्तके समाधानका कथन होनेसे ॥ जैसे गायत्रीद्वारा ब्रह्मकी उपासना है तैसे औरभी विकार द्वारा ब्रह्मकी उपासना दीखती है ॥ २५ ॥

भूतादिपादव्यपदेशोपपत्तेश्चैवम् ॥ २६ ॥

इस सूत्रके भूतादिपादव्यपदेशोपपत्तेः १ च २ एवम् ३ यह तीन पद हैं ॥ भूत १ पृथिवी २ शरीर ३ हृदय४ यह चार गायत्रीके पादहैं तिनका व्यपदेश जो कथन तिसका (उपपत्तेः। ज्ञान होनेसे (एवम्) "पादोऽस्य सर्वाभूतानि" इस वाक्यके विषे ब्रह्मका ग्रहण है ब्रह्मको नहीं ग्रहण करके केवल छंदके भूतादि पाद नहीं हो सकते ॥२६॥

उपदेशभेदान्नेति चेन्नोभयस्मिन्नप्यविरोधात् ॥ २७ ॥

इस सूत्रके—उपदेशभेदात् १ न २ इति ३ चेत् ४ न५ उभयस्मिन् ६ अपि७ अविरोधात् ८ यह आठ पद हैं॥पूर्वपक्षः ॥"त्रिपादस्यामृतं दिवि" इस वाक्यके विषे 'दिवि' यह सप्तमी विभाक्ति आधारको

कहती है॥और "यदतः परो दिवोज्योतिर्दीप्यते" इस वाक्यके विषे॥ 'दिवः' यह पंचमीविभक्ति मर्यादको कहती है इन पूर्वोक्त वाक्योंसे उपदेशका भेद होनेसे ब्रह्मका ज्ञान नहीं होसकता ॥ उत्तरपक्षः ॥ (इति चेन्न) ऐसे न कहो । कस्मात् (उभयस्मिन्नप्यविरोधात्) ब्रह्मज्ञानके विषेसप्तम्यंतपदका और पंचम्यंतपदका अविरोध होनेसे ।यह इस सूत्रकां सारार्थ है॥और "यदतःपरोदिवः"इस श्रुतिका अर्थ यह है कि इस दिव(स्वर्ग)से परे यज्ज्योतिः । ब्रह्मप्रकाश करताहै इति॥२७॥

कौषीतकिब्राह्मणोपनिषदके विषे श्रवण होता है कि दिवोदासका पुत्र प्रतर्दन काशीका राजा स्वर्गमें जायके इंद्रके साथ युद्ध करता भया जब इंद्र प्रसन्न होके बोला कि हे प्रतर्दन तू मेरेसे वर मांग तब प्रतर्दन बोला कि हे इंद्र जो मनुष्यके वास्ते अतिहित वर तूं मानताहै सोई मेरा वर है जब इंद्र बोला कि ॥'प्राणोस्मि प्रज्ञात्मा तं मामायुरमृतमित्युपास्व इति" अस्यार्थः ॥ मैं प्रज्ञानस्वरूप प्राण हूं तिस मेरी आयु अमृत इस रूप करके उपासनाकर इति । तहां संशयहै कि यहां प्राणशब्दसे वायुमात्रका ग्रहण है अथवा देवतात्माका ग्रहणहै अथवा जीवका ग्रहण है अथवा परब्रह्मका ग्रहण है । अत आह ॥

प्राणस्तथानुगमात् ॥ २८ ॥

इस सूत्रके—प्राणः १ तथा २ अनुगमात् ३ यह तीन पद हैं॥यहां प्राणशब्दसे परब्रह्मका ग्रहण है ॥ कस्मात् । (तथानुगमात्) तैसेही पूर्वापर पदोंका ब्रह्मके विषे संबंध होनेसे ॥ २८ ॥

न वक्तुरात्मोपदेशादिति चेदध्यात्मसंबंध-भूमा ह्यस्मिन् ॥ २९ ॥

इस सूत्रके—न १ वक्तुः २ आत्मोपदेशात् ३ इति ४ चेत्५अध्यात्मसंबंधभूमा ६ हि ७ अस्मिन्८यह आठ पद हैं॥प्राणशब्दका वाच्य

परब्रह्म नहीं है । काहेतें(वक्तुरात्मोपदेशात्) तिस मेरी आयु अमृत इस रूप करके उपासना कर यहां देवताविशेष इन्द्रके आत्माका उपदेश होनेसे ॥ ऐसा आक्षेप करके समाधान करतेहैं सूत्रकार ॥ (अध्यात्मसम्बन्ध) भूमा ह्यस्मिन् इति ॥ अस्मिन् (इस अध्यायके विषे) अध्यात्मसम्बन्ध जो प्रत्यगात्माका सम्बन्ध तिसका भूम (बाहुल्य)है इसीसे परब्रह्मका प्राणशब्दसे ग्रहण है देवताविशेष इंद्रका नहीं ॥ २९ ॥

जो प्राणशब्दसे इन्द्रदेवतात्माका ग्रहण नहीं है तो हे प्रतर्दन ॥ "मामेव विजानीहि" मेरेहीको तू जान ऐसा अपने आत्माका उपदेश इंद्र क्यों करताभया अत आह ॥

शास्त्रदृष्ट्या तूपदेशो वामदेववत् ॥ ३० ॥

इस सूत्रके–शास्त्रदृष्ट्या १ तु २ उपदेशः ३ वामदेववत् ४ यह चार पद हैं ॥ जैसे वामदेवऋषि गर्भके विषे कहता भया कि मैं मनु होता भया और सूर्य होता भया । तैसेही इंद्रदेवता अपने आत्माको शास्त्रदृष्टिसे परमात्मा जानके ॥ मामेव विजानीहि । ऐसा उपदेश करता भया ॥ ३० ॥

जीवमुख्यप्राणलिङ्गान्नेति चेन्नोपासात्रै-विध्यादाश्रितत्वादिह तद्योगात् ॥ ३१ ॥

इस सूत्रके–जीवमुख्यप्राणलिङ्गात् १ न २ इति ३ चेत् ४ न ५ उपासात्रैविध्यात्६आश्रितत्वात् ७ इह ८ तद्योगात्९यह नव पद हैं॥ 'मामेव विजानीहि'इत्यादि वाक्य ब्रह्मके प्रतिपादक नहींहैं।कस्मात्। 'जीवलिङ्गात् ।मुख्यप्राणलिङ्गाच्च' "न वाचं विजिज्ञासीत वक्तारं विद्यात्" इस वाक्यको जीवका लिङ्ग(ज्ञापक)होनेतैं॥अस्यार्थः'वाचं' वाणीके जाननेकी इच्छा नहीं करनी किंतु वाणीके वक्ताको जानना

इति॥ और "प्राण एव प्रज्ञात्मा" इस वाक्यको मुख्य प्राणका लिङ्ग होनेतें। इसका अर्थ पूर्व कर आये हैं। समाधान(इति चेन्न)ऐसे न कहो। कस्मात् (उपासात्रैविध्यात्) जीवोपासना १ प्राणोपासना २ ब्रह्मोपासना ३ इस तीन प्रकारकी उपासनाका प्रसंग होनेतें॥ और ब्रह्मके योगसे प्राणको ब्रह्मके आश्रित (अधीन) होनेतें "मामेव विजानीहि" यह वाक्य ब्रह्मपर है ॥ ३१ ॥

इति श्रीमन्मौक्तिकनाथयोगिविरचितायां ब्रह्मसूत्रसारार्थप्रदीपिकायां प्रथमाध्यायस्य प्रथमः पादः ॥ १ ॥

प्रथमाध्याये द्वितीयः पादः।

प्रथमपादके विषे 'जन्माद्यस्य यतः' इस सूत्रकरके सर्वजगत्का कारण ब्रह्म कहाहै तहां और भी आनंदमयादि वाक्योंका ब्रह्मके विषे समन्वय कियाहै। जब जिनके विषे ब्रह्मलिंग स्पष्ट नहीं है ऐसे मनोमयादि वाक्य ब्रह्मके प्रतिपादक हैं अथवा नहीं इस निर्णयके वास्ते द्वितीय तृतीय पादका आरम्भ है मनोमयत्वादिधर्म करके जीवकी उपासना है अथवा ब्रह्मकी उपासना है अत आह॥

सर्वत्र प्रसिद्धोपदेशात्॥ १॥

इस सूत्रके–सर्वत्र १ प्रसिद्धोपदेशात् २ यह दो पद हैं ॥ सर्व वेदांत शास्त्रके विषे प्रसिद्ध ब्रह्मका उपदेश होनेतें मनोमयत्वादि धर्म करके परब्रह्महो उपासनाके योग्य है ॥ १ ॥

विवक्षितगुणोपपत्तेश्च ॥ २ ॥

इस सूत्रके–विवक्षितगुणोपपत्तेः १ च २ यह दो पद हैं॥ विवक्षित (वांछित) जो सत्यकाम सत्यसंकल्पत्वादिगुण तिनका ब्रह्मके विषे उपपत्ति (ज्ञान) होनेतें ब्रह्महो उपासनाके योग्य है॥ २॥

अनुपपत्तेस्तु न शारीरः ॥ ३ ॥

इस सूत्रके–अनुपपत्तेः १ तु २ न ३ शारीरः ४ यह च्यार पदहैं॥ सत्यकाम सत्यसंकल्पत्वादि गुणोंको जीवके विषे न होनेतैं शारीर (शरीरके विषे होनेवाला)जीवात्मा मनोमयत्वादि धर्म करके उपासनाके योग्य नहीं है । किंतु परब्रह्मही उपासनाके योग्यहै ॥ ३ ॥

कर्मकर्तृव्यपदेशाच्च ॥ ४ ॥

इस सूत्रके–कर्म कर्तृव्यपदेशात् १च २ यह दोपदहैं॥"एतमितः प्रेत्याभिसंभवितास्मि" । इस श्रुतिवाक्यके विषे । कर्म और कर्त्ता कथन होनेसे मनोमयत्वादि धर्मकरके जीवात्मा उपासनाके योग्य नहीं । किंतु परब्रह्म ही उपासनाके योग्यहै । यह इस सूत्रका सारार्थ है ॥ और श्रुतिवाक्यका अर्थ यह है । उपासक जीव कहताहै कि मैं 'इतः' इस लोकसे 'प्रेत्य' मरके 'एतम्' इस मेरे उपास्य परमात्माको 'अभिसंभवितास्मि' प्राप्त होऊंगा इति । उपास्य परमात्मा कर्म है और उपासक जीव कर्त्ता है । और जो जीव उपास्य होवै तो एकही जीव कर्म और कर्त्ता नहीं हो सकता ॥ ४ ॥

शब्दविशेषात् ॥ ५ ॥

इससूत्रका–शब्दविशेषात्१यह एकही पदहै॥"यथाव्रीहिर्वा यवोवा श्यामाको वाश्यामाकतण्डुलो वैवमयमन्तरात्मन् पुरुषोहिरण्मयः" इस श्रुतिवाक्यके विषे अन्तरात्मन् यह सप्तमीविभक्त्यंत शब्दजीवात्माको कथन करताहै।और'पुरुषः'यह प्रथमाविभक्त्यंत शब्द मनोमयत्वादिगुणविशिष्ट परमात्माको कथन करताहै इस रीतिसेशब्दका भेद होनेतैं जीवात्मासे परमात्मा भिन्न है । इति सूत्रसारार्थः ॥ और श्रुतिवाक्यका अर्थ यह है कि जैसे व्रीहि–चावल । यव–जव । श्यामाक–ऋषिअन्न । श्यामाकतंडुल । शामक चावल । यह तुषके अर्थात् पडदेके भीतर होते हैं तैसे यह 'हिरण्मयः' प्रकाशस्वरूप ।

'पुरुषः' परमात्मा । 'अन्तरात्मन्' जीवात्माके भीतर हृदय देशमें है इति ॥ ५ ॥

स्मृतेश्च ॥ ६ ॥

इस सूत्रके–स्मृतेः १ च२यह दो पदहैं॥"ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति।भ्रामयन् सर्वभूतानि यंत्रारूढानि मायया ॥"इत्यादि स्मृतिसेभी जीवात्माका और परमात्माका भेद सिद्ध होताहै।इतिसूत्र सारार्थः ॥ और स्मृतिका अर्थ यह है--भगवान् कहते भये कि हे अर्जुन ! ईश्वर–अन्तर्यामी । यंत्र–शरीरके विषे।आरूढ–सर्व जीवों को मायाकरके भ्रमाता है और सर्व प्राणियोंके हृदय देशके विषे स्थित है इति ॥ ६ ॥

अर्भकौकस्त्वात्तद्व्यपदेशाच्च नेति चेन्न निचाय्यत्वादेवं व्योमवच्च ॥ ७ ॥

इस सूत्रके -अर्भकौकस्त्वात्१तद्व्यपदेशात २ च ३ न ४ इति५ चेत् ६ न ७ निचाय्यत्वात् ८ एवं ९ व्योमवत १०च११ यह एकादश पद हैं ॥ पूर्वपक्षः॥ (अर्भकौकस्त्वात्)हृदयरूप अल्प स्थानके विषे होनेतें ॥ और "अणीयान् व्रीहेर्वा यवाद्वा" इस वाक्यके विषे। व्रीहि चावल तें। यव जवतेंबी । आणीयान् सूक्ष्मका कथन होनेतें । व्यापक ईश्वर हृदयकमलके विषे नहीं है ।किंतु सूक्ष्म जीव है ॥ उत्तरपक्षः ॥ (इति चेन्न) ऐसे न कहो।कस्मात् (निचाय्यत्वादेवं व्योमवच्च) यद्यपि व्योम (आकाश) व्यापक है तथापि सुईके पाशेमें अल्पस्थानवाला और सूक्ष्म कहाताहै तैसेही व्यापक ईश्वर हृदयके विषे निचाय्य (देखनेके योग्य) होनेतें अल्पस्थानवाला और सूक्ष्म कहाता है ॥ ७ ॥

संभोगप्राप्तिरितिचेन्न वैशेष्यात् ॥ ८ ॥

इस सूत्रके–संभोगप्राप्तिः १इति २ चेत् ३ न ४ वैशेष्यात्५ यह

पांचपदहैं॥सर्वगत ब्रह्मको चेतन होनेतैं औसर्वप्राणियोंकेहृदेकेसाथ सम्बंध होनेतैं औ शरीर जीवात्मासें अभिन्नहोनेतैंसुखदुःखादिकोंके संभोगकी प्राप्ति होवैगी (इति चेन्न) ऐसे न कहो । कस्मात् (वैशेष्यात्) जीवात्मा धर्माधर्मका कर्त्ता है औ सुखदुःखका भोक्ता है॥ औ परमात्मा न धर्माधर्मका कर्त्ता हैऔ न सुखदुःखका भोक्ताहै इस रीतिसे जीव और ब्रह्मके विषे विशेषता होनेतैं ॥ ८ ॥

कठवल्ली उपनिषद्के विषै श्रवण होता है कि ॥ "यस्य ब्रह्म च क्षत्रं चोभे भवत ओदनः मृत्युर्यस्योपसेचनम् । क इत्था वेद यत्र सः" इति ॥ अस्यार्थः--जिसके ब्राह्मण औ क्षत्रिय यह दोनु जो ओदन (भक्ष्य)हैं औ मृत्यु जिसका उपसेचन (घृत) है । ऐसा सर्वका भक्षक सो इहां है एस कौन जान सकता है इति।अब इहां संशय है कि ब्राह्मण क्षत्रिय औ मृत्यु जिसके भक्ष्य हैं सो अग्नि है अथवा जीव है वा परमात्मा है ? अत आह ॥

अत्ता चराचरग्रहणात् ॥ ९ ॥

इस सूत्रके--अत्ता १ चरचरग्रहणात् २ यह दो पद हैं ॥ चराचर (स्थावर जंगम)का ग्रहण होनेतैं ब्राह्मण क्षत्रिय मृत्युसे आदिलेके सर्वको भक्षण करनेवाला परमात्माहै और कोई नहीं हो सकता ॥ ९ ॥

प्रकरणाच्च ॥ १० ॥

इस सूत्रके--प्रकरणात् १ च २ यह दो पद हैं॥ "न जायते म्रियते वा विपश्चित्" विपश्चित् (सर्वको जाननेवाला परमात्मा न जन्मता है औ न मरताहै इस प्रकरणसैंबी परमात्माही सर्वका भक्षक होने योग्यहै ॥ १० ॥

"ऋतं पिबंतौ सुकृतस्य लोके गुहां प्रविष्टौ परमे परार्धे ॥ छायातपौ ब्रह्मविदो वदन्ति पंचाग्नयो ये च त्रिणाचकेताः" ॥ यह श्रुति

कठवल्लीके विषे है । तहां संशय है कि इस श्रुतिके विषे बुद्धि औ जीवका निर्देश है वा जीव और परमात्माका निर्देशहै ? अत आह ।

गुहां प्रविष्टावात्मानौ हि तद्दर्शनात् ॥ ११ ॥

इस सूत्रके--गुहां १ प्रविष्टौ २ आत्मानौ ३ हि ४ तद्दर्शनात् ५ यह पांच पदहैं ॥हृदयाकाशरूप गुहाके विषे जीव औ परमात्मा स्थित हैं बुद्धि जीव नहीं । कस्मात् (तद्दर्शनात्) जैसें लोकके विषे गौके समान स्वभाववाली गौ है अश्व नहीं तैसेही चेतन जीवके समान स्वभाववाले चेतन परमात्माका दर्शनहोनेतें बुद्धि औ जीवकासमान स्वभाव नहीं इति सूत्रसारार्थः ॥ औ श्रुतिका अर्थ यह है कि पुण्यकर्मका कार्य जो देह तिसके विषे परब्रह्मका श्रेष्ठस्थान हृदय तिसके विषे जो आकाशरूपा वा बुद्धिरूपा गुहा तिस गुहामें स्थितहैं औ अवश्यभावि कर्मफलको भोगते हैं औ छाया धूपकी न्याईं परस्पर विरुद्धहैं ऐसे ब्रह्मके वेत्ता पुरुष औरपंचाग्निके उपासककर्मिपुरुष औ त्रिणाचिकेत अग्निके उपासक पुरुष कहते हैं इति ॥ ११ ॥

विशेषणाच्च ॥ १२ ॥

इस सूत्रके--विशेषणात् १च २ यह दो पद हैं॥"आत्मानं रथिनं विद्धि शरीरं रथमेवतु" इस वाक्यके विषे 'रथिनं' इस पदको जीवात्माका विशेषण होनेतें औ "सोऽध्वनः पारमाप्नोति तद्विष्णोः परमं पदम्॥इस वाक्यके विषे 'परमं पद म्'इसको परमात्माका विशेषण होनेतें उदाहृत श्रुतिके विषे जीवात्माका ग्रहणहै । इति सूत्रसारार्थः॥ औ प्रथमवाक्यका अर्थ यह है कि जीवात्माको रथी (रथमें बैठने वाला) जानना औ शरीरको रथ जानना इति ॥ औ द्वितीयका अर्थ यह है कि सो जीव संसारमार्गके पारको प्राप्त होता है सो पार व्यापक परमात्माका परम स्वरूप है इति ॥ १२ ॥

"य एषोऽक्षिणि पुरुषो दृश्यते एष आत्मा" अस्यार्थः--जो यह नेत्रके विषे पुरुष दीखताहै सो यह आत्मा है इति। तहां संशय है कि नेत्रके विषे प्रतिबिम्बात्मा है अथवा जीवात्मा है वा नेत्रका अधिष्ठाता देवतात्मा है वा परमात्मा है ? अत आह।

अन्तर उपपत्तेः॥ १३॥

इस सूत्रके--अंतर १ उपपत्तेः २ यह दो पद हैं॥ नेत्रके अन्तर (भीतर) परमेश्वर है। कस्मात् (उपपत्तेः) परमेश्वरके विषे अमृतत्व अभयत्वादिगुणोंका ज्ञान होनेतें॥ १३॥

आकाशवत् सर्वगत ब्रह्मका अल्प नेत्रस्थान नहीं होसकता अत आह॥

स्थानादिव्यपदेशाच्च॥ १४॥

इस सूत्रके--स्थानादिव्यपदेशात् १ च २ यह दो पद हैं॥ एक नेत्रही ब्रह्मका स्थान नहीं है किंतु 'यः पृथिव्यां तिष्ठन्' इत्यादि श्रुतिवाक्यसे बहुतसे पृथ्वीने आदिलेके परमेश्वरके स्थान दिखाये हैं तिनके विषे एकनेत्रभी परमेश्वरका स्थान है इति सूत्रसारार्थः॥ औ श्रुतिवाक्यका अर्थ यह है कि यह परमेश्वर पृथिवीके विषे स्थित है इति॥ १४॥

सुखविशिष्टाभिधानादेव च॥ १५॥

इस सूत्रके--सुखविशिष्टाभिधानात् १ एव २ च ३ यह तीन पद हैं॥ ध्यानके वास्ते भेदकी कल्पना करके सुखगुणविशिष्ट ब्रह्मका "य एषोऽक्षिणि पुरुषो दृश्यते" इस श्रुतिवाक्य करके अभिधान होनेतें नेत्रके विषे परमेश्वर है॥ १५॥

श्रुतोपनिषत्कगत्यभिधानाच्च॥ १६॥

इस सूत्रके--श्रुतोपनिषत्कगत्यभिधानात् १ च २ यह दो पद हैं॥

जिसपुरुषनें उपनिषदोंकारहस्य श्रवणकियाहैतिस ब्रह्मवेत्ता पुरुषकों श्रुतोपनिषत्क कहते हैं। तिस पुरुषकी गति जो प्रसिद्ध देवयानमार्ग तिसका श्रुतिस्मृतिके विषै अभिधान होनेतें नेत्रस्थानके विषै परमेश्वर है ॥ १६ ॥

छायात्मा वा जीवात्मा वा देवतात्मा नेत्रस्थानवाले क्यों नहीं है? अत आह ॥

अनवस्थितेरसंभवाच्च नेतरः ॥ १७॥

इस सूत्रके--अनवस्थितेः १ असंभवात् २ च ३ न ४ इतरः ५ यह पांच पद हैं ॥(इतरः)छायात्मादि नेत्रस्थानवाले नहीं हो सकते। कस्मात् (अनवस्थितेः)सदा स्थिति नहीं होनेतें। जब कोई पुरुष नेत्रके सामने होवै तब छायात्मा दीखता है सदा नहीं। और जीवात्माका सर्व शरीरेंद्रियके साथ सम्बंध होनेतें केवलनेत्रके विषै स्थिति नहीं यद्यपिव्यापकब्रह्मकासम्बन्धभी सर्वके साथहै तथापि हृदयादिदेश ब्रह्मके श्रुति कहती है। औ देवतात्माको बहिर्देशमें होनेतैं आत्मत्व नहीं है (असंभवाच्च) छायात्मा १ जीवात्मा २ देवतात्मा ३ इन तीनोंके विषै अमृतत्व अभयत्वादि गुणोंका असंभव होनेतैं नेत्र स्थानवाला परमेश्वर है ॥ १७॥

अन्तर्यामी ब्राह्मणके विषै श्रवण होता है कि "अधिदैवतमधिलोकमधिवेदमधियज्ञमधिभूतमध्यात्मंच कश्चिदन्तरवस्थितो यमयितान्तर्यामी" इति ॥ तहां संशय है कि अन्तर्यामिशब्दसे अधिदैवाद्यभिमानी देवताका ग्रहण है अथवा अणिमादि ऐश्वर्यवाले योगीका ग्रहण है वा परमात्माका ग्रहण है ? अत आह ॥

---

१ सिद्धांत ।

अन्तर्याम्यधिदैवादिषु तद्धर्मव्यपदेशात् ॥ १८ ॥

इस सूत्रके-अंतर्यामी १ अधिदैवादिषु २ तद्धर्मव्यपदेशात् ३ यह तीन पद हैं ॥ अधिदैवादि सर्वका प्रेरक जो अन्तर्यामी तिसके विषे प्रेरकत्वधर्मका कथन होनेतैं अधिदैवादिकोंके विषे अन्तर्यामि शब्दसे परमात्माका ग्रहण है इति सूत्रसारार्थः ॥ औ श्रुतिका अर्थ यह है कि जो पृथिव्यादि देवताके विषे है सो अधिदैवत है औ जो सर्वलोकके विषे है सो अधिलोक है । औ जो सर्व वेदके विषे है सो अधिवेद है औ जो सर्व यज्ञके विषे है सो अधियज्ञ है औ जो सर्वभूतके विषे है सो अधिभूत है औ जो सर्व आत्माके विषे है सो अध्यात्म है इन सर्वको जो कोई अन्तःस्थित होके प्रेरता है सो अन्तर्यामी है इति ॥ १८ ॥

सांख्यस्मृति कल्पित प्रधान जगत्का कारण औ प्रेरक है सो अन्तर्यामिशब्दका वाच्य है । अत आह ॥

न च स्मार्तमतद्धर्माभिलापात् ॥ १९ ॥

इस सूत्रके-न १ च २ स्मार्त्तम् ३ अतद्धर्माभिलापात् ४ यह चार पद हैं ॥ सांख्य स्मृति कल्पित अचेतन प्रधानके विषे द्रष्टृत्वादि धर्मका असंभव होनेतैं प्रधान अंतर्यामि शब्दका वाच्य नहीं किंतु परमेश्वर है ॥ १९ ॥

शारीर जीवात्माको चेतनत्वद्रष्टृत्वादि धर्मवाला होनेतैं शारीरात्मा अन्तर्यामि है अत आह ।

शारीरश्चोभयेऽपि हि भेदेनैनमधीयते ॥ २० ॥

इस सूत्रके-शारीरः १ च २ उभये ३ अपि ४ हि भेदेन ६ एनम् ७ अधीयते ८ यह आठ पद हैं। पूर्वसूत्रसें नकारकी अनुवृत्ति करणी यद्यपि द्रष्टृत्वादि धर्म शारीरात्माके हैं तथापि घटाकाशकी न्याई उपाधि करके परिच्छिन्न होनेतैं शारीरात्मा सर्व पृथिव्यादिकोंका नियामक

अन्तर्यामी नहीं होसकता (उभयेऽपिहि) काण्व शाखावाले औ माध्यं दिन शाखावालेइस शारीरात्माका अन्तर्यामीसें भेद करके अध्ययन करतेहैं ॥ २० ॥

मुण्डकोपनिषदकेविषे श्रवण होताहै कि "यत्तदद्दश्यमग्राह्यमगोत्रमवर्णमचक्षुःश्रोत्रंतदपाणिपादं नित्यं विभुं सर्वगतंसुसूक्ष्मंतदव्ययं यद्भूतयोनिं परिपश्यंति धीराः" इति ॥ तहां संशयहै कि अद्दश्यत्वादि गुणवाला औ भूतयोनि प्रधान है अथवा शारीरात्मा है वा परमात्मा है अत आह ॥

अद्दश्यत्वादिगुणको धर्मोक्तेः ॥ २१ ॥

इस सूत्रके-अद्दश्यत्वादिगुणकः १धर्मोक्तेः२यह दो पद हैं॥धर्मोक्ते 'यःसर्वज्ञःसर्ववित्' जो सामान्यरूपसें सर्वको जानताहै सो विशेष रूपसे सर्वको जानता है इति । सर्वसत्वादि धर्मका परमेश्वरके विषे कथन होनेतें जो यह अद्दश्यत्वादि गुणवाला औ भूतयोनिहै सो परमात्मा है अन्य कोई नहीं इति सूत्रसारार्थः ॥ औ श्रुतिका अर्थ यह है कि जो परमात्मा 'अद्दश्यम्' अद्दश्यहै 'अग्राह्यम्' ज्ञानेन्द्रिय कर्मेन्द्रिय करके अग्राह्यहै 'अगोत्रम्' वंशरहितहै 'अवर्णम्' ब्राह्मणत्वादि जातिरहित है 'अचक्षुःश्रोत्रम्' चक्षु औ श्रोत्रसे रहित है 'तदपाणिपादम्' सो हस्त पैरसे रहितहै औ नित्य है 'विभुम्' प्रभु है 'सर्वगतम्'व्यापक है 'सुसूक्ष्मम्' अतिसूक्ष्म है 'तदव्ययम्' सो नाशरहित है यद्भूतयोनिम्' जो सर्वभूतोंका कारण है तिसको 'धीराः' पंडित हैं सो देखते हैं इति ॥ २१ ॥

विशेषणभेदव्यपदेशाभ्यां च नेतरौ ॥ २२ ॥

इस सूत्रके--विशेषणभेदव्यपदेशाभ्याम् १ च २ न ३इतरौ४यह चारपदहैं॥ "दिव्यो ह्यमूर्त्तः पुरुषः" इत्यादि वाक्यके विषे दिव्यत्वादि विशेषणवाले परमात्माका कथन होनेतें । औ "अक्षरात् परतः परः" इस वाक्यके विषे प्रधानसें परमात्माके भेदका कथनहोनेतें (नेतरौ

शारीरात्मा औ प्रधान सर्व भूतोंका कारण नहीं ।किंतु परमेश्वर कारण है इति सूत्रसारार्थः ॥ औ प्रथम वाक्यका अर्थ यह है कि दिव्य (स्वयंज्योतिः)अमूर्त्त (पूर्ण) पुरुष (पुरीमें सोनेवाला)परमात्माहै इति । द्वितीयका अर्थ अक्षर प्रधानसे पर परमात्मा है इति॥२२॥

रूपोपन्यासाच्च ॥ २३ ॥

इस सूत्रके–रूपोपन्यासात्१च२यह दो पदहैं॥"अग्निर्मूर्द्धाचक्षुषी चंद्रसूर्यौ दिशः श्रोत्रे वाग्विवृताश्चवेदाः।वायुः प्राणो हृदयं विश्वमस्य पद्भ्यां पृथिवी ह्येष सर्वभूतान्तरात्मा"॥ इस श्रुति करके परमेश्वरके रूपका कथन होनेतें सर्वभूतयोनि परमेश्वर है इति सूत्रसारार्थः ॥ औ श्रुतिका अर्थ यह है कि अग्नि मस्तक है । चन्द्रसूर्य नेत्र हैं । दिशा श्रोत्रहैं।प्रसिद्ध वेद वाणी है।वायु प्राण है।विश्व इसका हृदयहै। पृथिवी पादहैं जिसका यह रूपहै । सो सर्वभूतोंकाअन्तरात्माहैइति॥

छान्दोग्यके विषै श्रवण होताहै कि।प्राचीनशाला १ सत्ययज्ञ२ इंद्रद्युम्न ३ जनक ४ बुडिल ५ उद्दालक ६ यह छह पुरुष मिलके जो कैकयदेशका राजाअश्वपति नामथा तिसकेसमीपजायके पूछतेभये कि हे राजन् जो तूं वैश्वानर आत्माकोजानताहै तोहमारेकोकहो।तहां संशय है कि वैश्वानर शब्दसे जाठराग्निका ग्रहणहै अथवा भूताग्नि ग्रहण है वा अग्न्यभिमानी देवता ग्रहणहै वा शारीरात्माका ग्रहणहै वा परमात्माका ग्रहणहै अत आह॥

वैश्वानरःसाधारणशब्दविशेषात् ॥ २४ ॥

इस सूत्रके–वैश्वानरः १ साधारणशब्दविशेषात् २ यह दो पदहैं। यद्यपि आत्मशब्द शारीरात्माके औ परमात्माके विषै साधारणहै । औ वैश्वानरशब्द जाठराग्नि भूताग्नि औ अग्न्यभिमानी देवता इन तीनके विषै साधारण है तथापि आत्मशब्दका औ वैश्वानरशब्दका

परमात्माके विषे विशेष होनेतें वैश्वानरशब्दसे परमात्माका ग्रहण है ॥ २४ ॥

स्मर्यमाणमनुमानं स्यादिति ॥ २५ ॥

इस सूत्रके-स्मर्यमाणम् १ अनुमानम् २स्यात् ३ इति ४ यह चार पदहैं॥ "यस्याग्निरास्यंद्यौर्मूर्द्धाखंनाभिश्चरणौक्षितिः।सूर्यश्चक्षुर्दिशः श्रोत्रे तस्मै लोकात्मनेनमः" इस स्मृतिकरके स्मर्यमाण जो परमात्माका रूप सो वैश्वानर शब्दको परमात्म परत्वका(अनुमान)लिङ्ग है।इति शब्दका अर्थ हेतु है । यस्मात् यह स्मर्यमाणरूप लिंग है तस्मात वैश्वानर परमात्माहै इति सूत्र सारार्थः ॥ औ स्मृतिका अर्थ यहहै कि जिस परमात्माका आग्नि मुखहै द्युलोक मस्तकहै आकाश नाभिहै पृथिवी चरणहै सूर्य चक्षुहै दिशा श्रोत्रहैं तिस सर्व लोकरूप परमात्माको नमस्कार है इति ॥ २५ ॥

शब्दादिभ्योऽन्तःप्रतिष्ठानाच्च नेति चेन्न तथा दृष्ट्युपदेशादसंभवात् पुरुषमपि चैनमधीयते ॥ २६ ॥

इस सूत्रके--शब्दादिभ्यः १ अन्तःप्रतिष्ठानात् २ च ३ न४इति५ चेत् ६ न ७ तथा ८ दृष्ट्युपदेशात् ९ असंभवात् १० पुरुषम् ११ अपि१२ च१३एनम्१४अधीयते१५यह पंचदश पदहैं॥"सएषोऽग्नि वैश्वानरः"अस्यार्थः-सो यह अग्नि वैश्वानरहै इति।उस वाक्यकेविषे वैश्वानरशब्दसे अग्निका ग्रहण होनेतें औ"पुरुषेऽन्तःप्रतिष्ठितं वेद" अस्यार्थः-पुरुषके भीतर स्थित अग्निको जाने इति । इस वाक्यके विषैजाठराग्निकाग्रहणहोनेतैंपरमेश्वर वैश्वानर नहींहै किंतुवैश्वानर अग्नि है (इति चेन्न) ऐसे न कहो कस्मात् (तथा दृष्ट्युपदेशात्) परमेश्वर दृष्टिकरके वेश्वानरशब्दसेजाठराग्निकीउपासनाकाउपदेश होनेतें और जो केवल जाठराग्नि विवक्षितहोवै तो "मूर्धैव सुतेजा "

अस्यार्थः--परमेश्वरका मस्तक सुंदर तेजवाला है इति । इस वाक्यका असंभवहोवै और वाजसनेयि शाखावाले इस वैश्वानरको पुरुषरूप करकेअध्ययन करतेहैं इसीसे परमेश्वरही वैश्वानर है अन्य नहीं२६॥

अत एव न देवता भूतं च ॥ २७ ॥

इस सूत्रके--अतः १ एव २ न ३ देवता ४ भूतम् ५ च ६ यह छह पद हैं॥ (अत एव) जिसपरमेश्वरका द्युलोक मस्तक है इत्यादि पूर्वोक्त हेतुसे न कोई देवता वैश्वानर है और न भूतादि वैश्वानर है किंतु परमेश्वरही वैश्वानर है ॥ २७ ॥

साक्षादप्यविरोधं जैमिनिः ॥ २८ ॥

इस सूत्रके--साक्षात् १ अपि २ अविरोधम् ३ जैमिनिः ४ यह चार पदहैं॥पूर्व कहाहै कि जाठराग्निरूप उपाधिवाला परमेश्वर उपासनाके योग्य है अब कहते हैं कि उपाधिके विना साक्षात् परमेश्वरही उपासनाके योग्य है इसमें कोई विरोध नहीं है ऐसे जैमिनिआचार्य मानता है ॥ २८ ॥

अभिव्यक्तेरित्याश्मरथ्यः ॥ २९ ॥

इस सूत्रके--अभिव्यक्तेः १ इति २ आश्मरथ्यः ३ यह तीन पदहैं॥ व्यापक परमेश्वरको प्रादेशमात्रत्वका कथनहै सो तिसकी । अभिव्यक्ति प्रगटताके निमित्तहै । प्रदेशविशेष हृदयादि स्थानोंके विषै प्रगट होवै सो परमेश्वर प्रादेशमात्र कहिये ऐसे आश्मरथ्य आचार्य मानता है ॥ २९ ॥

अनुस्मृतेर्बादरिः ॥ ३० ॥

इस सूत्रके--अनुस्मृतेः १ बादरिः २ यह दो पद हैं ॥ अथवा प्रादेशमात्र जो हृदय तिसके विषै प्रविष्ट जो मन तिस मन करके परमेश्वरका अनुस्मरण होनेतें परमेश्वरको प्रादेश मात्र कहते हैं ऐसे बादरि आचार्य मानता है ॥ ३० ॥

संपत्तेरिति जैमिनिस्तथा हि दर्शयति ॥ ३१ ॥

इस सूत्रके--संपत्तेः १इति २जैमिनिः ३ तथा ४ हि ५ दर्शयति ६ यह छह पद हैं ॥ अथवा संपत्ति जो परमेश्वरके मूर्धादि तत्तत्स्थानकी प्राप्ति तिस संपत्तिरूप निमित्तसे परमेश्वरको प्रादेशमात्र कहते हैं । (तथाहि दर्शयति) तैसेही प्रादेशमात्रताको श्रुतिबी दिखाती है ऐसें जैमिनि आचार्य मानता है इति सूत्रसारार्थः॥ औ श्रुति यह है कि "प्रादेशमात्रमिव ह वै देवाः सुविदित अभिसम्पन्नाः" अस्यार्थः- देव हैं सो अपरिच्छिन्न परिमाणवाले परमेश्वरको प्रादेशमात्रकी कल्पना करके जानते भये औ तिसीको प्राप्त होते भये इति ॥ ३१ ॥

आमनन्ति चैनमस्मिन् ॥ ३२ ॥

इस सूत्रके--आमनंति १ च २ एनम् ३ अस्मिन् ४ यह चार पद हैं ॥ इस परमेश्वरको मूर्धा औ चुबुकके मध्यमें जाबाल कथन करतेहैं मूर्धा नाम मस्तकका है औ मुखके नीचे भागका नाम चुबुक है तिनके मध्य विषे परमेश्वरका कथन होनेतें परमेश्वर प्रादेशमात्र है औ वैश्वानर है इति ॥ ३२ ॥

इतिश्रीमन्मौक्तिकनाथयोगिविरचितायांब्रह्मसूत्रसारार्थप्रदीपिकायांप्रथमाध्यायस्यद्वितीयः पादः ॥ २ ॥

प्रथमाध्याये तृतीयः पादः ।

मुण्डकोपनिषद्के विषे श्रवण होताहै कि "यस्मिन् द्यौः पृथ्वी चान्तरिक्षमोतं मनःसह प्राणैश्चसर्वैस्तमेवैकं जानथ आत्मानमन्या वाचो विमुञ्चथामृतस्यैष सेतुः"इति ॥ तहां संशय है कि द्युलोकादि-कोंका आधार परब्रह्म है अथवा अन्य प्रधानादिक हैं अत आह ॥

द्युभ्वाद्यायतनं स्वशब्दात् ॥ १ ॥

इस सूत्रके-द्युभ्वाद्यायतनम् १ स्वशब्दात् २ यह दो पद हैं ॥ द्युलोक भूलोकादिकोंका आयतन (आधार) परब्रह्महै कस्मात् (स्वशब्दात्) उक्त श्रुतिके विषै "तमेवैकं जानथ आत्मानम्" इस आत्मशब्दका अर्थ यह है कि सर्व प्राणोंकरके सहित द्युलोक भूलोक अंतरिक्षलोक इन तीनलोकस्वरूप विराट्(मनः)सूत्रात्मा चकारात अव्याकृत कारण यह जिसके विषै (ओतं) कल्पित हैं तिस एक आत्माको जानना चाहिये औ अनात्म वाणीका त्याग करना चा-हिये । यह आत्मा मोक्षका 'सेतुः' प्रापक है इति ॥ १ ॥

मुक्तोपसृप्यव्यपदेशात् ॥ २ ॥

इस सूत्रका-मुक्तोपसृप्यव्यपदेशात् १ यह एक ही पदहै॥"यदा सर्वे प्रमुच्यंते कामा येऽस्य हृदि स्थिताः। अथ मर्त्योऽमृतो भवत्यत्र ब्रह्म समश्नुते" इस श्रुतिके विषै मुक्त पुरुषोंके प्राप्त होनेयोग्य परब्रह्मका कथनहोनेतैंपरब्रह्म द्युलोक भूलोकादिकोंका आयतनहै प्रधानादिक नहीं इति सूत्रसारार्थः ॥ औ श्रुतिका अर्थ यह है कि जिस कालके विषै इस पुरुषके हृद्यमें स्थित सर्व काम दूर होवैं तिसके अनन्तर यह पुरुष अमृत होताहै औ इहांही ब्रह्मको प्राप्त होताहै इति ॥२॥

नानुमानमतच्छब्दात् ॥ ३ ॥

इस सूत्रके-न१अनुमानम् २ अतच्छब्दात् ३ यह तीन पदहैं॥

अचेतन प्रधानप्रतिपादक शब्दका अभाव होनेतें औ "यः सर्वज्ञः सर्ववित्" इत्यादि चेतन ब्रह्मप्रतिपादक शब्दका सद्भाव होने तें सांख्यस्मृति परिकल्पित अचेतनप्रधान द्युलोक भूलोकादिकोंका आयतन नहीं किंतु परब्रह्म है ॥ ३ ॥

प्राणभृच्च ॥ ४ ॥

इस सूत्रके-प्राणभृत् १ च २ यह दो पद हैं ॥ यद्यपि प्राणको धारण करनेवाले जीवके विषै आत्मत्व चेतनत्वादि धर्म हैं तथापि उपाधिपरिच्छिन्न जीवके विषै सर्वज्ञत्वादि धर्मका अभाव होनेतें जीवात्मा द्युलोक भूलोकादिकोंका आयतन नहीं किंतु सर्वज्ञ ब्रह्महै४
प्राणभृत् जीवात्माद्युलोकादिकोंका आयतनक्योंनहीं?अत आह॥

भेदव्यपदेशात् ॥ ५ ॥

इस सूत्रका-भेदव्यपदेशात् १ यह एकही पदहै॥"तमेवैकं जानथ आत्मानम्" इत्यादि वाक्यके विषै ज्ञाता औ ज्ञेयके भेदका कथन होनेतें मुमुक्षु, प्राणभृत् (जीवात्मा) ज्ञाता है औ आत्मशब्दवाच्य ब्रह्म ज्ञेय है सो ब्रह्मही द्युलोकादिकोंका आयतन है ॥ ५ ॥

प्रकरणात् ॥ ६ ॥

इससूत्रका-प्रकरणात्१यह एकहीपदहै॥ "कस्मिन्न भगवो विज्ञाते सर्वमिदं विज्ञातं भवति" इस श्रुतिवाक्य करके एकके विज्ञानसेसर्वके विज्ञानका अपेक्षा होनेतें एकपरमात्माके विज्ञानसेहीं सर्वका विज्ञान हो सकताहै केवल प्राणभृत् जीवके विज्ञानसें सर्वके विज्ञानका संभव नहीं इत्यादि परमात्मसंबन्धि प्रकरण होनेतें परमात्मा द्युलोकादिकोंका आयतन है इति सूत्रसारार्थः॥ औ श्रुतिवाक्यका अर्थ यह है कि हे भगवन् किसके जानेतें यह सर्व जगत् जाना जाता है इति ॥

स्थित्यदनाभ्यां च ॥ ७ ॥

इस सूत्रके–स्थित्यदनाभ्याम् १ च २ यह दो पद हैं ॥ "द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया" इत्यादि श्रुतिके विषे परमेश्वरकी उदासीन रूपतासे स्थितिका कथन होनेतें औ क्षेत्रज्ञ(जीव)के कर्म फलभोगका कथन होनेतें परमेश्वरही द्युलोकादिकोंका आयतन है ॥ ७ ॥

छान्दोग्यके विषे श्रवण होताहै कि "भूमा त्वे वविजिज्ञासितव्यः" इति ॥ अस्यार्थः–भूमा निश्चय करके जिज्ञासा करने योग्य है इति । तहां संशय है कि प्राण भूमा है वा परमेश्वर भूमा है ? अत आह ॥

भूमा सम्प्रसादादध्युपदेशात् ॥ ८ ॥

इस सूत्रके–भूमा १ संप्रसादात् २ अध्युपदेशात् ३ यह तीन पद हैं ॥ संप्रसाद शब्दका वाच्यार्थ सुषुप्ति स्थान है औ तिस सुषुप्तिके विषे जागनेवाला प्राण लक्ष्यार्थ है तिस प्राणके अगाडी भूमाका उपदेश होनेतें भूमा व्यापक परमेश्वर है प्राण नहीं ॥ ८ ॥

धर्मोपपत्तेश्च ॥ ९ ॥

इस सूत्रके–धर्मोपपत्तेः १ च २ यह दो पद हैं॥ "यो वै भूमा तदमृतम्" अस्यार्थः–जो भूमा(व्यापक)है सो अमृत है इति।इन श्रुतिवाक्योंकरके श्रूयमाण जो अमृतत्व सत्यत्व स्वमहिमप्रतिष्ठितत्व सर्वगतत्व सर्वात्मत्वादि धर्म तिनको परमात्माके विषे उपपन्न होनेतें भूमा परमात्मा है ॥ ९ ॥

बृहदारण्यकके विषे श्रवण होता है कि "कस्मिन्नु खल्वाकाश ओतश्च प्रोतश्चेति सहोवाचैतद्वैतदक्षरं गार्गि ब्राह्मणा अभिवदन्त्यस्थूलमनणु" इति ॥ तहां संशय है कि अक्षर शब्द करके वर्णात्मक ओंकारका ग्रहण है अथवा परमात्माका ग्रहण है ? अत आह ॥

अक्षरमम्बरान्तधृतेः ॥ १० ॥

इस सूत्रके–अक्षरम् १ अंबरांतधृतेः २ यह दो पद हैं॥ पृथिवीसे

आदि लेके अम्बर (आकाश) पर्यंत सर्वजगत्का (धृतेः) धारण होनेतैं सर्वको धारणेवाला परमात्मा अक्षर है इति सूत्रार्थः ॥ औ श्रुतिका अर्थ यह है कि याज्ञवल्क्य मुनिके प्रति गार्गी पूछती भई कि हे मुने यह आकाश किसके विषे ओत प्रोत है तब मुनि बोला (कि हे गार्गी जिसको ब्राह्मण ब्रह्मज्ञानी पुरुष) अस्थूल अनणु कहते हैं सो यह अक्षरः है औ तिस अक्षरके विषे आकाश ओत प्रोत है इति ॥ १० ॥

शंकते। जो अम्बरान्तधृतिरूप कार्य करणके अधीन है तो प्रधानकारणवादि सांख्य मतके विषैबी अंबरान्तधृतिरूप कार्य प्रधानरूप कारणके अधीन होसकताहै अत उत्तरमाह।

सा च प्रशासनात् ॥ ११ ॥

इस सूत्रके—सा १ च २ प्रशासनात ३ यह तीन पद हैं॥"एतस्य वा अक्षरस्य प्रशासने गार्गि सूर्याचंद्रमसौ विधृतौ तिष्ठतः"॥इसश्रुतिके विषै परमेश्वरका प्रशासन (शिक्षा) होनेतैं (सा) अम्बरान्तधृति। चेतन परमेश्वरका कर्म है अचेतन प्रधानका नहीं इति सूत्रसारार्थः॥ औ श्रुतिका अर्थ यह है कि हे गार्गि इस अक्षर परमेश्वरकी शिक्षाके विषै सूर्य चन्द्रमा धारण करेहुये स्थित हैं इति ॥ ११ ॥

अन्यभावव्यावृत्तेश्च ॥१२॥

इस सूत्रके—अन्यभावव्यावृत्तेः १ च २ यह दोपदहैं॥अम्बरान्त सर्व जगत्का आधार जो अक्षर ब्रह्म तिसका अन्यभाव(प्रधानादिकों)से (व्यावृत्तेः) भेद होनेतैं अक्षर शब्दका वाच्य परब्रह्म है और तिसीका अम्बरान्तधृति कर्म है अन्यका नहीं ॥ १२ ॥

प्रश्नोपनिषद्के विषै पिप्पलाद गुरु सत्यकाम शिष्यके प्रति ओंकारद्वारा ब्रह्मका ध्यान कहता भया । तहां संशय है कि ओं-

कारद्वारा।(पर निर्गुण) ब्रह्म ध्यानके योग्य है अथवा अपर (सगुण) ब्रह्म ध्यानके योग्य है ? अत आह ॥

ईक्षतिकर्मव्यपदेशात्सः ॥ १३ ॥

इस सूत्रके—ईक्षतिकर्मव्यपदेशात्१सः२यह दो पदहैं॥"स एतस्माज्जीवघनात् परात् परं पुरुषं पुरिशयम् ईक्षते" इस श्रुतिवाक्यके विषै ईक्षते इस पदका अर्थ जो दर्शन तिसका कर्म जो पर पुरुष तिसका कथन होनेतैं परब्रह्म ओंकारद्वारा ध्यानके योग्यहै इति सूत्रसारार्थः॥ औ श्रुति वाक्यका अर्थ यह है कि सो उपासक पुरुष।इस हिरण्य गर्भसे परे निर्गुण ब्रह्मको देखताहै इति ॥ १३ ॥

छान्दोग्यके विषै अल्प हृदय कमलका नाम दहर कहाहै तिस हृदयरूप दहरके विषै ध्यानके वास्ते दहराऽऽकाश कहाहै तहां संशय है कि दहराऽऽकाश भूताकाश है अथवा जीव है वा परमात्मा है ? अत आह ॥

दहर उत्तरेभ्यः ॥ १४ ॥

इस सूत्रके—दहरः१उत्तरेभ्यः२यह दो पद हैं॥उत्तर वाक्य शेषके विषै हेतु होनेतैं भूताकाश औ जीव दहराऽऽकाश नहीं है किंतु दहराऽऽकाश परमात्मा है ॥ १४ ॥

गतिशब्दाभ्यां तथा हि दृष्टं लिंगञ्च ॥ १५ ॥

इस सूत्रके—गतिशब्दाभ्याम्१तथा२हि३दृष्टम्४लिंगम्५च६यह छह पद हैं॥पूर्व जो कहा कि उत्तर दहर वाक्य शेषके विषै हेतु होनेतैं दहराकाश परमात्मा है इति । सो हेतु अब दिखातेहैं "इमाः सर्वाः प्रजा अहरहर्गच्छन्त्य एतं ब्रह्मलोकं न विन्दन्तीति" अस्यार्थः— यह सर्व जीवहैं सो दिनादिनके प्रति सुषुप्तिकालके विषै अपने हृदयमें स्थित'ब्रह्मलोकं' ब्रह्मस्वरूपको प्राप्त होतेहैं औ तिस ब्रह्मलोकको नहीं जानतेहैं इति । यह गति लिङ्गहै अर्थात् गतिरूप हेतु

है । औ तैसेही "सता सोम्य तदा सम्पन्नो भवति" इस श्रुतिवाक्यके विषैबी देखाहै।अस्यार्थः—हे सोम्य श्वेतकेतो यह जीव सुषुप्तिके विषै सद् ब्रह्मके साथ प्राप्त होताहै इति । औ ब्रह्मवाचक ब्रह्मलोक शब्दसे पूर्वोक्त गति हेतुसे औ शब्द हेतुसे दहराऽऽकाश परमात्मा है॥ १५॥

धृतेश्च महिम्नोऽस्यास्मिन्नुपलब्धेः ॥ १६ ॥

इस सूत्रके—धृतेः १ च २ महिम्नः ३ अस्य ४ अस्मिन् ५ उपलब्धेः यह छह पद हैं ॥ (धृतेः) सर्व जगत्के धारण रूप हेतुतैं औ इस धृति रूप नियमके महिमाको इस परमात्माके विषै (उपलब्धेः) प्राप्त होणें तैं दहराऽऽकाश परमात्माहै ॥ १६ ॥

प्रसिद्धेश्च ॥ १७ ॥

इस सूत्रके—प्रसिद्धेः १ च २ यह दो पदहैं॥ "सर्वाणि ह वा इमानि भूतान्याकाशादेव समुत्पद्यन्ते" इत्यादि श्रुतिकरके कारणरूपा ऽऽकाश शब्दको परमेश्वरके विषै प्रसिद्ध होनेतैं दहराऽऽकाश परमेश्वर है औ श्रुतिका अर्थ यह है कि । यह सर्वभूत आकाश शब्दवाच्य परमेश्वरसे उत्पन्न होता है इति ॥ १७ ॥

इतरपरामर्शात् स इति चेन्नासम्भवात् ॥ १८ ॥

इस सूत्रके—इतरपरामर्शात् १ सः २ इति ३ चेत् ४ न ५ असंभवात् ६ यह छह पद हैं शंकते "अथ य एष सम्प्रसादोऽस्माच्छरीरात् समुत्थाय परंज्योतिरुपसम्पद्य स्वेन रूपेणाभिनिष्पद्यते" इस श्रुतिके विषै सम्प्रसाद शब्दसे इतर (जीव) का परामर्श (ग्रहण) होने तैं सो जीव दहराऽऽकाश है (इति चेन्न) ऐसे न कहो।कस्मात्। (असंभवात)बुद्ध्याद्युपाधिकरके परिच्छिन्न जीवकों आकाशके साथ उपमाका असंभव होनेतैं दहराऽऽकाश परमात्मा है।औ श्रुतिका अर्थ यह है कि अथ जाग्रत् स्वप्नके अनंतर जो यह सम्प्रसाद(जीव) है

सो इस शरीरसे उठके समुत्थान करके परंज्योति (परब्रह्म) साक्षात्कार करके अपने ब्रह्मरूपसे तिसीको प्राप्त होता है इति ॥ १८ ॥

उत्तराच्चेदाविर्भूतस्वरूपस्तु ॥ १९ ॥

इस सूत्रके—उत्तरात् १ चेत् २ आविर्भूतस्वरूपः ३ तु ४ यह चार पद हैं ॥ पूर्वसूत्रके विषे असंभव हेतुतें जीवाऽऽशंकाको दूर करी है। अब(उत्तरात्) उत्तर जो इंद्रके प्रति प्रजापतिके वाक्य तिन वाक्यों करके पुनः जीवाऽऽशंकाको उठातेहैं "य एषोऽक्षिणि पुरुषो दृश्यते एष आत्मा" इस वाक्यकरके प्रजापति ब्रह्मा इंद्रके प्रति कहता भया कि हे इंद्र जो यह नेत्रके विषै पुरुष दीखताहै सो यह आत्मा है ऐसे नेत्रके विषै जीवका कथन करके पुनः "य एष स्वप्ने महीयमानश्चरत्येष आत्मा" जो यह स्वप्नके विषै वासनामय विषयोंकरके पूजित हुआ विचारता है सो यह आत्मा है इत्यादि वाक्यों करके जीवका निर्देश होनेतें दहराऽऽकाश जीव है। (चेत्) यदि ऐसे कोई कहै तिसके प्रति (आविर्भूतस्वरूपस्तु) ऐसा कहना चाहिये। तु शब्द पूर्वपक्षकी निवृत्तिके अर्थ है । तथाच—उत्तर प्रजापतिवाक्योंके विषै उपाधिरहित शुद्ध जीवस्वरूपका कथन होनेते दहराऽऽकाश जीव नहीं है किंतु परमात्मा है ॥ १९ ॥

अन्यार्थश्च परामर्शः ॥ २० ॥

इस सूत्रके—अन्यार्थः १ च २ परामर्शः ३ यह तीन पद हैं ॥ जो यह अर्थ "य एष संप्रसादः" इस दहरवाक्यशेषके विषै संप्रसादशब्दसे जीवका परामर्श ग्रहण है सो जीवका जो स्वरूप है तिसके अर्थ नहीं किंतु जीव करके उपासनाके योग्य जो परमेश्वर तिसका जो स्वरूप है तिसके अर्थ है ॥ २० ॥

अल्पश्रुतेरिति चेत्तदुक्तम् ॥ २१ ॥

इस सूत्रके–अल्पश्रुतेः १ इति २ चेत् ३ तत् ४ उक्तम् ५ यह पांच पद हैं ॥ चेत् (यदि) ऐसे कहै कि अल्पहृदयके विषे अल्प आकाशका कथन होनेतें व्यापक परमेश्वर दहराऽऽकाश नहीं किंतु अल्प जीव दहराऽऽकाश है सो कहना ठीक नहीं, काहेतें "अर्भकौकस्त्वात्तद्व्यपदेशाच्च नेति चेन्न निचाय्यत्वादेवं व्योमवच्च" इससूत्र के विषे अल्प हृदयकी अपेक्षासेपरमेश्वरके अल्पतत्त्वका कथनहै २१

मुण्डकके विषे श्रवण होता है कि न "तत्र सूर्यो भाति न चन्द्रतारकं नेमा विद्युतो भांति कुतोऽयमग्निः । तमेव भांतमनुभाति सर्वं तस्य भासा सर्वमिदं विभाति" इति ॥ तहां संशय है कि जिसके भानक 'अनु' पश्चात् सर्वका भान होताहै सो तेजो धातु अर्थात् तेजको धारण करनेवाला कोई पदार्थ है अथवा प्राज्ञ आत्मा है ? अत आह॥

अनुकृतेस्तस्य च ॥ २२ ॥

इस सूत्रके–अनुकृतेः १ तस्य २ च ३ यह तीन पद हैं ॥अनुकृति नाम अनुकरणका है अर्थात् जिसके भानके 'अनु' पश्चात् भान नाम अनुकृति है तिस अनुकृतिरूप हेतुतें सत्यसंकल्प प्राज्ञ आत्मा का उक्त श्रुतिमें ग्रहण है औ सूत्रके विषै (तस्य च) यहहै सो 'तस्य भासा सर्वमिदं विभाति' इसके अर्थको सूचन करता है । तथाच-जिसके प्रकाश करके सर्वसूर्यादिकोंका प्रकाशहोताहै सोप्राज्ञआत्मा है ॥ औ श्रुतिका अर्थ यह है कि तिस ब्रह्मके विषै न सूर्य प्रकाश करताहै औ न चन्द्रमा औ न तारा प्रकाश करतेहैं औ न यह बिजली प्रकाश करती है जहां सूर्यादिक नहीं प्रकाशैं तहां अल्पतेजवाला अग्नि कैसे प्रकाश करै औ तिस ब्रह्मके प्रकाशके पश्चात् सर्व जगत् प्रकाशित होताहै औ तिसकी (भासा) दीप्ति करके यह सर्व जगत् भासता है इति ॥ २२ ॥

अपि च स्मर्यते ॥ २३ ॥

इस सूत्रके–अपि १ च २ स्मर्यते ३ यह तीन पद हैं ॥ (अपि) निश्चय करके अन्य किसीसे प्रकाशित न होवे औ आप सर्वको प्रकाशै ऐसे प्राज्ञ आत्माके स्वरूपका भगवद्गीताके विषै स्मरण होता है "न तद्भासयते सूर्यो न शशांको न पावकः।यद्गत्वा न निवर्त्तते तद्धाम परमं मम॥" इति । अस्यार्थः–हे अर्जुन ! तिस मेरे स्वरूपको सूर्य चन्द्रमा औ अग्नि यह नहीं प्रकाशते हैं औ उपासक लोक जिसको प्राप्तहोके पीछेइस संसारमें नहीं आते हैं सो मेरा परम धाम स्वरूप है इति॥ २३ ॥

कठवल्लीके विषै श्रवण होता है कि "अङ्गुष्ठमात्रः पुरुषो ज्योतिरिवाधूमकईशानोभूतभव्यस्यसएवाद्यसउश्वएतद्वैतत्"इति ॥ तहां संशय है कि अङ्गुष्ठमात्र पुरुष किंवा जीवात्मा है किंवा परमात्मा है ? अत आह ॥

शब्दादेवप्रमितः ॥ २४ ॥

इस सूत्रके--शब्दात् १ एव २ प्रमितः ३ यह तीन पद हैं ॥ 'ईशानो भूतभव्यस्य'इस वाक्यसे निश्चय होताहैकि अङ्गुष्ठमात्र परिमाणवाला पुरुष परमात्मा है औ श्रुतिका अर्थ यह है–यमराज कहता भया कि हे नचिकेतः धूमरहितअग्निकी ज्योतिकेसदृश अङ्गुष्ठमात्र परिमाणवाले हृदयके विषै अङ्गुष्ठमात्र परिमाणवाला पुरुषहै औ भूत भविष्यत् वर्त्तमानका ईशान (नियंता) है औ सोई अब है सोई कल्ह है जो तूं पूंछता है सो यह पुरुष है इति ॥ २४ ॥

सर्वगतपरमात्माकाअङ्गुष्ठमात्रपरिमाणकहनाठीकनहींअतआह ॥

हृद्यपेक्षया तु मनुष्याधिकारत्वात् ॥ २५ ॥

इस सूत्रके–हृदि १ अपेक्षया २ तु ३ मनुष्याधिकारत्वात् ४ यह चार पद हैं ॥ समर्थ औ सकाम मनुष्यको शास्त्रका अधिकार होनेतें

औ मनुष्यके हृदयमें परमात्माकी स्थिति होनेतैंतिस स्थितिकी अपेक्षासे परमात्माको अङ्गुष्ठमात्र परिमाणका कथन है ॥ २५ ॥

तदुपर्यपि बादरायणः सम्भवात् ॥ २६ ॥

इस सूत्रके–तदुपरि १ अपि २ बादरायणः ३ संभवात् ४ यह चार पदहैं॥ जोपूर्वसूत्रके विषै कहा कि मनुष्यकोशास्त्रका अधिकारहै औ मनुष्यके हृदयकी अपेक्षासे परमात्माको अङ्गुष्ठमात्र परिमाणका कथन है सो कहना ठीक है परंतु मनुष्योंके उपरि जो शरीरधारी देवादिकहैंतिनके सामर्थ्यका औ मोक्षकी इच्छाका संभव होनेतैं देवादिकोंकोभी शास्त्रका अधिकार है औ तिनके हृदय औ अङ्गुष्ठकी अपेक्षासे परमात्मा अङ्गुष्ठमात्र है ऐसे बादरायण आचार्य मानता है ॥ २६ ॥

विरोधः कर्मणीति चेन्नानेकप्रतिपत्तेर्दर्शनात् ॥ २७ ॥

इस सूत्रके--विरोधः १ कर्माणि २ इति ३ चेत् ४ न ५ अनेकप्रतिपत्तेः ६ दर्शनात् ७ यह सात पद हैं ॥ जो इंद्रादिकदेवोंके शरीरका स्वीकार करके शास्त्रका अधिकार कहोगे तो शरीरधारी इंद्रादिक देवोंको एककालके विषै बहुत यज्ञकर्मका अंग नहीं होनेतैं यज्ञकर्मके विषै विरोध होवैगा (इतिचेन्न) ऐसे न कहो । कस्मात्(अनेकप्रतिपत्ते-र्दर्शनात्) जैसे एक योगी अपने योगबलसे अनेक शरीर धारताहै तैसे एक देवके भी अपने सामर्थ्यबलसे अनेक शरीरकी प्राप्तिका श्रुतिस्मृतिके विषै दर्शन होनेतैं यज्ञादि कर्मके विषै विरोध नहीं ॥

शब्द इति चेन्नातः प्रभवात्प्रत्यक्षानुमानाभ्याम् ॥२८॥

इस सूत्रके–शब्दः १ इति २ चेत् ३ न ४ अतः ५ प्रभवात् ६ प्रत्यक्षा-नुमानाभ्याम् ७ यह सात पद हैं ॥ यद्यपि कर्मके विषै विरोध नहीं तथापि औत्पत्तिक सूत्रके विषै शब्द औ अर्थको अनादि मानके बिनके सम्बन्धको अनादि मानाहै औवेदको अन्य किसी प्रमाणकी

अपेक्षा न होनेतें वैदिक शब्दके विषै प्रामाण्य स्थापित किया है । प्रमाणके धर्मका नाम प्रामाण्यहै औ जो अब अनित्यजन्ममरणवाले देवादि शरीरके साथ नित्यशब्दका सम्बंध कहोगे तो सम्बन्धको अनित्य होनेतें शब्दके विषै विरोध होवैगा(इति चेन्न)ऐसे न कहो। कस्मात् (अतः प्रभवात्) इसी वैदिकशब्दसे देवादि जगत्की उत्पत्ति होनेतें । शंकते—तुम शब्दसे जगत्की उत्पत्ति कैसे जानतेहो? अत आह (प्रत्यक्षानुमानाभ्याम्)अन्य प्रमाणकी अपेक्षा न करनेतें श्रुति प्रत्यक्ष हैऔ अन्य प्रमाणकी अपेक्षा करनेतें स्मृति अनुमानहै सो श्रुति स्मृति नित्य वैदिकशब्दसे जगत्की उत्पत्ति कही है॥२८॥

अत एव च नित्यत्वम् ॥ २९ ॥ वेदकी प्राप्ति

इस सूत्रके—अतः१एव२च३नित्यत्वम्४यह चारपदहैं ॥ देवादिसर्व जगतको वेदशब्दसे उत्पन्न होनेतें वेदशब्द नित्य है इसी अर्थको वेदव्यासकी स्मृति कहती है "युगान्तेऽन्तर्हितान्वेदान्सेतिहासान्महर्षयः ।लेभिरे तपसा पूर्वमनुज्ञाताः स्वयंभुवा॥"इति ।अस्यार्थः—प्रलयकालके विषय इतिहासकरके सहितअन्तरधानभये जोवेद तिनको सृष्टिके आदिकालमें ब्रह्माकरके आज्ञाको प्राप्तभये महर्षि तप करके प्राप्त होते भये इति ॥ २९ ॥

महाप्रलयके विषै सर्वजगत्अपनेनामरूपको त्यागकेलीनहोता है औ महासृष्टिके विषै नवीन उत्पन्न होताहै इसीसे शब्द औ अर्थके सम्बन्धको अनित्य होनेतें शब्द प्रामाण्यके विषै विरोधहै अतआह॥

समाननामरूपत्वाच्चावृत्तावप्यविरोधो दर्शनात् स्मृतेश्च ॥ ३० ॥

इस सूत्रके—समाननामरूपत्वात् १ च २ आवृत्तौ ३अपि ४ अविरोधः५ दर्शनात्६ स्मृतेः ७ च८ यह आठ पदहैं ॥"सूर्याचन्द्रमसौ धाता यथापूर्वमकल्पयत्"इत्यादि श्रुतिसे औ"ऋषीणां नामधेयानि

याश्च वेदेषु दृष्टयः ॥शर्वर्यन्तेप्रसूतानां तान्येवैभ्यो ददात्यजः” इत्या दि स्मृतिसे(आवृत्तावपि)वारंवार महाप्रलय महासृष्टिके विषै भी जग त्समान नामरूपवाला होनेतैं शब्द प्रामाण्यकेविषै विरोध नहीं ‘धाता’ परमेश्वर पहिले(पूर्व कल्पमें) जैसे सूर्य चन्द्रमा थे तैसेही रचता भया इति श्रुत्यर्थः ॥ औ ‘अजः’ परमेश्वर प्रलयके अन्तमें उत्पन्न भये ऋषियोंके नाम औ वेदोंके विषै दृष्टि जैसे पहले (पूर्वकल्प) में थे तैसेही तिनको देता है इति स्मृत्यर्थः ॥ ३० ॥

मध्वादिष्वसम्भवादनधिकारं जैमिनिः ॥३१॥

इस सूत्रके—मध्वादिषु १ असंभवात् २ अनधिकारम् ३ जैमिनिः ४ यह चार पद हैं ॥ ब्रह्मविद्याके विषै देवादिकोंका अधिकार नहीं ऐसे जैमिनि आचार्य मानताहै।कस्मात्(मध्वादिष्वसंभवात्)“असौआदित्यो मधु” यह मधुविद्याका वाक्यहै इसका अर्थ यहहै कि देवोंके मोदका हेतु होनेतें यह आदित्य मधुकी न्याईं मधु है ऐसे मनुष्य लोक आदित्यका मधुरूपसे ध्यान करतेहैं इहां मनुष्य ध्याताहै औ आदित्य ध्येय है। जो देवोंको विद्या अधिकार होवै तो इस विद्याके विषै आदित्यदेव किसका ध्यान करै अपना आपही ध्याता औ ध्येय नहीं होसकता ॥ ३१ ॥

ज्योतिषि भावाच्च ॥ ३२ ॥

इस सूत्रके—ज्योतिषि १ भावात् २ च ३ यह तीन पद हैं ॥ आदित्य सूर्य चंद्र इत्यादि शब्दोंका ज्योतिर्मंडलके विषै प्रयोगहोनेतें औ “आदित्यः पुरस्तादुदेता पश्चादस्तमेता” इस मधुविद्यावाक्यशेष करके ज्योतिर्मंडलके विषै आदित्य शब्दको प्रसिद्ध होनेतें आदित्यादि देव शरीरधारी नहींहैं । औ वाक्यशेषका अर्थ आदित्य सबके पहले उदय होताहै औ सबके पीछे अस्त होताहै इति ॥ ३२ ॥

भावं तु बादरायणोऽस्ति हि ॥ ३३ ॥

इस सूत्रके-भावम् १ तु २ बादरायणः ३ अस्ति ४ हि ५ यह पांच पद हैं ॥ 'तु'शब्द पूर्वपक्षकी निवृत्तिके अर्थ है यद्यपि देवता करके मिलित मध्वादि विद्याके विषै देवादिकोंका अधिकार नहींहै तथापि शुद्धब्रह्मविद्याके विषै देवादिकोंके अधिकार भावको बादरायण आचार्य मानता है।औ इस अर्थको श्रुतिभी कहती है "तद्योयो देवानां प्रत्यबुध्यत ससएव तदभवत्"इति।अस्यार्थः--देवोंके विषै जो जो देव ब्रह्मको जानता भया सो सो ब्रह्म होता भया इति।औ देवताके शरीर धारनेमें स्मृति प्रमाण है "आदित्यः पुरुषो भूत्वा कुंतीमुपजगाम" इति। अस्यार्थः--आदित्य पुरुष होके कुंतीके समीप जाताभया इति ॥ ३३ ॥ (शूद्राधिकारो नास्ति)

शुगस्य तदनादरश्रवणात्तदा द्रवणात्सूच्यते हि ॥ ३४ ॥

इस सूत्रके--शुक् १अस्य२तदनादरश्रवणात् ३तदा ४ द्रवणात् ५ सूच्यते६हि७यह सात पद हैं॥जैसे देवता औ द्विजातिमनुष्योंको विद्याका अधिकार है तैसे शूद्रकोभी विद्याका अधिकार है इसशंकाको दूर करने वास्ते इस अधिकरणका आरंभ है। श्रवण होताहै कि-जानश्रुति राजा निदाघकालमें रात्रिके विषै अपने महलके ऊपर सोताभया तब तिस राजाके अन्नदानादिकोंसे प्रसन्नभये ऋषि हैं सो हंसहोके राजाके ऊपर आते भये तिन हंसोंमें जो पीछे हंस था सो अगाडी चलनेवाले हंसको बोला कि हे भद्राक्ष!जानश्रुति राजाका तेज स्वर्गपर्यंत स्थित होरहा है सो तेरेको दग्ध करेगा तब अगाडी चलनेवाला हंस बोला कि इस विद्याहीन राजाका क्या तेज है ब्रह्मज्ञानी रैक्क ऋषिका तेज बहुत है हमारे वचनसे राजा रैक्कके समीप जायके विद्यावान् होवैगा यह हंसों का अभिप्राय था हंसोंके वाक्यसे अपना अनादर सुना तब राजाको शोक उत्पन्न भया तब६सौ गौ औ एक रथ लेके रैक्क के समीप जाताभया गौ औ रथ निवेदन करके राजा बोला कि हे

गुरो मेरेको विद्याका उपदेश करो तब कन्यार्थी रैक बोला कि हे शूद्र! यह रथ गौ तेरेही रहो मेरे पत्नीहीनके किसकामका है इति ॥ यद्यपि राजा जातिशूद्र नहींथा तथापि जो हंसवाक्यसे राजाको शोक उत्पन्न भया सोही हे शूद्र ! इस रैक्क वाक्यसे सूचित भया ॥ ३४ ॥

क्षत्रियत्वगतेश्चोत्तरत्र चैत्ररथेन लिङ्गात् ॥ ३५ ॥

इस सूत्रके–क्षत्रियत्वगतेः १ च २ उत्तरत्र ३ चैत्ररथेन ४ लिंगात् ५ यह पांच पद हैं ॥ संवर्ग विद्या वाक्यशेषके विषे श्रवण होता है कि चित्ररथ राजाके वंशमें अभिप्रतारिनाम क्षत्रिय राजा होता भया तिसके साथ समान विद्याके विषै जानश्रुति राजाका कथन होनेतें जानश्रुति राजा क्षत्रिय था जातिशूद्र नहीं था जाति शूद्रको विद्याका अधिकार नहीं ॥ ३५ ॥

संस्कारपरामर्शात्तदभावाभिलापाच्च ॥ ३६ ॥

इस सूत्रके--संस्कारपरामर्शात् १ तदभावाभिलापात् २ च ३ यह तीन पद हैं ॥ शास्त्रके विषै विद्या ग्रहणका अङ्ग उपनयनादि-संस्कार कहाहै और शूद्रको उपनयनादि संस्कारका अभाव कहाहै इसीसे शूद्रको विद्याका अधिकार नहीं ॥ ३६ ॥

तदभावनिर्धारणे च प्रवृत्तेः ॥ ३७ ॥

इस सूत्रके–तदभावनिर्धारणे १ च२प्रवृत्तेः ३ यह तीन पद हैं ॥ श्रवण होता है कि सत्यकामका पिता मरगया जब अपनी माता जा-बाला को पूछा कि मेरा गोत्र क्या है तब जाबाला बोली कि मैं तेरे पिताकी सेवामें व्यग्रचित्त रही इसीसे तेरे पिताका गोत्र नहींजानती इतना जानतीहों कि जाबाला मेरा नाम है औ सत्यकाम तेरा नामहै तिसके अनन्तर सत्यकाम गौतमऋषिके समीप जाताभया जब गौतम बोला कि तेरा गोत्र क्याहै? तब सत्यकामबोला कि मैं मेरा गोत्र नहीं जानता औ मेरी माताभी नहीं जानती है परंतु मेरी माता बोली कि

तुम उपनयन संस्कारके वास्ते आचार्यके समीप जाओ औ ऐसे कहो कि सत्यकाम मेरा नाम है औ जाबालाका पुत्रहों इति । तब गौतम बोला कि हे सौम्य तेरे सत्यवचन करके निर्धार होताहै कि तूं शूद्र नहीं है तूं समिध लेआ तेरा उपनयन करेंगे इस गौतमकी प्रवृत्तिसे जाना जाताहै कि शूद्रको विद्याका अधिकार नहींहै॥३७॥

श्रवणाध्ययनार्थप्रतिषेधात्स्मृतेश्च ॥ ३८ ॥ गौतम

इस सूत्रके—श्रवणाध्ययनार्थप्रतिषेधात्१स्मृतेः २ च३यह तीन पदहैं ॥ "अथास्यवेदमुपशृण्वतस्त्रपुजतुभ्यांश्रोत्रप्रतिपूरणम्" इति । "न शूद्राय मतिं दद्यात्" इति च॥इन स्मृतियों करके शूद्रको वेदश्रवणका औ वेदके अध्ययनका औ वेदार्थके अनुष्ठानका निषेध होनेतैं शूद्रको वेदविद्याका अधिकार नहीं । औ स्मृतिका अर्थ यह है कि जब ब्राह्मण वेदका पाठ करे तब शूद्र प्रमादसे वेदको सुने तो सीसे को वा लाखको तपायके तिसके श्रोत्रको पूरण करे इति औ शूद्र को वेदका ज्ञान नहीं देना इति च ॥ ३८ ॥

जिस करके यह सर्व जगत् चेष्टा करता है सो प्राण है वा चिदात्मा है? अत आह ॥

कम्पनात् ॥ ३९ ॥

इस सूत्रका—कम्पनात्१ यह एकही पद है ॥ "भीषास्माद्वातः पवते भीषोदेति सूर्यः ॥ भीषास्मादग्निश्चेंद्रश्च मृत्युर्धावति पंचमः" इस श्रुतिसे जाना जाता है कि सर्वजगत्की चेष्टाका हेतु चिदात्मा है । औ श्रुतिका अर्थ यह है कि इस परमेश्वरसैं भय करके वायु पवित्र करता है औ सूर्य उदय होता है औ अग्नि दाह करता है औ इंद्र वृष्टि करता है औ पांचमा मृत्यु दौडता है इति ॥ ३९ ॥

छान्दोग्यके विषै श्रवण होताहै कि यह जीव सुषुप्तिकालमें इस शरीरको त्यागके परज्योतिके साथ मिलता है तहां संशय है कि

ज्योतिशब्दसे तमोनाशक तेजका ग्रहण है वा परब्रह्मका ग्रहण है? यद्यपि "ज्योतिश्चरणाभिधानात्" इस सूत्रके विषै ज्योतिका विचार किया है तथापि तहां ज्योतिःशब्द अपने अर्थको त्यागके ब्रह्मके विषै वर्तता है औ इहां अर्थ त्यागमें कोई कारण नहीं दीखता यह पूर्व पक्षीका अभिप्राय है अत आह ॥

ज्योतिर्दर्शनात् ॥ ४० ॥

इस सूत्रके-ज्योतिः १ दर्शनात् २ यह दो पद हैं ॥ "य आत्माऽपहतपाप्मा" अस्यार्थः-जो आत्मा है सो सर्वपापरहित है इति ॥ इस श्रुतिवाक्यके विषै सर्वपापरहितत्वका दर्शन होनेतैं ज्योतिशब्दसे परब्रह्मका ग्रहण है ॥ ४० ॥

छान्दोग्यके विषै श्रवण होताहै कि "आकाशो ह वै नामरूपयोर्निर्वहिता" अस्यार्थः-नामरूपका निर्वाह करनेवाला आकाशहै इति । तहां संशय है कि आकाशशब्दसे भूताकाशका ग्रहण है वा परब्रह्मका ग्रहण है? अत आह ॥

आकाशोऽर्थान्तरत्वादिव्यपदेशात् ॥ ४१ ॥

इस सूत्रके-आकाशः १ अर्थांतरत्वादिव्यपदेशात् २ यह दो पदहैं॥ "ते यदन्तरा तद्ब्रह्म"। अस्यार्थः-जो तेरे भीतर है सो ब्रह्म है इति । इस श्रुतिवाक्य करके नाम रूप से भिन्न आकाशका कथन होनेतैं आकाशशब्दसे परब्रह्मका ग्रहण है । औ जो पूर्व "आकाशस्तल्लिङ्गात्" यह सूत्र कहा है तिसका विस्तार इहां कहा है इसीसे पुनरुक्तिदूषण नहीं ॥ ४१ ॥

बृहदारण्यकके विषै श्रवण होता है कि याज्ञवल्क्य ऋषिके प्रति राजाजनक पूछताभया कि हे भगवन् ! आत्मा कौन है ? तब ऋषि बोले कि विज्ञानमय आत्मा है । तहां संशय है कि याज्ञवल्क्य ऋषि संसारी जीवत्माका स्वरूप कहतेभये वा असंसारी प्राज्ञात्मा का स्वरूप कहतेभये? अत आह ॥

सुषुप्त्युत्क्रान्त्योर्भेदेन ॥ ४२ ॥

इस सूत्रके—सुषुप्त्युत्क्रान्त्योः १ भेदेन २ यह दो पदहैं ॥ सुषुप्तिके विषे औ मरणके विषे जीवात्माका औ प्राज्ञात्माका भेद करके कथन किया है इसीसे जानाजाता है कि याज्ञवल्क्य ऋषि असंसारी प्राज्ञात्माका स्वरूप जनकके प्रति कहतेभये ॥ ४२ ॥

पत्यादिशब्देभ्यः ॥ ४३ ॥

इस सूत्रका--पत्यादिशब्देभ्यः १ यह एकही पद है ॥ "सर्वस्य वशी सर्वस्येशानः सर्वस्याधिपतिः" इत्यादि श्रुतिवाक्योंके विषे पत्यादि शब्दोंसेभी असंसारी प्राज्ञात्माके स्वरूपका कथन है। औ श्रुतिवाक्यका अर्थ यहहै कि सो परमात्मा सर्वके अपराधीन है औ सर्वका नियंता है औ सर्वका अधिपति है इति ॥ ४३ ॥

इति श्रीमन्मौक्तिकनाथयोगिविरचितायांब्रह्मसूत्रसारार्थप्रदीपिकायांप्रथमाध्यायस्यतृतीयःपादः ॥ ३ ॥

प्रथमाध्याये चतुर्थः पादः ।

आनुमानिकमप्येकेषामिति चेन्न शरीररूपकविन्यस्त गृहीतेर्दर्शयति च ॥ १ ॥

इस सूत्रके—आनुमानिकम् १ अपि २ एकेषाम् ३ इति ४ चेत् ५ न ६ शरीररूपकविन्यस्तगृहीतेः ७ दर्शयति ८ च ९ यह नौ पद हैं ॥ "ईक्षतेर्नाशब्दम्" इस सूत्रके विषे कहाहै कि अशब्दप्रधान जगत्का कारण नहीं इति। अब सांख्यवादी कहताहै कि यद्यपि प्रधान अनुमानसे जानाजाताहै तथापि किसी वेदकी शाखावाले पुरुषोंको प्रधान शब्द प्राप्त होताहै जैसे कठवल्लीके विषे "महतः परमव्यक्तमव्यक्तात् पुरुषः परः" इति। अस्यार्थः—महतत्त्वसे पर अव्यक्तहै औ

अव्यक्तसे परपुरुषहै इति । इस वाक्यमें अव्यक्त नाम प्रधानका है सो प्रधान कारण है यह सांख्यवादीका कहना समीचीन नहीं, काहेतें? किसी प्रकरणके विषे आत्माको रथीरूपसे ग्रहण करके औ शरीरको रथरूपसे ग्रहण करके दिखाया है इसीसे यहभी जानाजाता है कि उक्तवाक्यके विषे अव्यक्त शब्दसे शरीरका ग्रहण है प्रधानका नहीं ॥ १ ॥

पूर्व जो कहा कि उक्तवाक्यके विषे अव्यक्तशब्दसे प्रधानका ग्रहण नहीं किंतु शरीरका ग्रहणहै सो कहना ठीक नहीं,काहेतें? अव्यक्त शब्दका अर्थ सूक्ष्म है औ शरीर स्थूल है सो अव्यक्त शब्दका अर्थ नहीं होसकताहै अत आह ॥

सूक्ष्मं तु तदर्हत्वात् ॥ २ ॥

इस सूत्रके–सूक्ष्मम् १ तु २ तदर्हत्वात् ३ यह तीन पद हैं ॥ 'तु'शब्द पूर्वपक्षकी निवृत्तिके अर्थ है इहां सूक्ष्मशरीर कारण रूप करके विवक्षित है सो अव्यक्तशब्दके योग्य है पूर्व अवस्थाके विषे यह जगत् अपने नामरूपको त्यागके बीजशक्तिके विषे स्थित है सोई अव्यक्त शब्दके योग्य है ॥ २ ॥

शंकते–जो तुम कहते हो कि सृष्टिसे पूर्व अवस्थाके विषे यह जगत् अपने नामरूपको त्यागके बीज शक्तिमें स्थित रहताहै इसीको हम प्रधान कारण वाद कहते हैं अत आह ॥

तदधीनत्वादर्थवत् ॥ ३ ॥

इस सूत्रके–तदधीनत्वात् १ अर्थवत् २ यह दो पद हैं ॥ जो हम इस जगत्की पूर्व अवस्थाको स्वतंत्र मानें तो हमारे मतमें प्रधान कारण वादका प्रसंग होवै किंतु इस जगतकी पूर्व अवस्थाको परमेश्वरके अधीन मानते हैं इसीसे यह पूर्व अवस्था अर्थवाली है ॥३॥

ज्ञेयत्वावचनाच्च ॥ ४ ॥

इस सूत्रके–ज्ञेयत्वावचनात् १ च २ यह दो पदहैं॥ "गुणपुरुषा-

न्तरज्ञानात्कैवल्यम्" इति। यह सांख्यस्मृति है इहां सांख्यवादी कहताहै कि जब सत्त्व रज तम इन तीन गुणरूप प्रधानसे पुरुषका भेद ज्ञान होवै तब मोक्ष होवै औ तीन गुणरूप प्रधानको जाने बिना पुरुषका भेदज्ञान होवै नहीं इसीसे प्रधान ज्ञेय है यह सांख्यवादीका कहना ठीक नहीं।काहेतें "महतःपरमव्यक्तमव्यक्तात्पुरुषःपरः" इस वाक्यके विषे प्रधानको ज्ञेय नहीं कहा किंतु अव्यक्त इतना शब्दमात्र कहा है इसीसे अव्यक्त शब्द करके प्रधानका ग्रहण नहीं॥४॥

वदतीति चेन्न प्राज्ञो हि प्रकरणात् ॥ ५ ॥

इस सूत्रके–वदति १ इति २ चेत् ३ न ४ प्राज्ञः ५ हि ६ प्रकरणात्७ यह सातपदहैं। "अशब्दमस्पर्शमरूपमव्ययम्" इत्यादि श्रुति अव्यक्तशब्दवाच्य प्रधानको ज्ञेय कहती है यह सांख्यवादीका कहना समीचीन नहीं, काहेतें यह प्रकरण प्रधानका नहीं किंतु प्राज्ञात्माका है इस श्रुतिके विषे जो शब्दसे रहित औ स्पर्शसे रहित औ रूपसे रहित औ अखण्ड एकरस कहा है सो प्राज्ञात्मा है ॥ ५ ॥

त्रयाणामेव चैवमुपन्यासः प्रश्नश्च ॥ ६ ॥

इस सूत्रके–त्रयाणाम् १ एव २ च ३ एवम् ४ उपन्यासः ५ प्रश्नः ६ च ७ यह सात पद हैं॥कठवल्लीके विषे श्रवण होताहै कि नचिकेताके प्रति यमराज कहता भया कि हे नचिकेतः तूं मेरेसे तीन वर मांग तब नचिकेता अग्नि १ जीव २ परमात्मा ३ इन तीनके जाननेवास्ते तीन प्रश्न करताभया औ नचिकेताके अगाडी इन तीनहींका निरूपण यमराज करताभया प्रधानको विषय करनेवाला न प्रश्न है औ न निरूपण है इससे प्रधान अव्यक्तशब्दका वाच्य नहीं औ ज्ञेयभी नहीं६॥

महद्वच्च ॥ ७ ॥

इस सूत्रके–महद्वत् १ च २ यह दो पद हैं॥जैसे सत्त्वगुण प्रधान प्रकृतिका जो पहिला परिणाम है तिसके विषे सांख्यवादी महत्शब्द

का प्रयोग करते हैं तैसे "बुद्धेरात्मा महान्परः" बुद्धिसे महान् आत्मा परेहै इत्यर्थः। इत्यादि वैदिक प्रयोगके विषैआत्मशब्दरूप हेतु होनेतें महत् शब्द प्रकृतिके परिणामको नहीं कहता तैसेही वैदिक प्रयोगके विषै अव्यक्त शब्द प्रधानको नहीं कहता इसीसे प्रधान अशब्द है ७॥

"अजामेकां लोहितशुक्लकृष्णां बह्वीः प्रजाः सृजमानां सरूपाः"॥ अजो ह्येको जुषमाणोऽनुशेते जहात्येनां भुक्तभोगामजोऽन्यः" अस्यार्थः—रज सत्त्व तम इन तीन गुणमयी औ अपने सदृश बहुत प्रजाको उत्पन्न कररही ऐसी एक अजा प्रकृति है तिसको एक अजपुरुष सेवताहुवा सुखी दुःखी होके संसारको प्राप्त होता है औ दूसरा अज विरक्त पुरुष किया है भोग जिसका ऐसी प्रकृतिको त्यागता है इति ॥ इस श्रुतिके विषै अजा नाम प्रधानका है सो श्रुतिमूलक प्रधान अशब्द नहीं यह सांख्यवादीकी शंका है तिसको दूर करते हैं ॥

चमसवदविशेषात् ॥ ८ ॥

इस सूत्रके—चमसवत् १ अविशेषात् २ यह दो पद हैं॥ "अर्वाग्बिलश्चमस ऊर्ध्वबुध्नः"॥ जैसे इस मंत्रके विषै यह नियम नहीं होसकता कि जिसका नीचे बिल होवै औ ऊपरसे गोल होवै ऐसा चमसनामा यज्ञपात्र ही होता है अन्यभी सर्वत्र यथा कथंचित ऐसा होसकता है तैसे 'अजामेकां' इस मंत्रके विषैभी यह नियम नहीं होसकता कि अजाशब्दसे सांख्यपरिकल्पित प्रधानका ग्रहण है अन्यमायादिकोंकाभी ग्रहण होसकता है ॥ ८ ॥

सांख्यपरिकल्पित प्रधानका नाम अजा नहीं है तो अजा नाम किसका है ? अत आह ।

ज्योतिरुपक्रमात्तु तथा ह्यधीयत एके ॥ ९ ॥

इस सूत्रके—ज्योतिरुपक्रमात् १ तु २ तथा ३ हि ४ अधीयते ५

एके ६ यह छह पदहैं ॥ 'तु'शब्द निश्चयार्थहै जो ज्योतितें आदिलेके परमेश्वरसे उत्पन्न भयेहैं औ जरायुज अण्डज स्वेदज उद्भिज्ज इन चार प्रकारके भूतोंके कारण हैं ऐसे तेज १ जल २ पृथिवी ३ इन तीन भूतोंका नाम अजा है सांख्यकल्पित तीनगुणका नाम अजा नहीं औ छान्दोग्यशाखावाले कहते हैं कि लोहित लालरूप तेजका है औ शुक्लरूप जलकाहै औ कृष्णरूप पृथिवीका है इसीसे इन तीन भूतोंका नाम अजा है इति ॥ ९ ॥

शंकते–तेज १जल२पृथिवी३ इन तीनके विषै अजाकी आकृति नहीं है औ इन तीनके जन्मका श्रवण होता है औ अजा नाम अजन्माकाहै सो अजन्माप्रधानहै तिसीका नामअजाहै अतआह॥

कल्पनोपदेशाच्च मध्वादिवदविरोधः ॥ १० ॥

इस सूत्रके–कल्पनोपदेशात् १ च २ मध्वादिवत् ३ अविरोधः ४ यह चार पद हैं ॥ यह अजाशब्द आकृतिऔ अजन्मके निमित्त नहींहै किंतु जैसे आदित्य मधु नहींहै परन्तु आदित्यके विषै मधुकी कल्पना करके उपासना करतेहैं तैसे तेज१जल २ पृथिवी३इन तीन के विषै अजाकी कल्पनाका उपदेशहोनेतें कोई विरोध नहीं ॥१०॥

पुनः शंकते–"यस्मिन् पञ्च पञ्चजना आकाशश्च प्रतिष्ठितः।तमेव-मन्य आत्मानं विद्वान् ब्रह्मामृतोऽमृतम्" इति ॥ इस श्रुतिके विषै दो पञ्च शब्दका श्रवण होता है औ पञ्चको पञ्चगुणा करनेसे पच्चीस होते हैं सोई पच्चीसतत्त्व सांख्यमें कहे हैं इसीसे प्रधानशब्द श्रुति मूलक है अत आह ॥

न संख्योपसंग्रहादपि नानाभावादतिरेकाच्च॥ ११ ॥

इस सूत्रके–न १संख्योपसंग्रहात्२ अपि३ नानाभावात्४अति-रेकात्५च६यह छह पद हैं ॥ संख्याका उपसंग्रह होनेतें प्रधान श्रुति-

मूलक नहीं हो सकता काहेतें?यह पचीस तत्त्व नाना हैं इन पञ्च पञ्चके विषे ऐसा साधारण धर्म कोई नहींहै जिससेपचीसकीसंख्याका ग्रहण होवे जैसे सप्तऋषि सप्त हैं तैसेही पञ्चजन पञ्च हैं पचीस नहीं हैं औ इस श्रुतिके विषे आकाश औ आत्मायह दोअधिक कहेहैं इसीसे पचीस तत्त्वका ग्रहण नहीं होसकता। औ श्रुतिका अर्थ यह है कि प्राण१ चक्षु २ श्रोत्र ३ अन्न४मन५औ इनका कारण आकाश यह जिसके विषे स्थित हैं तिस अमृत ब्रह्म आत्माको मैं मानताहूं औ इस मननसे मैं विद्वान् अमृतरूप हों इति ॥ ११ ॥

जो पचीस तत्त्वका नाम पञ्चजन नहीं तो किसका नाम है इस शंकाको दूर करते हैं सूत्रकार ॥

प्राणादयो वाक्यशेषात् ॥ १२ ॥

इस सूत्रके–प्राणादयः१वाक्यशेषात् २ यह दो पद हैं॥ 'यस्मिन् पञ्च पञ्चजनाः' इस वाक्यके उत्तर ब्रह्मस्वरूपनिरूपणके वास्ते "प्राणस्य प्राणमुतचक्षुपश्चक्षुरुत श्रोत्रस्य श्रोत्रमन्नस्यान्नं मनसोये मनो विदुः" यह वाक्यशेष है इसके विषे जो प्राण१चक्षु २श्रोत्र३ अन्न ४ मन५यह पञ्च कहे हैं सो पञ्चजनहैं, काहेते?पञ्चजनशब्दकी प्राणादिकोंमें लक्षणा है। औ वाक्यशेषका अर्थ यह है कि जो विवेकी पुरुष है सो तिस ब्रह्मको प्राणका प्राण औ चक्षुका चक्षु औ श्रोत्रका श्रोत्र औ अन्नका अन्न औ मनका मन जानते हैं इति॥१२॥

पुनः शंकते–माध्यंदिनिशाखावाले प्राणादिकोंके विषे अन्नका कथन करतेहैं तिनके मतमें प्राणादिक पञ्चजन हैं औ काण्वशाखा वाले प्राणादिकोंके विषे अन्नका कथन नहीं करते तिनके मतमें प्राणादिक पञ्चजन कैसे हैं ? अत आह ॥

ज्योतिषैकेषामसत्यन्ने ॥ १३ ॥

इस सूत्रके–ज्योतिषा१एकेषाम्२असति३अन्ने४यहचार पदहैं ॥

यद्यपि काण्वशाखावाले प्राणादिकोंके विषे अन्नका कथन नहीं क-
रते तथापि ज्योति करके पञ्च संख्याको पूरतेहैं ॥ १३ ॥

"आत्मन आकाशःसंभूतः" आत्मासे आकाश उत्पन्न होताभया "तत्तेजोऽसृजत" सो ब्रह्म तेजको रचताभया "स प्राणमसृजत" सो प्राणको रचताभया इत्यादि वेदांतवाक्योंके विषे सृष्टिक्रमका विरोध होनेतें जगत्का कारण ब्रह्म नहीं हो सकताहै अत आह ॥

कारणत्वे न चाकाशादिषु यथा व्यपदिष्टोक्तेः ॥ १४ ॥

इस सूत्रके–कारणत्वे १ न २ च ३ आकाशादिषु ४ यथा ५ व्यप-
दिष्टोक्तेः ६ यह छह पद हैं ॥ जैसा एक वेदांतके विषे सर्वज्ञ सर्वेश्वर अद्वितीय ब्रह्म जगत्का कारण कहा है तैसाही दूसरे वेदांतके विषे कहा है इसीसे नाना आकाशादि कार्यके विषे सृष्टिक्रमका विरोध है औ कारण ब्रह्मके विषे कोई विरोध नहीं ॥ १४ ॥

"असद्वा इदमग्र आसीत्" यह जगत् सृष्टिके पूर्व असत् होता-
भया इस वाक्यसे जाना जाता है कि इस जगत्का कारण असत् है सत् नहीं अत आह ॥

समाकर्षात् ॥ १५ ॥

इस सूत्रका–समाकर्षात् १ यह एकही पद है ॥ "असद्वा इदमग्र आसीत्" इस वाक्यके अगाडी असत्वादको दूर करके "सद्वाइदमग्र आसीत्" यह जगत् सृष्टिके पहिले सत् होताभया इस वाक्यका समाकर्षण कियाहै इसीसे जानाजाता है कि इस जगत्का कारण सत् ब्रह्म है ॥ १५ ॥

कौषितकि ब्राह्मणके विषे श्रवण होताहै कि काशीका राजा अ-
जातशत्रु बालाकि ब्राह्मणके प्रति कहताभया कि "यो वै बालाक एतेषां पुरुषाणां कर्त्ता यस्य वैतत्कर्म स वै वेदितव्यः" इति । अ-
स्यार्थः–हे बालाके जो आदित्यादि पुरुषोंका कर्ता है जिसका यह सर्व जगत् कर्म (कार्य) है सो जानने योग्य है इति । तहां संशय

है कि जानने योग्य जीव कहा है वा मुख्य प्राण कहा है वा परमात्मा कहा है अत आह ॥

जगद्वाचित्वात् ॥ १६ ॥

इस सूत्रका–जगद्वाचित्वात् १ यह एकही समस्त पद है॥ उक्त श्रुतिके विषै परमात्मा जानने योग्य कहा है काहेतें श्रुतिके विषै कर्मपद है सो सर्व जगत्का वाचक है सर्व जगत्रूप कार्य परमात्माके विना अन्य किसीका नहीं हो सकता ॥ १६ ॥

जीवमुख्यप्राणलिङ्गान्नेति चेत्तद्व्याख्यातम् ॥ १७ ॥

इस सूत्रके–जीवमुख्यप्राणलिङ्गात् १ न २ इति ३ चेत् ४ तत् ५ व्याख्यातम् ६ यह छह पद हैं॥ जो यह कहाहै कि वाक्यशेषके विषै जीवका लिङ्ग होनेतें औ मुख्य प्राणका लिङ्ग होनेतें जीवका वा मुख्य प्राणका ग्रहण करना योग्य है सो कहना समीचीन नहीं,काहेतें ? "नोपासात्रैविध्यादाश्रितत्वादिहतद्योगात्" इस सूत्रके विषै त्रिविध उपासनाके प्रसंगरूप दूषणतें इसका व्याख्यान पूर्व कर आयेहैं॥ १७ ॥

अन्यार्थं तु जैमिनिःप्रश्नव्याख्यानाभ्यामपि चैवमेके १८

इस सूत्रके -अन्यार्थम् १ तु २ जैमिनिः ३ प्रश्नव्याख्यानाभ्याम् ४ अपि ५ च ६ एवम् ७ एके ८ यह आठ पद हैं ॥ अजातशत्रु औ बालाकिके प्रश्नसे औ उत्तरसे यह निश्चय होताहै कि उक्तवाक्यके विषै ब्रह्मज्ञानके अर्थ जीवका ग्रहण है ऐसे जैमिनि आचार्य मानता है औ ऐसे ही वाजसनेयी शाखावाले मानते हैं ॥ १८ ॥

बृहदारण्यकमें मैत्रेयी ब्राह्मणके विषै श्रवण होताहै।कि"आत्मावा अरे द्रष्टव्यःश्रोतव्यो मंतव्यो निदिध्यासितव्यः"इति।अस्यार्थः-याज्ञवल्क्य कहतेभये किअरे मैत्रेयि आत्मा श्रवणकरनेयोग्य है औ मनन करनेयोग्यहैऔनिदिध्यासनकरनेयोग्य हैऔदेखनेयोग्यहै इति।तहां संशयहै कि श्रवण मननके योग्य जीवात्माहैवा परमात्माहैअतआह॥

वाक्यान्वयात ॥ १९ ॥

इस सूत्रका–वाक्यान्वयात्१यह एकही समस्त पद है॥ पूर्वापर विचार करनेसे 'आत्मा वा अरे' इस वाक्यका परमात्माके विषै अन्वय (सम्बन्ध) प्रतीत होता है इसीसे जाना जाताहै कि श्रवण मननके योग्य परमात्मा है ॥ १९ ॥

प्रतिज्ञासिद्धेर्लिङ्गमाश्मरथ्यः ॥ २० ॥

इस सूत्रके–प्रतिज्ञासिद्धेः१ लिंगम्२ आश्मरथ्यः ३ यह तीन पद हैं ॥ एक आत्माके जाननेसे सर्व जगत् जाना जाता है यह वेदकी प्रतिज्ञा है इस प्रतिज्ञाकी सिद्धिका सूचक जो द्रष्टव्यत्वादि तिनका कथन है सो जीवात्मा परमात्माके अभेद अंशको लेके है ऐसे आश्मरथ्य आचार्य मानता है ॥ २० ॥

उत्क्रमिष्यत एवम्भावादित्यौडुलोमिः ॥ २१ ॥

इस सूत्रके–उत्क्रमिष्यतः१ एवंभावात् २ इति ३ औडुलोमिः४ यह चार पद हैं॥ संसार दशाके विषै देह इंद्रिय मन बुद्धिरूप उपाधिके सम्बन्धसे मलिन जीव है सो ज्ञान ध्यानादि साधनके अनुष्ठानसे शुद्ध होके देहादिक उपाधिको त्यागके मुक्तिदशामें परमात्माके साथ अभेदको प्राप्त होताहै ऐसे औडुलोमि आचार्य मानताहै ॥ २१ ॥

अवस्थितेरिति काशकृत्स्नः ॥ २२ ॥

इस सूत्रके–अवस्थितेः१इति२काशकृत्स्नः३यह तीन पद हैं॥ इस परमात्माकीही जीवभावकरके अवस्थिति होनेतैं जीवात्मा औ परमात्माका अत्यन्त अभेद है ऐसे काशकृत्स्न आचार्य मानताहै काशकृत्स्नके मतमें परमेश्वरही जीव है इसीसे यह मत श्रुतिके अनुसार है औ आश्मरथ्यके मतमें यद्यपि जीव औ परमात्माका अभेदहै तथापि जीव औ परमात्माका कार्य कारण भाव है औ औडुलोमिके मतमें संसार औ मुक्तिकी अपेक्षासे जीव औ परमात्माका भेद अभेदहै२२

"जन्माद्यस्ययतः" इससूत्रके विषै कहाहै कि इस जगत्का कारण ब्रह्म है तहां संशय है कि जैसे घटका उपादान कारण मृत्तिका है औ निमित्त कारण कुलाल है तैसे ब्रह्म जगत्का उपादान कारण है वा निमित्त कारण है ? अत आह ॥

प्रकृतिश्च प्रतिज्ञादृष्टान्तानुपरोधात् ॥ २३ ॥

इस सूत्रके-प्रकृतिः १ च २ प्रतिज्ञादृष्टांतानुपरोधात३यह तीन पद हैं॥"येनाश्रुतं श्रुतं भवत्यमतं मतमविज्ञातं विज्ञातम्"यह प्रतिज्ञावाक्य है। अस्यार्थः-जिस वस्तुका श्रवण मनन विज्ञान नहीं भया है तिस वस्तुका श्रवण मनन विज्ञान ब्रह्मके जाननेसे होता है इति। औ "यथा सौम्यैकेन मृत्पिण्डेन सर्वं मृन्मयं विज्ञातं स्यात्" यह दृष्टांतवाक्य है। अस्यार्थः-हे सौम्य जैसे एक मृत्पिण्डके जाननेसे सर्व मृद्विकार जानाजाता है तैसे एक ब्रह्मके जाननेसे सर्व जगत् जाना जाता है इति। इस प्रतिज्ञा औ दृष्टांतके नहीं रुकनेसे यह निश्चय है कि ब्रह्म जगत्का उपादान कारण है क्योंकि उपादानके ज्ञानसे तिसके कार्यका ज्ञान होता है औ जैसे मृत्तिकासे भिन्न कुलाल घटका कारण है तैसे ब्रह्मसे भिन्न जगत्का अन्य कारण है नहीं इसीसे ब्रह्मही जगत्का निमित्तकारण है ॥ २३ ॥

एकही आत्मा जगत्का उपादान कारण औ निमित्त कारण कैसे है ? अत आह ॥

अभिध्योपदेशाच्च ॥ २४ ॥

इस सूत्रके-अभिध्योपदेशात्१च२यह दो पद हैं॥"सोऽकामयत बहु स्यां प्रजायेय" सो परमात्मा संकल्प करता भया कि मैं बहु (प्रपंचरूप करके) उत्पन्न होऊं इत्यर्थः। इस वाक्यके विषे अभिध्य (संकल्पपूर्वक स्वतंत्र प्रवृत्ति)के उपदेशसे निश्चय होताहै कि ब्रह्म जगत्का निमित्त कारण है औ अपनेको बहुत होनेके संकल्पसे ब्रह्म उपादान कारण है ॥ २४ ॥

साक्षाच्चोभयाम्नानात् ॥ २५ ॥

इस सूत्रके--साक्षात् १ च २ उभायाम्नानात् ३ यह तीन पदहैं॥ वेदके विषे कहाहै कि इस जगत्की उत्पत्ति औ प्रलय साक्षात्ब्रह्मसे होतेहैं इसीसे यह निश्चय है किजगत्का उपादानकारण ब्रह्महै॥२५॥

आत्मकृतेः परिणामात् ॥ २६ ॥

इस सूत्रके—आत्मकृतेः १ परिणामात् २ यह दो पद हैं ॥ जैसे मृत्तिका घटाऽकार परिणामको प्राप्त होती है तैसे आत्मा अपना आपही जगदाकार परिणामको प्राप्त होता भया इसीसे जगत्का उपादान कारण है ॥ २६ ॥

योनिश्च हि गीयते ॥ २७ ॥

इस सूत्रके--योनिः१च२हि३ गीयते ४यह चार पदहैं ॥ इसजगत्का(योनिः) उपादान कारण ब्रह्म है ऐसे वेदान्तके विषे कहतेहैं । तथाहि—"यद्भूतयोनिं परिपश्यन्ति धीराः" अस्यार्थः-जो सर्व भूतोंका योनि (कारण)है तिसको धीर पुरुष ध्यानके विषै देखतेहैं इति॥२७॥

एतेन सर्वे व्याख्याता व्याख्याताः ॥ २८ ॥

इस सूत्रके—एतेन १ सर्वे२ व्याख्याताः३ व्याख्याताः४ यह चार पद हैं ॥ "ईक्षतेर्नाशब्दम्" इस सूत्रसे आदि लेके सांख्यपरिकल्पित प्रधान कारणवादका निषेध कियाहै इस प्रधान—कारणवादके निषेध करके ही न्यायादिपारिकल्पित सर्व परमाण्वादि कारणवादके निषेधका व्याख्यान होताभया इहां दोबेर 'व्याख्याताः' इस पदका कथन है सो इस समन्वयाध्यायकी समाप्तिको द्योतन करताहै ॥ २८ ॥

इति श्रीमद्योगिवर्य्यवर्यमुनानाथपूज्यपादशिष्यश्रीमन्मौक्तिकनाथयोगिविरचितायां ब्रह्मसूत्रसारार्थप्रदीपिकायां प्रथमाध्यायस्य चतुर्थः पादः ॥४॥

इति प्रथमाध्यायः समाप्तः ॥ १ ॥

द्वितीयोऽध्यायः २.

प्रथमः पादः ।

प्रथम अध्यायके विषै कहाहै कि प्रधानादिक अशब्दहैं सो जगत् के कारण नहीं हैं किंतु सर्वज्ञ सर्वेश्वर सर्वशक्तिमान परमेश्वर जगत्का कारण है इति । अब अपने मतमें स्मृति न्यायादिकोंका विरोध दूर करनेके वास्ते इस द्वितीय अध्यायका प्रारंभ करतेहैं ॥

स्मृत्यनवकाशदोषप्रसङ्ग इति चेन्नान्यस्मृत्यनवकाशदोषप्रसङ्गात् ॥ १ ॥

इस सूत्रके–स्मृत्यनवकाशदोषप्रसंगः १इति२चेत्३न४अन्यस्मृत्यनवकाशदोषप्रसंगात्५ यह पांच पद हैं ॥ शंकते–जो सर्वज्ञ ब्रह्म को जगत्का कारण कहोगे तो अचेतन प्रधानको स्वतंत्र जगत्का कारण कहनेवाली कपिलस्मृतिके अनवकाशरूप दोषका प्रसंग वेदान्त मतमें होवैगा(इतिचेन्न)ऐसा कहो तो यह ठीक नहींहै। काहेतें? "अहं कृत्स्नस्य जगतः प्रभवः प्रलयस्तथा।" हे अर्जुन मैं सर्व जगत्की उत्पत्तिका हेतु औ प्रलयका स्थान हों इस परमेश्वरको जगत्का कारण कहनेवाली गीतास्मृतिका कपिलके मतमें अनवकाशरूप दोषका प्रसंग होनेतें परमेश्वरही सर्व जगत्का कारण है ॥ १ ॥

सांख्यस्मृतिका अनवकाश प्रसंगरूप दोष वेदान्तमतमें क्यों नहीं है? अत आह ॥

इतरेषां चानुपलब्धेः ॥ २ ॥

इससूत्रके–इतरेषाम्१च२अनुपलब्धेः३यह तीनपदहैं ॥ प्रधानसे इतर(भिन्न) औ प्रधानका परिणाम जो महत्तत्त्व अहंकारादि सो वेदके

विषे वा लोकके विषे प्रसिद्ध नहीं इससे सांख्यस्मृतिका अनवकाश प्रसंगरूप दोष वेदांत मतमें नहीं ॥ २ ॥

एतेन योगः प्रत्युक्तः ॥ ३ ॥

इस सूत्रके–एतेन १ योगः २ प्रत्युक्तः ३ यह तीन पद हैं ॥ इस सांख्यस्मृतिके निषेध करके योगस्मृतिका भी निषेध होताभया परंतु जो श्रुतिसे विरुद्ध प्रधानको स्वतंत्र कारण कहती है औ लोक वेद करके अप्रसिद्ध महत्तत्त्वादिकोंका प्रधानका कार्य कहती है ऐसी योगस्मृतिका निषेध है औ आसन प्राणायामादि योगका विस्तार श्वेताश्वतरोपनिषद्के विषे है सो श्रुतिके अनुसार है औ योगशास्त्रमें कहाहै कि" अथ तत्त्वदर्शनाभ्युपायो योगः" तत्त्वदर्शनकी उपायका नाम योग है इस योगका हमारे अंगीकार है ॥ ३ ॥

न विलक्षणत्वादस्य तथात्वं च शब्दात् ॥ ४ ॥

इस सूत्रके--न १ विलक्षणत्वात् २ अस्य ३ तथात्वम् ४ च ५ शब्दात् ६ यह छह पद हैं ॥ पूर्वपक्षी पुनःतर्कसे आक्षेप करता है जो यह कहाहै कि चेतन ब्रह्म जगत्का उपादान कारणहै सो कहना ठीक नहीं, काहेतें?यह जगत् ब्रह्मसे विलक्षणहै जगत् अचेतनहै औ अशुद्ध है औ ब्रह्म चेतनहै औ शुद्धहै औ विलक्षणोंका कार्यकारणभाव बनें नहीं जैसे कटकादि भूषणका औ मृत्तिकाका कार्यकारण भाव नहीं औ"विज्ञानं चाऽविज्ञानं च" इत्यादि शब्दभी विज्ञानस्वरूप चेतन ब्रह्मसे अविज्ञानस्वरूप अचेतन जगत्को विलक्षण कहताहै ॥ ४ ॥

वेदान्ती आशंका करता है कि जैसे 'मृदब्रवीत्' इस वाक्यके विषे श्रवण होता है कि मृत्तिका बोलती भई तैसे और भी अचेतन इंद्रियादिकोंके विषे चेतनताका श्रवण होताहै अत आह ॥

अभिमानिव्यपदेशस्तु विशेषानुगतिभ्याम् ॥ ५ ॥

इस सूत्रके–अभिमानिव्यपदेशः १ तु २ विशेषानुगतिभ्याम् ३

यह तीन पद हैं ॥ तु शब्द आशंकाकी निवृत्तिके अर्थ है 'मृदब्रवीत्' इस वाक्यके विषे अचेतन मृत्तिका बोलती भई ऐसा कथन है, किंतु तिसका अभिमानी चेतन देवता बोलताभया ऐसा कथन है, काहेतें? चेतन भोक्ता है औ अचेतन भोग्यहै जो सर्वही चेतन होवें तो यह भोक्ता है औ यह भोग्य है ऐसा विशेष कथन होवे नहीं औ अभिमानी चेतनदेवता सर्व अचेतनके विषै अनुगतहै इस रीतिसे चेतनब्रह्म अचेतन जगत्का कारण नहीं यह सांख्यवादीका आक्षेप है इसका उत्तर "दृश्यते तु" इस अग्रिम सूत्र करके सूत्रकार कहते हैं ॥ ५ ॥

दृश्यते तु ॥ ६ ॥

इस सूत्रके—दृश्यते १ 'तु' २ यह दो पद हैं ॥ तुशब्द पूर्वपक्षकी निवृत्तिके अर्थ है जो यह कहा कि विलक्षण होनेतें चेतन ब्रह्म अचेतन जगत्का कारण नहीं हो सकता है सो कहना ठीक नहीं, काहेतें? इस लोकके विषे चेतन पुरुषोंसे अचेतन केश नखादिकोंकी उत्पत्ति दीखती है औ अचेतन गोमयादिकोंसे चेतन वृश्चिकादिकोंकी उत्पत्ति दीखती है ॥ ६ ॥

असदिति चेन्न प्रतिषेधमात्रत्वात् ॥ ७ ॥

इस सूत्रके—असत् १ इति २ चेत् ३ न ४ प्रतिषेधमात्रत्वात् ५ यह पांच पद हैं ॥ जो शब्दादि हीन शुद्ध चेतन ब्रह्मको शब्दादिमान् अशुद्ध अचेतन जगत्का कारण कहोगे तो तुम्हारे सत्कार्यवादीके मतमें उत्पत्तिसे पैहिली इस जगत्रूप कार्यके असत्पनेका प्रसंग होवैगा (इति चेन्न) ऐसे कहो तो ठीक नहीं, काहेतें? यह तुम्हारा कहना प्रतिषेध मात्र है प्रतिषेध करनेके योग्य वस्तु कोई नहीं है जैसे अब यह जगत् कारणरूप करके सत् है तैसे उत्पत्तिके पहिले भी कारणरूप करके सत् ही था असत् नहीं ॥ ७ ॥

अपीतौ तद्वत्प्रसङ्गादसमञ्जसम् ॥ ८ ॥

इस सूत्रके—अपीतौ १ तद्वत् २ प्रसंगात् ३ असमंजसम् ४ यह चार पद हैं ॥ यह शंका सूत्र है जो स्थूलत्व सावयवत्व अचेतनत्व परिच्छिन्नत्व अशुद्धत्वादि धर्मवाला जगत् ब्रह्मका कार्य कहोगे तो जैसे जलके विष लीयमान लवण जलको दूषित करता है तैसे प्रलयकालमें कारण ब्रह्मके विषै लीयमान जगत् ब्रह्मको दूषित करेगा ऐसे ब्रह्मको अशुद्धताका प्रसंग होनेतैं जो उपनिषद् ब्रह्मको जगत्का कारण कहता है सो समीचीन नहीं ॥ ८ ॥

न तु दृष्टान्तभावात् ॥ ९ ॥

इस सूत्रके—न १ तु २ दृष्टान्तभावात् ३ यह तीन पद हैं ॥ यह सिद्धान्तसूत्र है जो कहा कि यह जगत् प्रलयकालमें अपने कारणके विषै लीन होके कारणको दूषित करेगा सो कहना ठीक नहीं, काहेतैं? कार्य है सो कारणको दूषित नहीं करे इसमें दृष्टान्त होनेतैं जैसे घट शरावादि बडे छोटे मृत्तिकाके कार्य हैं औ कटक कुंडलादि सुवर्णके कार्य हैं परंतु जब यह नष्ट होके अपने कारण मृत्तिकामें तथा सुवर्णमें लीन होते हैं तब मृत्तिकाको तथा सुवर्णको दूषित नहीं करते तैसेही यह जगत् कारणमें लीन होके अपने कारणको दूषित नहीं करता औ तुम्हारे पक्षमें दृष्टान्त है नहीं जो जल लवणका दृष्टान्त कहा सो विषम है काहेतैं मधुर जल है सो लवणका कारण नहीं ॥ ९ ॥

स्वपक्षदोषाच्च ॥ १० ॥

इस सूत्रके—स्वपक्षदोषात् १ च २ यह दो पद हैं ॥ जितने दोष वेदान्त पक्षमें कहे हैं उतनेही दोष सांख्यपक्षमें भी समान हैं जैसे यह कहा कि विलक्षण होनेतैं ब्रह्म जगत्का कारण नहीं तैसेही विलक्षण होनेतैं प्रधानभी जगत्का कारण नहीं औ जो उत्प-

त्तिके पहिले असत्कार्यवादका प्रसंग कहा सो प्रसंग सांख्यपक्षमें भी समान है औ जो यह कहा कि प्रलयकालमें कार्य करके कारण दूषित होवैगा सो सांख्यपक्षमें भी होवैगा इत्यादि सर्वदोष समान हैं १०॥

तर्काप्रतिष्ठानादप्यन्यथाऽनुमेयामिति चेदेवमप्यविमोक्षप्रसङ्गः॥ ११ ॥

इस सूत्रके—तर्काप्रतिष्ठानात् १ अपि २ अन्यथा ३ अनुमेयम् ४ इति ५ चेत् ६ एवम् ७ अपि ८ अविमोक्षप्रसंगः ९ यह नौ पद हैं॥ब्रह्मनिष्ठ कारणताको वेद करके सिद्ध होनेतें केवल तर्क करके तिसका बाध नहीं हो सकता काहेतें वेदप्रमाणसे रहित औ कपिल कणादादि पुरुषोंकी भिन्न भिन्न बुद्धिमात्रसे अन्यथा अन्यथा कल्पित तर्ककी प्रतिष्ठा नहीं औ जो तर्कवादी ऐसे अन्यथा अनुमान करे कि सर्व तर्कको अप्रतिष्ठित कहोगे तो सर्वलोक व्यवहार तर्कसे सिद्ध होताहै तिसका उच्छेद होवैगा यह तर्कवादीका कहना ठीक नहीं काहेतें एक वस्तुके सम्यक् ज्ञानसे मोक्ष होताहै ऐसे सर्वमोक्षवादी मानतेहैं औ परस्पर विरोधी पुरुषोंकी कल्पनामात्रसे रचित तर्कके ज्ञानसे मोक्ष होवै नहीं ऐसे तर्कवादीके पक्षमें अमोक्षका प्रसंग है यह बड़ाभारी कष्ट है ॥ ११ ॥

एतेन शिष्टापरिग्रहा अपि व्याख्याताः ॥ १२ ॥

इस सूत्रके—एतेन १ शिष्टापरिग्रहाः २ अपि ३ व्याख्याताः ४ यह चार पद हैं ॥ मनु व्यास वसिष्ठादि शिष्टपुरुष भये हैं सो किसीभी अंश करके न्यायादि परिकल्पित अण्वादिकारणवादका ग्रहण नहीं करते भये तिस अण्वादि कारणवादको प्रधान कारणवादके तुल्य होनेतें इस प्रधानकारणवादके निराकण करके अण्वादिकारणवादका भी निराकरण होताभया ॥ १२ ॥

भोक्त्रापत्तेरविभागश्चेत्स्याल्लोकवत् ॥ १३ ॥

इस सूत्रके—भोक्त्रापत्तेः १ अविभागः २ चेत् ३ स्यात् ४ लोकवत् ५

यह पांच पद हैं ॥ अद्वैतवादके विषे भोक्ता है सो भोग्यभावको प्राप्त होवेगा वा भोग्य है सो भोक्तृभावको प्राप्त होवैगा तो इतरेतर भावकी आपत्ति होनेतें लोकके विषे चेतन जीवात्मा भोक्ता है औ शब्दादि विषय भोग्य हैं इस भोक्तृभोग्यका विभाग न रहेगा यह कहना समीचीन नहीं,काहेतें!जैसे लोकके विषे समुद्रसे जल अभिन्न भी है परंतु फेन तरङ्गबुद्बुदादि रूपकरके भिन्न है तैसेही अभिन्न भोक्तृभोग्यभी उपाधिकरके भिन्न हैं ॥ १३ ॥

तदनन्यत्वमारम्भणशब्दादिभ्यः ॥ १४ ॥

इस सूत्रके–तदनन्यत्वम् १आरंभणशब्दादिभ्यः२यह दो पद हैं॥ पूर्व सूत्रके विषे व्यावहारिक भोक्तृ भोग्य मानके तिनका विभाग कहाहै औ परमार्थ दृष्टिसे न कोई भोक्ता है न भोग्य है काहेतें"यथा सौम्यैकेन मृत्पिण्डेन सर्वं मृन्मयं विज्ञातं स्याद्वाचारम्भणं विकारो नामधेयं मृत्तिकेत्येव सत्यम्" इस दृष्टान्तभूत श्रुतिरूप आरम्भण शब्दसे तथा "ब्रह्मैवदं सर्वम्" यह सर्व जगत् ब्रह्मही है इस श्रुतिवाक्यसे कार्यमात्रका अभाव निश्चित है यह इस सूत्रका अर्थ है॥औ श्रुतिका अर्थ यह है कि हे सौम्य श्वेतकेतो एक मृत्पिण्डके यथार्थ ज्ञानसे सर्व घटशरावादि मृत्तिकाके विकार जाने जाते हैं,काहेतें!वाणी करके जिसका आरम्भ भया ऐसा घटादि विकार नाम मात्रहै अपने कारण मृत्तिकासे जुदा नहीं औ कारणरूप मृत्तिकाही सत्य है इति ॥ १४ ॥

भावे चोपलब्धेः ॥ १५ ॥

इस सूत्रके–भावे १ च २ उपलब्धेः ३ यह तीन पद हैं ॥ जब मृत्तिकारूप कारण विद्यमान है तबही घटादि कार्यका उपलब्धि (ज्ञान)होताहै ऐसेही ब्रह्मरूप कारणके होनेतें जगत्‌रूप कार्यका ज्ञान होताहै इसीसे कार्य कारणका भेद नहीं है ॥ १५ ॥

सत्त्वाच्चावरस्य ॥ १६ ॥

इस सूत्रके–सत्त्वात् १ च २ अवरस्य३ यह तीन पद हैं ॥ "सदेवसोम्येदमग्र आसीत्" इस श्रुतिकरके इस कालमें विद्यमान जगत्रूप कार्यके सत्त्वका सृष्टिके पूर्व कारणरूप करके श्रवण होनेतें कार्य कारणका भेद नहीं। औ श्रुतिका अर्थ यह है कि हे सौम्य श्वेतकेतो यह जगत सृष्टिसे पहिले सत्कारणरूपही होताभया इति ॥१६॥

असद्व्यपदेशान्नेति चेन्न धर्मान्तरेण वाक्यशेषात्॥१७॥

इस सूत्रके–असद्व्यपदेशात १ न २ इति ३ चेत् ४ न ५ धर्मान्तरेण ६ वाक्यशेषात् ७ यह सात पद हैं ॥ "असदेवेदमग्रआसीत"। अस्यार्थः–यह जगत सृष्टिके पूर्व असतही होताभया इति। इस श्रुति करके असत्का कथन होनेतें सृष्टिके पहिले यह जगत सत् नहींथा(इति चेन्न)ऐसे न कहो,काहेतें?"तत्सदासीत्"सो जगत सत् होताभया इस वाक्यशेषसे निश्चय है कि सृष्टिके पूर्व अस्पष्ट नाम रूप धर्मान्तरको लेके श्रुति असत्का कथन करती है ॥ १७ ॥

युक्तेः शब्दान्तराच्च ॥ १८ ॥

इस सूत्रके–युक्तेः १ शब्दान्तरात् २ च ३ यह तीन पद हैं ॥ जिस पुरुषको दधि बनानेकी वा घट बनानेकी इच्छा होवै सो तिसके कारण दुग्धको वा मृत्तिकाको ग्रहण करताहै औ जो असत्की उत्पत्ति होवै तौ कदाचित दुग्धसे घट बना चाहिये वा मृत्तिकासे दधि हुआ चाहिये औ कदाचित् शशशृङ्गकी वा वन्ध्याके पुत्रकी भी उत्पत्ति होनी चाहिये इस युक्तिसे औ "एकमेवाद्वितीयम्" एकही अद्वितीय ब्रह्म है इस शब्दान्तरसे यही जाना जाताहै कि उत्पत्तिके पूर्व यह जगत सत् ही था असत् नहीं ॥ १८ ॥

पटवच्च ॥ १९ ॥

इस सूत्रके--पटवत१च२यह दो पदहैं॥जबपटहै सो किसी वस्तुमें

दबा रहताहै तब देखनेवाले पुरुषको यह पट है ऐसा स्पष्ट ज्ञान नहीं होता किंतु यह पट है वा अन्य द्रव्य है ऐसा ही ज्ञान होताहै औ जब पटको पसारे तब यह पट है ऐसा स्पष्ट ज्ञान होता है ऐसेही तन्तुरूप कारणके विषे यद्यपि पट है तथापि पटका ज्ञान नहीं होता औ तुरी वेम कुविन्दादि कारक व्यापारके अनंतर यह पट है ऐसा स्पष्ट ज्ञान होताहै इस रीतिसे कार्य कारणका भेद है वास्तव भेद नहीं ॥१९॥

यथा च प्राणादि ॥ २० ॥

इस सूत्रके–यथा १ च२प्राणादि ३ यह तीन पद हैं॥ जैसे लोकके विषे प्राणाऽपानादि प्राणके भेद प्राणायाम करके जब निरुद्ध होतेहैं तब कारणमात्र प्राणकरके जीवन मात्रही शेष रहताहैआकुञ्चन प्रसारणादि कार्य नहीं रहता औ जब निरुद्ध नहीं है तब जीवनसे अधिक आकुञ्चन प्रसारणादि कार्यभी होताहै तहां कारणरूप प्राणसे प्राणापानादि भेद भिन्न नहीं तैसेही सर्व जगत् अपने कारण ब्रह्मसे भिन्न नहीं इसप्रकारसे"येनाश्रुतं श्रुतं भवत्यमतंमतमविज्ञातंविज्ञातम्"यह श्रुतिकी प्रतिज्ञा सिद्ध भई इस श्रुतिका अर्थ"प्रकृतिश्चप्रतिज्ञादृष्टान्तानुपरोधात्"इस सूत्रकी व्याख्यामें कर आयेहैं ॥ २० ॥

इतरव्यपदेशाद्धिताकरणादिदोषप्रसक्तिः ॥ २१ ॥

इस सूत्रके–इतरव्यपदेशात् १ हिताकरणादिदोषप्रसक्तिः२ यह दो पद हैं॥यह पूर्वपक्षका सूत्र है जो चेतनको जगत्का करणमानोगे तो चेतनके अहित जो जन्ममरण जरारोग नरकादि तिनके करणेरूप दोपका प्रसंग होवेगा,काहेतें? "तत्त्वमसि श्वेतकेतो" हे श्वेतकेतो 'तत्' सो ब्रह्म 'त्वमसि' तूं है इस महावाक्य करके इतर (जीवात्मा) ब्रह्म कहाहै औ ब्रह्म स्वतंत्र है जो स्वतंत्र ब्रह्म सृष्टिको करे तो अपने अहित नरकादिक नहीं बनावै ॥ २१ ॥

अधिकं तु भेदनिर्देशात् ॥ २२ ॥

इस सूत्रके-अधिकम्१ तु२ भेदनिर्देशात्३ यह तीन पद हैं ॥ यह सिद्धांतसूत्रहै तु शब्द पूर्वपक्षकी निवृत्तिके अर्थ है "सोऽन्वेष्टव्यः" सो परमात्मा देखने योग्यहै इत्यादि श्रुति करके अल्पज्ञ अल्पशक्तिमान् जीवात्मासे सर्वज्ञ सर्वशक्तिमान् नित्य शुद्ध बुद्ध मुक्त परमात्माके भेदका कथन होनेतें जीवात्मासे परमात्मा अधिक(भिन्न)है तिसके विषे अहित करणादि दोष नहीं हो सकते औ जो पूर्वपक्षी ऐसे कहे कि तत्त्वमसि महावाक्य करके भेदसे विरुद्ध जीव ब्रह्मका अभेद क्यों कहा सो दोष हमारे मतमें नहीं काहेतें? महाकाश घटाकाशकी न्याई भेदाभेदका कथन है परमार्थसे नहीं ॥ २२ ॥

अश्मादिवच्च तदनुपपत्तिः ॥ २३ ॥

इस सूत्रके-अश्मादिवत्१ च२ तदनुपपत्तिः३ यह तीन पद हैं ॥ जैसे लोकके विषे सर्व अश्म (पत्थर) एक पृथिवीत्व धर्मवाले हैं परंतु तिनके विषे वज्र वैडूर्यादिमाणि बहुत मौल्यके योग्य हैं औ सूर्यकान्तादिमणि न्यूनमौल्यके योग्य हैं कोई पत्थर काक कुत्तेके संमुख फेंकने योग्य है तैसेही एक ब्रह्म जीव प्राज्ञ भेद करके भिन्न है औ विचित्र कार्यवाला है इसीसे पूर्वपक्षी कल्पित दोषोंकी हमारे पक्षमें अनुपपत्ति है अर्थात् भेदको लेके कोई दोष नहीं ॥२३॥

उपसंहारदर्शनान्नेति चेन्न क्षीरवद्धि ॥ २४ ॥

इस सूत्रके-उपसंहारदर्शनात् १ न २ इति ३ चेत्४ न५क्षीरवत ६ हि ७ यह सात पद हैं ॥ शंकते-एक अद्वितीय चेतन ब्रह्म जगत का कारण नहीं हो सकता काहेतें लोकके विषे उपसंहारका दर्शनहै उपसंहार नाम मेलनका है जैसे लोकके विषे घटादि कार्यके कर्त्ता कुलालादिक हैं सो मृत्तिका दण्ड चक्र सूत्रादि अनेक साधन-वाले हैं तैसे अद्वितीय ब्रह्मके सृष्टि बनानेका कोई साधन नहीं ।

(इति चेन्न) ऐसे न कहो काहेतें—जैसे लोकके विषै क्षीर दुग्ध किसी बाह्य साधनकी अपेक्षा नहीं करता औ अपना आपही दधि-रूप परिणामको प्राप्त होता है तैसे ब्रह्मभी किसी साधनकी अपेक्षा नहीं करके जगदाकार परिणामको प्राप्त होताहै ॥ २४ ॥

यद्यपि अचेतन दुग्धादि अपने दध्यादि कार्यके वास्ते किसी साधनकी अपेक्षा नहीं करते तथापि चेतन कुलालादि अपने घटादि कार्य करनेके वास्ते दण्ड चक्रादि साधन सामग्रीको ग्रहण करते हैं तैसे ब्रह्म चेतन भी बाह्यसाधनकी अपेक्षा क्यों नहीं करता अतआह॥

देवादिवदपि लोके ॥ २५ ॥

इस सूत्रके—देवादिवत् १ अपि २ लोके ३ यह तीन पद हैं॥ जैसे लोकके विषै देव ऋषि योगी इत्यादि चेतन पुरुष ऐश्वर्यसंयुक्त हैं सो किसी बाह्य साधनको नहीं लेके अपने संकल्पमात्रसे अपूर्व शरीर प्रासाद रथादि अनेक कार्यको बनातेहैंतैसे महाऐश्वर्यवान् ब्रह्म चेतन सृष्टिके बनाने वास्ते किसी साधनकी अपेक्षा नहीं करता ॥ २५॥

कृत्स्नप्रसक्तिर्निरवयवत्वशब्दकोपो वा ॥ २६ ॥

इस सूत्रके—कृत्स्नप्रसक्तिः १ निरवयवत्वशब्दकोपः २ वा ३यह तीन पद हैं॥यह पूर्व पक्ष सूत्र है ब्रह्म निरवयव है वा सावयव है जो निरवयव है तो सर्वही ब्रह्मका रूप परिणामको प्राप्त होवेगा औ जो सावयव है तो यद्यपि एकदेशही परिणामको प्राप्त होवेगा तथापि "निष्कलं निष्क्रियं शांतम्" इत्यादि श्रुति ब्रह्मको निरवयव कहती है तिसका कोप होवेगा॥ श्रुत्यर्थः—ब्रह्म निष्कल है अर्थात् निरवयवहै औ क्रियारहित है औ शांत है इति ॥ २६ ॥

श्रुतेस्तु शब्दमूलत्वात ॥ २७ ॥

इस सूत्रके—श्रुतेः१तु २ शब्दमूलत्वात् ३ यह तीन पद हैं ॥'तु' शब्द पूर्वपक्षकी निवृत्तिके अर्थ है।"एतावानस्य महिमातो ज्यायांश्च

पूरुषः" इस श्रुतिसे यह निश्चय है कि सर्व ब्रह्म कार्यरूप परिणामको प्राप्त नहीं होता औ निरवयव ब्रह्मका अंगीकार होनेतें "निष्कलम्" इत्यादि श्रुतिका कोप भी नहीं होता इस रीतिसे ब्रह्ममें शब्दमूल प्रमाण है इंद्रिय प्रमाण नहीं औ श्रुतिका अर्थ यह है कि सर्व प्रपंच इस ब्रह्मकी विभूति है औ पुरुष पूर्ण ब्रह्म तिस प्रपंचसे अधिक है इति २७

आत्मनि चैवं विचित्राश्च हि ॥ २८ ॥

इस सूत्रके–आत्मनि १ च२ एवम् ३ विचित्राः४च ५ हि ६यह छह पद हैं ॥ जैसे स्वप्नावस्थामें एक आत्माके विषे अपने स्वरूप-नाशके विनाहीं अनेक प्रकारकी विचित्र सृष्टि उत्पन्न होतीहै तैसेही एक ब्रह्मके विषे अपने स्वरूपनाशके विनाहीं अनेक प्रकारकी विचित्र सृष्टि उत्पन्न होती है इसीका नाम विवर्त्तवाद है औ इस अर्थमें यह श्रुति प्रमाण है। "न तत्र रथा न रथयोगा न पन्थानो भवन्त्यथ रथान् रथयोगान् पथः सृजते" अस्यार्थः–तिस स्वप्नावस्थाके विषे न रथ हैं औ न रथके योग्य घोडा हैं औ न चलनेके योग्य मार्ग हैं परंतु रथ घोडा मार्ग इन सर्वको आपही रचताहै इति ॥

स्वपक्षदोषाच्च ॥ २९ ॥

इस सूत्रके–स्वपक्षदोषात् १ च २यह दो पद हैं ॥ जो सर्व ब्रह्मको परिणामका प्रसंग औ निरवयवके अंगीकारका कोप इत्यादि वेदान्त पक्षमें दोष कहे सो प्रधान कारणवादी सांख्यपक्षमें औ अणुकारण-वादी न्याय वैशेषिक पक्षमें भी समान हैं ॥ २९ ॥

सर्वोपेता च तद्दर्शनात् ॥ ३० ॥

इस सूत्रके–सर्वोपेता१ च २ तद्दर्शनात् ३ यह तीन पदहैं॥"सर्व-कर्मा सर्वकामः सर्वगन्धः सर्वरसः" इत्यादि श्रुतिके विषे श्रवण होता है कि सर्व विचित्र शक्तिवाला परदेवताही सर्व विचित्र जगत्का कर्त्ता है॥औ श्रुतिका अर्थ यह है कि सो परमेश्वर सर्व कर्मवाला है

ओ सर्व कामवाला है ओ सर्व गंधवाला है ओ सर्व रसवाला है अर्थात् सर्व विचित्र शक्तिवाला है इति ॥ ३० ॥

विकरणत्वान्नेति चेत्तदुक्तम् ॥ ३१ ॥

इस सूत्रके-विकरणत्वात् १ न २ इति ३ चेत् ४ तत् ५ उक्तम् ६ यह छह पद हैं ॥ "अचक्षुष्कमश्रोत्रमवागमनाः" । अस्या अर्थः- परब्रह्म चक्षु श्रोत्र वाक् मन इत्यादि सर्वइंद्रियोंसे रहित है इति इस श्रुतिकरके परब्रह्म इंद्रियरहित प्रतीत होता है ओ इंद्रियके विना कर्त्ता नहीं होसकता (चेत्) यदि पूर्वपक्षी ऐसे कहै सो कहना ठीक नहीं, काहेतें? "देवादिवदपि लोके" इस सूत्रकरके उक्त शंकाका उत्तर कर आये हैं ओ "अपाणिपादो जवनो गृहीता पश्यत्यचक्षुः स शृणोत्यकर्णः" यह श्रुति इंद्रियरहित ब्रह्मके सर्व सामर्थ्यको कहती है। अस्या अर्थः- परमात्माके हस्तपाद नहीं हैं ओ वेगवाला है ओ सर्वको ग्रहण करता है ओ चक्षु श्रोत्र नहीं हैं ओ सर्वको देखता है ओ सुनता है इति ॥ ३१ ॥

न प्रयोजनवत्त्वात् ॥ ३२ ॥

इस सूत्रके-न १ प्रयोजनवत्त्वात् २ यह दो पद हैं ॥ यह शंका सूत्र है, लोकमें यह वार्त्ता प्रसिद्ध है कि अपने प्रयोजनके विना मंद पुरुषभी प्रवृत्त नहीं होता है ओ परमात्मा नित्य तृप्त है तिसके जगत् रचनेमें कोई प्रयोजन नहीं ॥ ३२ ॥

लोकवत्तु लीलाकैवल्यम् ॥ ३३ ॥

इस सूत्रके-लोकवत् १ तु २ लीला ३ कैवल्यम् ४ यह चार पद हैं ॥ तु शब्द शंकाकी निवृत्तिके अर्थ है जैसे लोकके विषै सर्वकामनाकरके रहित कोई राजा अपने प्रयोजनके विनाही कदाचित् केवल लीला करनेको प्रवृत्त होता है तैसे ईश्वर भी अपने प्रयोजनके विनाही केवल स्वभावमात्रसे सृष्टिरूप लीला करनेको प्रवृत्त होता है ॥ ३३ ॥

वैषम्यनैर्घृण्ये न सापेक्षत्वात्तथाहि दर्शयति ॥ ३४ ॥

इस सूत्रके–वैषम्यनैर्घृण्ये १ न २ सापेक्षत्वात् ३ तथा ४ हि ५ दर्शयति ६ यह छह पद हैं ॥ इस जगत्के विषे देवादि शरीर अति सुखको भोगनेवाले बनाये औ पश्वादि शरीर अति दुःखको भोगनेवाले बनाये औ मनुष्यादि शरीर मध्यम भोग भोगनेवाले बनाये औ सर्वके नाशका हेतु प्रलय इसीसे जाना जाता है कि ईश्वर विषमकारी है औ अतिक्रूर है यह पूर्वपक्षीका आक्षेप है सो समीचीन नहीं काहेतें ईश्वर निरपेक्ष होके सृष्टि स्थिति प्रलयको नहीं बनाता किंतु सर्वजीवोंके धर्माधर्मकी सापेक्षतासे बनाता है सो धर्माऽधर्महो सुखदुःखादिकोंके हेतु हैं औ ईश्वर सर्वका साधारण कारण है सो न विषमकारी है औ न क्रूर है औ इस अर्थको श्रुतिभी कहती है "पुण्यो वै पुण्येन कर्मणा भवति पापः पापेन" अस्या अर्थः– पुण्यकर्म करके पुण्यात्मा होता है पापकर्म करके पापात्मा होता है इति ॥ ३४ ॥

न कर्माविभागादिति चेन्नाऽनादित्वात् ॥ ३५ ॥

इस सूत्रके--न १ कर्म २ अविभागात् ३ इति ४ चेत् ५ न ६ अनादित्वात् ७ यह सात पद हैं ॥ जो यह कहा कि विषम संसारका कर्ता ईश्वर नहीं है किंतु जीवोंके कर्म हैं सो कहना ठीक नहीं काहेतें "सदेव सोम्येदमग्र आसीत्" यह श्रुति सृष्टिसे पहिले इस संसारको सत् कहती है जब यह संसार सत्‌रूप था तब कोईभी कर्म नहीं था (इति चेन्न) ऐसा न कहो,काहेतें? यह संसार बीजांकुर न्यायसे अनादि है जैसे बीजसे अंकुर होताहै औ अंकुरसे बीज होताहै तैसेही कर्मसे संसार होताहै औ संसारसे कर्म होताहै॥३५॥

शंका–आप इस संसारको अनादि कैसे जानतेहो? अत आह ॥

उपपद्यते चाप्युपलभ्यते च ॥ ३६ ॥

इस सूत्रके--उपपद्यते १ च२ अपि३ उपलभ्यते ४ च५ यह पांच

पद हैं ॥ जो संसार अनादि न होवे तो कर्मके विनाही संसारकी उ-त्पत्ति होनेतें मुक्त पुरुषकाभी जन्म होना चाहिये औ होताहै नहीं, काहेतें? कर्मसे शरीर होवे है औ शरीरसे कर्म होवैहै औ मुक्तके कर्म है नहीं इसीसे मुक्तका जन्म नहीं होता है औ संसारके अनादित्वमें श्रुति प्रमाणहै ("सूर्याचन्द्रमसौ धाता यथापूर्वमकल्पयत्") अस्या-अर्थः—धाता (परमेश्वर) जैसे पहिले कल्पमें सूर्यचन्द्रमा थे तैसेही इस कल्पमें बनाता भया इति ॥ ३६ ॥

सर्वधर्मोपपत्तेश्च ॥ ३७ ॥

इस सूत्रके--सर्वधर्मोपपत्तेः १ च २ यह दो पद हैं ॥ पूर्वोक्त प्र-कार करके सर्वज्ञत्व सर्वशक्तित्वादि सर्व धर्म कारण ब्रह्मके विषेही प्राप्त होतेहैं इसीसे औपनिषदर्शन निर्दोष है ॥ ३७ ॥

इति श्रीमन्मौक्तिकनाथयोगिविरचितायांब्रह्मसूत्रसारार्थप्रदीपिकायां द्वितीयाध्यायस्य प्रथमः पादः ॥ १ ॥

द्वितीयाध्याये द्वितीयः पादः।

यद्यपि मुमुक्षु पुरुषोंके हितके वास्ते वेदान्तवाक्योंका तात्पर्य दिखाने को वेदान्तशास्त्र प्रवृत्तभयाहै तथापि वेदान्तके विरोधी जो सांख्यादि दर्शन हैं तिनका खण्डन करनेके वास्ते इस द्वितीयपादका आरम्भ है।

रचनानुपपत्तेश्च नानुमानम् ॥ १ ॥

इस सूत्रके–रचनानुपपत्तेः १ च २ न ३ अनुमानम् ४ यह चार पद हैं॥ प्रधान कारणवादीके पक्षमें संसाररचनाकी अनुपपत्ति रूप दूषण होनेतें यह अनुमान नहीं होसकता कि केवल अचेतन प्रधान संसारका कारण है काहेतें यह केवल अचेन अपने कार्यको कर्त्ता है ऐसा दृष्टान्त नहीं जैसे लोकके विषै कुलालादि चेतनके विना केवल

अचेतन मृदादि अपने घटादि कार्यको नहीं करसकते तैसे चेतन परमेश्वरके विना अचेतन प्रधान भी संसारको नहीं रचसकता ॥१॥

प्रवृत्तेश्च ॥ २ ॥

इस सूत्रके–प्रवृत्तेः १ च २ यह दो पद हैं ॥ च शब्द अनुपपात्ति पदकी अनुवृत्तिके अर्थहै सांख्यवादी सत्त्व रज तम इन तीनगुणोंकी साम्यावस्थाका नाम प्रधान औ प्रकृति कहते हैं औ कहते हैं कि सृष्टिके आदिकालमें संसाररचनाके वास्ते साम्यावस्थाका परित्याग रूप प्रधानकी प्रवृत्ति होतीहै सो कहना ठीक नहीं,काहेतें? जैसे लोकके विषे अश्व कुलालादि चेतनके विना अपने आपही रथ मृदादिकोंकी प्रवृत्ति नहीं होती तैसे चेतन परमात्माके विना अचेतन प्रधानकीभी अपनी आपही प्रवृत्ति नहीं होसकती ॥ २ ॥

पयोऽम्बुवच्चेत्तत्रापि ॥ ३ ॥

इस सूत्रके–पयोऽम्बुवत् १ चेत २ तत्र३अपि ४ यह चार पदहैं॥ जैसे लोकके विषै बच्छेकी वृद्धिके अर्थ अचेतन दुग्ध अपना आपही प्रवृत्त होताहै औ लोकके उपकारके वास्ते अचेतन जल स्वभावसे प्रवृत्त होताहै तैसे पुरुषार्थकी सिद्धिके अर्थ अचेतन प्रधानभी स्वभावसे प्रवृत्त होताहै (चेत्) यदि ऐसे सांख्यवादी कहै सो कहना ठीक नहीं,काहेतें?चेतन(धेनु)के स्नेहकरके दुग्धकीप्रवृत्ति होतीहै स्वभावसे नहीं औ जलभी चेतनकी प्रेरणासे चलता है इस अर्थमें श्रुति प्रमाण है"एतस्य वा अक्षरस्य प्रशासने गार्गि प्राच्योऽन्या नद्यः स्यन्दन्ते" अस्या अर्थः-याज्ञवल्क्य कहतेभये कि हेगार्गि इस अक्षरब्रह्मकी आज्ञाके विषै पूर्वदिशाकी नदी औ अन्य सर्व नदी चलती हैं इति॥३॥

व्यतिरेकानवस्थितेश्चानपेक्षत्वात् ॥ ४ ॥

इस सूत्रके–व्यतिरेकानवस्थितेः १ च २ अनपेक्षत्वात्३यह तीन पद हैं ॥ सांख्यमतमें तीन गुणकी साम्यावस्थाको प्रधान कहते हैं

औ साम्यावस्थाके विना प्रधानका प्रवर्त्तक वा निवर्त्तक कोई अ-पेक्षित बाह्य वस्तु स्थित है नहीं औ पुरुष उदासीन है न प्रवर्त्तक है न निवर्त्तक है इसीसे अनपेक्ष प्रधान जगत्का कारण नहीं हो-सकता औ ईश्वर सर्वज्ञ सर्वशक्तिमान् है तिसकी प्रवृत्ति निवृत्तिमें कोई विरोध नहीं ॥ ४ ॥

अन्यत्राभावाच्च न तृणादिवत् ॥ ५ ॥

इस सूत्रके–अन्यत्र १ अभावात् २ च ३ न ४ तृणादिवत् ५ यह पांच पद हैं॥ जैसे तृण पल्लव उदक इत्यादिक हैं सो किसी निमि-त्तकी अपेक्षा नहीं करके अपने स्वभावसेही दुग्धाकार परिणामकी प्राप्त होते हैं तैसे प्रधानभी अन्य किसी निमित्तकी अपेक्षा नहीं करके स्वभावसे महदाद्याकार परिणामको प्राप्त होता है: यह सां-ख्यवादीका कहना ठीक नहीं, काहेतें धेन्वादि निमित्तकी अपेक्षा करकेही तृणादिक दुग्धाकार परिणामको प्राप्त होतेहैं स्वभावसे न हीं जो स्वभावसेही दुग्धाकार परिणामको प्राप्त होवे तो बैल करके भुक्त तृणादिकभी दुग्धाकार परिणामको प्राप्त हुआ चाहिये इस रीति से प्रधानभी स्वभावसे परिणामको प्राप्त नहीं होसकता ॥ ५ ॥

अभ्युपगमेऽप्यर्थाभावात् ॥ ६ ॥

इस सूत्रके--अभ्युपगमे १ अपि २ अर्थाभावात् ३ यह तीन पद हैं ॥ पूर्वोक्त प्रकारसे यह सिद्धभया कि प्रधानकी प्रवृत्ति स्वभावसे नहीं होसकती है अब कहतेहैं कि जो स्वभावसे प्रवृत्ति मानोगे तो भोग मोक्षादिपुरुषार्थका अभाव होवेगा काहेतें जो प्रधान अपनी प्रवृत्तिके वास्ते अन्यकिसीकी अपेक्षा नहीं करता है तो भोग मोक्षादि पुरु-षार्थकी भी अपेक्षा नहीं करेगा तब पुरुषार्थकी सिद्धिके अर्थ प्र-धानकी प्रवृत्ति होती है इस तुम्हारी प्रतिज्ञाकी हानि होवेगी ॥ ६ ॥

पुरुषाश्मवदितिचेत्तथापि ॥ ७ ॥

इस सूत्रके–पुरुषाश्मवत् १ इति २ चेत् ३ तथा ४ अपि ५ यह पांच पद हैं॥जैसे कोई पंगु पुरुष है सो किसी अन्य पुरुषके उपरि चढके तिसको प्रवृत्त करता है औ अयस्कांतमणि लोहको प्रवृत्त करता है तैसे पुरुष है सो प्रधानको प्रवृत्त करेगा यहभी सांख्यवादीका कहना ठीक नहीं, काहेतें? प्रधान स्वभावसे प्रवृत्त होता है औ पुरुष उदासीन है इस सांख्यसिद्धान्तका त्याग होवेगा औ प्रधान औ पुरुष नित्य हैं औ व्यापक हैं तिनका नित्य सम्बन्ध होनेतें नित्यही प्रवृत्ति होवैगी ॥ ७ ॥

अंगित्वानुपपत्तेश्च ॥ ८ ॥

इस सूत्रके–अङ्गित्वानुपपत्तेः १ च २ यह दो पद हैं ॥ सत्त्व रज तम इन तीन गुणोंकी सम अवस्थाका नाम प्रधान है औ जब प्रधानकी प्रवृत्ति होवैगी तब तीनों गुण विषम होके अङ्गाङ्गीभावको प्राप्त होवैंगे औ जब अङ्गाङ्गीभावको प्राप्त होवैंगे तब सम अवस्थारूप प्रधान भी नष्ट होवैगा यह मूल प्रधानका नष्टहोनाही प्रधानवादीके बडा भारी कष्ट है इसीसे अङ्गाङ्गीभाव नहीं होसकता ॥ ८ ॥

अन्यथानुमितौ च ज्ञशक्तिवियोगात् ॥ ९ ॥

इस सूत्रके–अन्यथा १ अनुमितौ २ च ३ ज्ञशक्तिवियोगात् ४ यह चार पद हैं ॥ यह तीनों गुण परस्परमें सापेक्ष होके जो जो कार्य करना होवे तिस तिस कार्यके अनुकूल स्वभाववाले होते हैं यह प्रधानवादीका अन्यथा अनुमान है सो समीचीन नहीं, काहेतें? प्रधानके विषे ज्ञानशक्तिका अभाव होनेतें संसार रचनाही नहीं हो सकती औ जो प्रधानके विषे ज्ञानशक्तिका अनुमान करे तो एक चेतन संसारका कारण है इस ब्रह्मवादका प्रसंग होवै ॥ ९ ॥

विप्रतिषेधाच्चासमञ्जसम् ॥ १० ॥

इस सूत्रके--विप्रतिषेधात् १ च २ असमंजसम् ३ यह तीनपद हैं ॥ सांख्यवादी किसी जगह एक त्वङ्मात्रकोही ज्ञानेंद्रिय मानके औ एक त्वककाही श्रोत्रादि पंचभेद कहके पंचकर्मेंद्रिय एक मन यह सप्त इंद्रिय कहते हैं औ किसी जगह पंच ज्ञानेंद्रिय पंच कर्मेंद्रिय एक मन यह एकादश इंद्रिय कहते हैं औ कहीं महत्तत्त्वसे तन्मात्राकी उत्पत्ति कहते हैं औ कहां अहंकारसे कहते हैं औ कहां बुद्धि अहंकार मन यह तीन अन्तःकरण कहते हैं औ कहां एक बुद्धिको ही अन्तःकरण कहते हैं इस प्रकारसे परस्परमें विरुद्ध होनेतें औ श्रुतिस्मृतिसे विरुद्ध होनेतें यह सांख्यमत समीचीन नहीं ॥ १० ॥

पूर्वोक्त प्रकारसे प्रधान कारणवादका निराकरण किया अब न्यायवैशेषिकाभिमतपरमाणुकारणवादका निराकरण करतेहैं--नैयायिक परमाणुसे जगत्की उत्पत्ति मानते हैं औ यह नियम करते हैं कि कारणका गुण है सो कार्यके विषै अपने समान जातीय गुणको उत्पन्न करता है जैसे शुक्लतन्तुसे शुक्लपट कीही उत्पत्ति होतीहै तैसे चेतन ब्रह्मसे उत्पन्नभया सर्वजगत् चेतनही होना चाहिये इस रीतिसे वेदांतमतमें आक्षेप करते हैं इसका उत्तर औ पूर्वोक्त नियममें व्यभिचार नैयायिककी प्रक्रियासे ही दिखाते हैं सूत्रकार ॥

महद्दीर्घवद्वा ह्रस्वपरिमण्डलाभ्याम् ॥ ११ ॥

इस सूत्रके--महद्दीर्घवत् १ वा २ ह्रस्वपरिमण्डलाभ्याम् ३ यह तीन पद हैं ॥ परिमण्डल नाम परमाणुका है औ तिसके परिमाणका नाम पारिमाण्डल्य है जैसे नैयायिकमतमें परिमण्डलसे अणु ह्रस्व परिमाणवाला द्व्यणुक उत्पन्न होता है औ तद्गत पारिमाण्डल्य उत्पन्न नहीं होता है औ द्व्यणुकसे महत् दीर्घ परिमाणवाला त्र्यणुक उत्पन्न होता है द्व्यणुकगत ह्रस्व परिमाण उत्पन्न नहीं

होता तैसेही चेतन ब्रह्मसे जगत् उत्पन्न होता है औ ब्रह्मगत चैतन्य उत्पन्न नहीं होता ॥ ११ ॥

उभयथापि न कर्मातस्तदभावः ॥ १२ ॥

इस सूत्रके-उभयथा १ अपि २ न ३ कर्म ४ अतः ५ तद्भावः ६ यह छह पदहैं ॥सृष्टिके आदि कालमें सर्व परमाणुके विषे कर्म उत्पन्न होता है तिसके अनंतर दो दो परमाणुका संयोग होके द्व्यणुक उत्पन्न होते हैं औ तीन तीन द्व्यणुकका संयोग होके त्र्यणुक उत्पन्न होते हैं इस रीतिसे औरभी चतुरणुकादि उत्पत्ति क्रमसे महापृथिवी महाजल महातेज महावायु उत्पन्न होतेहैं औ प्रलयके आदिकालमें सर्व परमाणुमें कर्म होके द्व्यणुकादिकोंका विभाग होके सर्व पृथिव्यादिकोंका नाश होताहै ऐसे वैशेषिक कहतेहैं सो कहना ठीक नहीं, काहेतें ? सृष्टिके आदिकालमें परमाणुके कर्मका कोई निमित्त नहीं अभावसे संयोग विभाग नहीं होसकते संयोग विभागके अभावसे निमित्तके सृष्टि प्रलयभी नहीं होसकते ॥१२॥

समवायाभ्युपगमाच्च साम्यादनवस्थितेः ॥ १३ ॥

इस सूत्रके-समवायाभ्युपगमात् १ च २ साम्यात् ३ अनवस्थितेः ४ यह चार पद हैं ॥ वैशेषिक मतमें समवायका अंगीकार होनेतें सृष्टिप्रलयका अभावही सिद्ध होताहै काहेतें जैसे परमाणुसे अत्यन्त भेदवाला द्व्यणुक है सो समवायसम्बन्धसे परमाणुमें रहता है तैसेही परमाणुसे अत्यन्त भेदवाला समवायभी किसी अन्यसमवायसम्बन्धसे परमाणुमें रहेगा तैसे समवायका समवायभी किसी अन्य समवायसे रहेगा इस प्रकारसे अनवस्थाका प्रसंग होनेतें सृष्टिप्रलय सिद्ध नहीं होसकते ॥ १३ ॥

नित्यमेव च भावात् ॥ १४ ॥

इस सूत्रके-नित्यम् १ एव २ च३ भावात्४ यह चार पदहैं ॥ पर

माणु नित्यप्रवृत्तिस्वभाववाले हैं वा नित्य निवृत्ति स्वभाववालेहैं वा प्रवृत्ति निवृत्ति दोनों स्वभावाले हैं जो नित्य प्रवृत्ति स्वभाववाले हैं वा प्रवृत्ति निवृत्ति दोनों स्वभाववाले हैं तो प्रलयका अभाव होवेगा औ जो निवृत्ति स्वभाववाले हैं तो सृष्टिका अभाव होवैगा औ जो उभय स्वभाववाले कहो सो समीचीन नहीं, काहेतें ? प्रवृत्ति निवृत्ति का परस्पर विरोध है ॥ १४ ॥

रूपादिमत्त्वाच्च विपर्ययो दर्शनात् ॥ १५ ॥

इस सूत्रके—रूपादिमत्त्वात् १ च २ विपर्ययः ३ दर्शनात् ४ यह चार पद हैं ॥ पृथिवी जल तेज वायु यह चार प्रकारके परमाणु हैं सो रूपादि गुणवालेहैं औ नित्यहैं ऐसा वैशेषिक कहतेहैं सो कहना ठीक नहीं, काहेतें? वैशेषिक मतमें विपरीतताका प्रसंग होनेतें जैसे लोकके विषे रूपादि गुणवाला पट है सो अपने कारण तन्तुकी अपेक्षासे स्थूल है औ अनित्यहै तैसे परमाणुभी रूपादि गुणवाले होनेतें अपने परम कारणकी आपेक्षासे स्थूल औ अनित्य होवेंगे ॥ १५॥

उभयथा च दोषात्॥ १६ ॥

इस सूत्रके--उभयथा १ च २ दोषात् ३ यह तीन पद हैं॥ जैसे लोकके विषे गन्ध रस रूप स्पर्श इन चारगुणवाली पृथिवी स्थूल है औ रूप रस स्पर्श इन तीन गुणवाला जल सूक्ष्म है औ रूप स्पर्श इन दोगुण वाला तेज सूक्ष्मतर है औ एक स्पर्श गुणवाला वायु सूक्ष्मतम है तैसे परमाणु अधिकन्यून गुणवाले हैं वा नहीं इन दोनोंही पक्षके विषे तुम्हारे मतमें दोष है काहेतें जो आधिक न्यून गुणवाले परमाणु हैं तो जिसमें अधिक गुण है सो स्थूल होनेतें ? परमाणु न रहेगा औ जो सर्व परमाणु सर्व गुणवाले हैं तो जलके विषे गन्ध होना चाहिये औ तेजके विषे गन्ध रस होने चाहियें इत्यादि दोषका प्रसंग होवैगा ॥ १६

अपरिग्रहाच्चात्यन्तमनपेक्षा ॥ १७ ॥

इस सूत्रके–अपरिग्रहात् १ च २अत्यंतम् ३अनपेक्षा ४ यह चार पद हैं॥ इस परमाणु कारणवादको कोईभी मन्वादि शिष्टपुरुष ग्रहण नहीं करतेभये इसीसे वेदवादी पुरुष परमाणुकारणवादका अत्यन्त अनादर करते हैं ॥ १७ ॥

पूर्वोक्त प्रकारसे परमाणु कारण वादका खण्डन किया अब सर्व क्षणिकवादी बौद्धमतका खण्डन करते हैं ॥

समुदाय उभयहेतुकेऽपि तदप्राप्तिः ॥ १८ ॥

इस सूत्रके–समुदायः१ उभयहेतुके२अपि३तदप्राप्तिः ४यह चार पद हैं ॥ सर्व पदार्थ बाह्यान्तर भेदसे दो प्रकारके हैं पृथिव्यादिभूत औ रूपादि भौतिक यहबाह्य पदार्थहैं चित्त औ कामादि चैत्त यह आन्तर पदार्थहैं औ काठिन स्नेह उष्ण चलनस्वभाववाले पृथिवी जल तेज वायुके परमाणु मिलके बाह्य समुदाय होताहै औ रूप विज्ञान वेदना संज्ञा संस्कार यह पांच स्कंध मिलके सर्वव्यवहरका हेतु आध्यात्म समुदाय होताहै ऐसे सर्वास्तित्ववादी बौद्ध कहताहै सोकहना ठीक नहीं,काहेतें? बौद्धके मतमें कर्त्ता भोक्ता वा प्रेरक कोई चेतन है नहीं औ परमाणुको तथा रूपादि पंचस्कंधको अचेतनहोनेते परमाणु हेतुक बाह्य समुदाय औ रूपादिहे तुक आध्यात्मसमुदाय नहीं होसकता औ समुदायके न होनेतें लोकयात्राकाभी लोप होवेगा १८

इतरेतरप्रत्ययत्वादिति चेन्नोत्पत्तिमात्रनिमित्तत्वात् ॥ १९॥

इस सूत्रके–इतरेतरप्रत्ययत्वात् १ इति २ चेत् ३ न ४ उत्पत्तिमात्रनिमित्तत्वात्५यह पांच पद हैं॥शंकते-यद्यपि हमारे मतमें भोक्ता वा प्रेरक कोई स्थिर चेतन नहीं है तथापि अविद्या संस्कार विज्ञान नामरूप षडायतन स्पर्श वेदना तृष्णा उपादान भव जाति जरा मरण

शोक परिदेवना दुःख दुर्मनस्ता यह अविद्यादिक परस्परमें कारण हैं तिनके विषे अविद्यादि जन्मादिकोंके कारण हैं औ जन्मादि अविद्यादिकोंके कारण हैं इस रीतिसे समुदायकी उत्पत्ति होनेतें लोकयात्राकी सिद्धि है (इति चेन्न) ऐसे न कहो, काहेतें ? अविद्यादिक उत्पत्तिमात्रके कारण हैं समुदायकी उत्पत्तिका कोई निमित्त नहीं औ निमित्तके अभावतें लोकयात्राकी सिद्धि नहीं होसकती ॥ १९॥

उत्तरोत्पादे च पूर्वनिरोधात् ॥ २० ॥

इस सूत्रके–उत्तरोत्पादे १ च २ पूर्वनिरोधात् ३ यह तीन पद हैं ॥ पूर्व यह कहाकि अविद्यादिक उत्पत्तिमात्रके निमित्त हैं समुदायके निमित्त नहीं अब कहते हैं कि अविद्यादिक उत्पत्तिमात्रके भी निमित्त नहीं होसकते, काहेतें ? जब उत्तरक्षणकी उत्पत्ति होतीहै तब पूर्वक्षण नष्ट होजाताहै ऐसे क्षणभंगवादी मानते हैं जो पूर्वक्षण नष्ट होगया तो उत्तरक्षणका कारणही नहीं होसकता इसीसे यह सुगतका मत समीचीन नहीं ॥ २० ॥

असति प्रतिज्ञोपरोधो यौगपद्यमन्यथा ॥ २१ ॥

इस सूत्रके--असति १ प्रतिज्ञोपरोधः २ यौगपद्यम् ३ अन्यथा ४ यह चार पद हैं ॥ जो हेतुके विनाही कार्यकी उत्पत्ति कहे तो विषय करण सहकारि संस्कार इन चार प्रकारके हेतुको प्राप्त होके चित्त रूपादिकोंका विज्ञान औ चैत्त सुखादि उत्पन्न होतेहैं इस प्रतिज्ञाकी हानि होवे औ जो उत्तरक्षणकी उत्पत्ति पर्यंत पूर्वक्षण रहताहै ऐसे कहे तो कार्यकारणको एक कालमें स्थित होनेतें सर्व पदार्थ क्षणिक हैं इस प्रतिज्ञाका उपरोध होवे ॥ २१ ॥

प्रतिसंख्याऽप्रतिसंख्यानिरोधाप्राप्तिरविच्छेदात् ॥ २२ ॥

इस सूत्रके–प्रतिसंख्याऽप्रतिसंख्यानिरोधाप्राप्तिः १ अविच्छेदात् २ यह दो पद हैं ॥ क्षणिकवादी है सो बुद्धिपूर्वक पदार्थोंके नाशको

प्रतिसंख्यानिरोध कहता है औ अबुद्धिपूर्वक नाशको अप्रतिसंख्या निरोध कहताहै परंतु उत्तरक्षण औ पूर्वक्षणका जो कार्य कारण रूप प्रवाह है तिसका विच्छेद न होनेतें दोनोंही प्रकारका निरोध नहीं होसकता ॥ २२ ॥

उभयथा च दोषात् ॥ २३ ॥

इस सूत्रके–उभयथा १ च २ दोषात् ३ यह तीन पद हैं ॥ क्षणिकवादी कहताहै कि प्रतिसंख्यानिरोध अप्रतिसंख्यानिरोधके अन्तर्भूतही अविद्यादिकोंका निरोध है सो कहना ठीक नहीं, काहेतें ? जो यमनियमादिसाधनसहित सम्यक् ज्ञानसे अविद्यादिकोंका निरोध होताहै तो हेतुके विनाही अविद्यादिकोंका नाश होताहै इस क्षणिक वादीके मतकी हानि होवैगीऔ जो अपना आपही अविद्यादिकोंका नाश होताहै तो सर्व दुःख क्षणिक हैं यह क्षणिकवादीका मार्गोपदेश अनर्थक होवेगा इस रीतिसे क्षणिकवादीका मत समीचीन नहीं २३

आकाशे चाविशेषात् ॥ २४ ॥

इस सूत्रके--आकाशे १ च २ अविशेषात् ३ यह तीन पद हैं ॥ क्षणिकवादी कहताहै कि आकाश कोई वस्तु नहीं है सो कहना समीचीन नहीं, काहेतें ? प्रतिसंख्या अप्रतिसंख्या निरोधकी न्याई आकाशकोभी वस्तुत्वज्ञानका अविशेषहै औ "आत्मन आकाशः संभूतः"आत्मासे आकाश होताभया इस श्रुतिकरकेभी आकाश वस्तु सिद्ध है औ 'शब्दः वस्तुनिष्ठः गुणत्वात् गन्धवान्' इस अनुमानसेभी आकाश वस्तु सिद्ध है ॥ २४ ॥

अनुस्मृतेश्च ॥ २५ ॥

इस सूत्रके–अनुस्मृतेः १ च २ यह दो पद हैं ॥ क्षणिकवादी आत्मासे आदि लेके सर्व वस्तुको क्षणिक कहता है सो कहना ठीक नहीं, काहेतें ? जो आत्मा क्षणिक है तो जो मैं पहिले घटको

देखता भया सो अब घटका स्मरण करता हो ऐसा अनुस्मरण होताहै सो न होना चाहिये, काहेतें ? क्षणिकवादीके मतमें घटको देखनेवाला आत्मा नष्ट हो गया औ अन्य पुरुष वस्तुका दूसरेको स्मरण होता नहीं ॥ २५ ॥

नासतोऽदृष्टत्वात् ॥ २६ ॥

इस सूत्रके–न १ असतः २ अदृष्टत्वात् ३ यह तीन पदहैं ॥ नष्ट बीजसे अंकुर उत्पन्न होता है औ नष्ट दुग्धसे दधि उत्पन्न होताहै नष्ट मृत्पिण्डसे घट उत्पन्न होताहै ऐसे अभावसे भावकी उत्पत्ति होतीहै यह सुगतका मतहै सो समीचीन नहीं, काहेतें?अभावसे भावकी उत्पत्ति देखी नहीं औ जो अभावसे भावकी उत्पत्ति होवै तो बीजके अभावसे घट उत्पन्न होना चाहिये औ दंड चक्रादि कारणका ग्रहण न करना चाहिये ॥ २६ ॥

उदासीनानामपि चैवं सिद्धिः ॥ २७ ॥

इस सूत्रके–उदासीनानाम् १ अपि २ च ३ एवम् ४ सिद्धिः ५ यह पांच पद हैं ॥ जो अभावसे भावकी उत्पत्ति होवै तो यत्न करके रहित उदासीन पुरुषोंकेभी वांछित अर्थकी सिद्धि होनी चाहिये यत्नके विनाही कुलालको घट मिलना चाहिये तन्तुवायको वस्त्र मिलना चाहिये ॥ २७ ॥

क्षणिकविज्ञानवादी योगाचार बौद्धका यह मत है कि विज्ञानसे व्यतिरिक्त कोईभी घटपटादि बाह्य पदार्थ नहीं हैं जैसे स्वप्नके विषै बाह्यवस्तुके विनाहीं सर्व व्यवहार विज्ञान मात्रसे होताहै तैसे जाग्रत्के विषैभी प्रमाण प्रमेयादि सर्व व्यवहार विज्ञानमात्रसेही होताहै अत आह ॥

नाभाव उपलब्धेः ॥ २८ ॥

इस सूत्रके–न १ अभावः २ उपलब्धेः ३ यह तीन पदहैं ॥ घट पट

कुड्य कुसूल इत्यादि सर्व बाह्यपदार्थोंका ज्ञान होनेतें तिनका अभाव नहीं होसकता ॥ २८ ॥

वैधर्म्याच्च न स्वप्नादिवत् ॥ २९ ॥

इस सूत्रके-वैधर्म्यात् १ च २ न ३ स्वप्नादिवत् ४ यह चार पदहैं जो यह कहा कि जैसे बाह्य वस्तुके विनाही स्वप्नके विषे ज्ञान होता है तैसे जागरितके विषे भी बाह्यवस्तुके विनाही ज्ञान होता है सो कहना ठीक नहीं, काहेतें? स्वप्नके पदार्थका औ जागरितके पदार्थका बाध अबाध रूप वैधर्म्य है जब पुरुष जागताहै तब स्वप्न दृष्टवस्तुका बाध होता है औ जागरितके विषे दृष्ट घटादि वस्तुका बाध कभी होता नहीं यहही स्वप्न जाग्रत्के पदार्थोंका वैधर्म्य है ॥२९॥

न भावोऽनुपलब्धेः ॥ ३० ॥

इस सूत्रके-न १ भावः २ अनुपलब्धेः ३ यह तीन पदहैं ॥ बाह्य वस्तुके विनाही वासनाकी विचित्रतासे घटपटादिज्ञानकी विचित्रता है यह कहना भी ठीक नहीं, काहेतें? तुम्हारे मतमें बाह्य वस्तुका ज्ञान है नहीं औ बाह्य वस्तुके ज्ञान विना वासनाकी उत्पत्ति होती नहीं३०

क्षणिकत्वाच्च ॥ ३१ ॥

इस सूत्रके-क्षणिकत्वात्१च२यह दो पदहैं॥यद्यपि क्षणिकज्ञानवादी योगाचार'अहं अहं'इस आलय विज्ञानको वासनाका आश्रय कहताहै तथापि'अयं घटः अयं पटः'इसप्रवृत्तिविज्ञानकी न्याईंआलयविज्ञानको भी क्षणिक होनेतें वासनाका आश्रय नहीं होसकता३१

सर्वथानुपपत्तेश्च ॥ ३२ ॥

इस सूत्रके-सर्वथा १ अनुपपत्तेः २ च३यह तीन पद हैं॥बहुत कहने करके क्या है सर्व प्रकार करके जैसे जैसे इस क्षणिकवादीके सिद्धान्तकी परीक्षा करे तैसे तैसे वालुकाकूपकी न्याईं विदीरण होताहै अपने कल्याणकी इच्छावाला पुरुष इस सुगतमतको सर्वथा अनुपपन्न जानके इसका अनादर करै ॥ ३२ ॥

नैकस्मिन्नसंभवात् ॥ ३३ ॥

इस सूत्रके—न १ एकस्मिन् २ असंभवात् ३ यह तीन पद हैं । सुगतके मतका निराकरण किया अब विवसन (दिगंबर) के मतका निराकरण करते हैं विवसन है सो स्याद्वाद सप्तभङ्गी न्यायको अपना सिद्धान्त मानते हैं सो सप्तभङ्ग यह है । स्यादस्ति १ स्यान्नास्ति २ स्यादस्ति चनास्ति च ३ स्यादवक्तव्यः ४ स्यादस्तिचावक्तव्यश्च ५ स्यान्नास्तिचावक्तव्यश्च ६ स्यादस्तिचनास्तिचावक्तव्यश्च ७ इति । इस सप्तभङ्गके समुदायको सप्तभङ्गी कहते हैं स्याद् अव्यय कथंचित् अर्थको कहता है इसका संक्षेपसे अर्थ यह है कि घटादि वस्तु कथंचित् है १ कथंचित् नहीं है २ कथंचित् है औ नहीं है ३ कथंचित् अवक्तव्य है ४ कथंचित् है औ अवक्तव्य है ५ कथंचित् नहीं है औ अवक्तव्य है ६ कथंचित् है औ नहीं है औ अवक्तव्य है ७ इति। यहभी मत समीचीन नहीं काहेतें एक कालमें एक वस्तुके विषे सत्त्व असत्त्वादि विरोधि धर्मोंका संभव नहीं जहां सत्त्व है तहां असत्त्व नहीं औ जहां असत्त्व है तहां सत्त्व नहीं ॥ ३३ ॥

एवं चात्माऽकार्त्स्न्यम् ॥ ३४ ॥

इस सूत्रके—एवम् १ च २ आत्माऽकार्त्स्न्यम् ३ यह तीन पद हैं ॥ जैसे एक धर्मिके विषे विरुद्ध धर्मका असंभव रूप दोष स्याद्वादमें है तैसे जीवात्माका अकार्त्स्न्य दोषभी है काहेतें विवसन कहतेहैं कि शरीरका परिमाणही जीवका परिमाण है जो शरीरका परिमाण जीव है तो असर्वगत परिच्छिन्न जीवात्मा मध्यम परिणामवाला होनेतें घटादिकोंकी न्याईं अनित्य होवेगा ॥ ३४ ॥

न च पर्यायादप्यविरोधो विकारादिभ्यः॥ ३५ ॥

इस सूत्रके—न १ च २ पर्यायात् ३ अपि ४ अविरोधः ५ विकारादिभ्यः ६ यह छह पद हैं ॥ पर्यायता करके जब जीव हस्तीके

शरीरको त्यागके कीटपतंगके शरीरमें जाता है तब जीवके अवयव कम हो जातेहैं औ जब कीटपतंगके शरीरको त्यागके हस्तीके शरीरमें जाता है तब अवयव बढजाते हैं इस रीतिसे हमारे मतमें विरोध नहीं ऐसे दिगंबर कहते हैं सो ठीक नहीं काहेतें जो जीवके अवयव घटते बढते हैं तो जीव विकारी होनेतें अनित्य होवेगा ३५

अन्त्यावस्थितेश्चोभयनित्यत्वादविशेषः ॥ ३६ ॥

इस सूत्रके--अन्त्यावस्थितेः १ च २ उभयनित्यत्वात् ३ अविशेषः ४ यह चार पद हैं ॥ मोक्ष अवस्थाके विषे जीवका अन्त्य-परिमाण है सो नित्य है ऐसे जैनमतवाले मानते हैं सो समीचीन नहीं काहेतें जैसे अन्त्यपरिमाण नित्य है तैसे आद्य मध्य परिमाणकोभी नित्यत्वका प्रसंग होनेतें तीनोंही परिमाणोंको अविशेष प्रसंग है जैसे सौगतमत आदरके योग्य नहीं तैसे आर्हत मतभी असंगत होनेतें आदरके योग्य नहीं ॥ ३६ ॥

पत्युरसामञ्जस्यात् ॥ ३७ ॥

इस सूत्रके–पत्युः १ असामञ्जस्यात् २ यह दो पदहैं ॥ ईश्वरहै सो इस जगत्का केवल निमित्त कारणही है उपादान कारण नहीं ऐसे शैव वैशेषिकादिक कहते हैं सो समीचीन नहीं काहेतें हीन मध्यम उत्तम प्राणियोंके भेदको करनेवाले ईश्वरके रागद्वेषादिदोष का प्रसंग होनेतें अस्मदादिकोंकी न्याई अनीश्वरताका प्रसंग होवैगा जो विषमकारीहै सो दोषवालाहै यह व्याप्ति लोकमें प्रसिद्धहै ३७

सम्बन्धानुपपत्तेश्च ॥ ३८ ॥

इस सूत्रके–संबन्धानुपपत्तेः १ च २ यह दो पद हैं॥ प्रधान पुरुषसे जुदा ईश्वर संयोगसमवायादि संबंधके विना प्रधान पुरुषको प्रेर नहीं सकता औ प्रधान पुरुष ईश्वर इनतीनोंका संयोगसंबंध बने नहीं काहेतें यहतीनों सर्वगतहैं औ निरवयवहै औ इनके आश्रयाश्रयिभावकों

न होनेतें समवायादि संबंध भी नहीं होसकता इसीसे सांख्यादिकोंके ईश्वरकी कल्पना ठीक नहीं ॥ ३८ ॥

अधिष्ठानानुपपत्तेश्च ॥ ३९ ॥

इस सूत्रके—अधिष्ठानानुपपत्तेः १ च २ यह दो पद हैं॥जैसे मृदादिकोंको लेके कुंभकार कुंभ करनेको प्रवृत्त होताहै तैसे ईश्वर भी प्रधानादिकोंको लेके प्रवृत्त होता है ऐसे तार्किक कहते हैं सो समीचीन नहीं काहेतें मृदादिकोंसे विलक्षण रूपादि हीन अप्रत्यक्ष प्रधानादिकोंको लेके ईश्वर प्रवृत्त नहीं हो सकता ॥ ३९ ॥

करणवच्चेन्न भोगादिभ्यः ॥ ४० ॥

इस सूत्रके—करणवत् १ चेत् २ न ३ भोगादिभ्यः ४ यह चार पद हैं॥जैसे रूपादिहीन अप्रत्यक्ष चक्षुरादि करणोंको लेके पुरुष प्रवृत्त होताहै तैसे प्रधानादिकोंको लेके ईश्वर प्रवृत्त होताहै (इति चेन्न) ऐसे न कहो काहेतें!जो चक्षुरादि करणके सम प्रधानादिकोंको मानोंगे तो संसारीपुरुषकी न्यांई ईश्वरको भी भोगादिकोंका प्रसंग होवैगा ४०

अन्तवत्त्वमसर्वज्ञता वा ॥ ४१ ॥

इस सूत्रके— अन्तवत्त्वम् १ असर्वज्ञता २ वा ३ यह तीन पद हैं ॥ ईश्वर सर्वज्ञ औ अनंत है प्रधान औ पुरुष अनंत है ऐसे तार्किक कहते हैं तहां हम पूछते हैं कि ईश्वर है सो अपनी तथा प्रधान पुरुषकी संख्याको वा परिमाणको जानता है वा नहीं जो जानता है तो जैसे लोकमें संख्या परिमाणवाला घटादि पदार्थ अनित्य है तैसे प्रधान पुरुष ईश्वर यह तीनोंही अनित्य होवेंगे औ जो नहीं जानता है तो ईश्वर सर्वज्ञ नहीं इस रीतिसे तार्किकपरिकल्पित ईश्वरकारणवाद असंगत है ॥ ४१ ॥

उत्पत्त्यसंभवात् ॥ ४२ ॥

इस सूत्रका—उत्पत्त्यसंभवात् १ यह एकही समस्तपद है॥ एकही

भगवान् वासुदेव संकर्षण प्रद्युम्नअनिरुद्ध इसचतुर्व्यूहरूपकरके स्थित है. वासुदेव परमात्मा है संकर्षण जीवहैप्रद्युम्न मनहै अनिरुद्ध अहंकारहै.वासुदेवसे संकर्षण उत्पन्न होता है संकर्षणसे प्रद्युम्न उत्पन्न होताहै प्रद्युम्नसे अनिरुद्ध उत्पन्न होताहै ऐसे भागवत मानतेहैं सो ठीक नहीं,काहेतैं? वासुदेवपरमात्मासे संकर्षण जीवकी उत्पत्तिका असंभवहै औ जो जीवकी उत्पत्ति होतीहै तो उत्पत्तिवाले जीवको घटादिवत् अनित्य होनेतैं जीवकी भगवत्प्राप्तिरूप मोक्ष न होवेगी ४२

न च कर्तुः करणम् ॥४३॥

इस सूत्रके–न१ च२ कर्तुः३ करणम्४यह च्यार पद हैं॥संकर्षणाख्य जीव कर्त्तासे प्रद्युम्नसंज्ञक मनरूप करण उत्पन्न होताहै औ प्रद्युम्नसंज्ञक मनसे अनिरुद्ध संज्ञा अहंकार उत्पन्न होताहै ऐसेभागवत कहते हैं सो समीचीन नहीं काहेतैं लोकमें देवदत्तादि कर्त्तासे कुठारादि करण उत्पन्न होते देखे नहीं औ जो ऐसे कहै कि देवदत्त अपना आपही कुठारको बनायके छिदिक्रियाको करसकताहै सो भी ठीक नहीं काहेतैं देवदत्त अपने हस्तसे कुठारको बनाता है जीवके हस्तभी नहीं औ जीव कर्त्तासे मन करण उत्पन्न होताहै ऐसी कोई श्रुतिभी नहीं है ॥ ४३ ॥

विज्ञानादिभावे वा तदप्रतिषेधः॥

इस सूत्रके–विज्ञानादिभावे १ वा २ तदप्रतिषेधः ३ यह तीन पदहैं॥ जो ऐसे कहै कि वासुदेव संकर्षण प्रद्युम्न अनिरुद्ध यह च्यारों ही विज्ञानादि शक्तिवाले ईश्वर हैं सो कहना बने नहीं काहेतैं जो यह च्यारों परस्पर भिन्न हैं तो च्यार ईश्वर मानना निरर्थक हैं औ एक भगवान् वासुदेव परमार्थ तत्त्व है इस तुम्हारी प्रतिज्ञाकी हानि होवैगी औ जो एकहीके च्यार भेद हैं तो वासुदेवसे संकर्षणकी उत्पत्तिका असंभव है॥ ४४ ॥

विप्रतिषेधाच्च ॥ ४५ ॥

इस सूत्रके–विप्रतिषेधात् १ च २ यह दो पदहैं ॥ इस शास्त्रके विषै आत्माही गुण औ गुणी है प्रद्युम्न अनिरुद्ध आत्मासे भिन्न हैं वासुदेवादि चारों आत्मा हैं इत्यादि विरुद्धोक्ति बहुत हैं औ शांडिल्यऋषि चारों वेदोंके विषै कल्याणको नहीं देखके इस शास्त्रको पढताभया इत्यादि वेदकी निंदा है इसीसे यह कल्पना असंगत है ॥ ४५ ॥

इति श्रीमन्मौक्तिकनाथयोगिविरचितायां ब्रह्मसूत्रसारार्थप्रदीपिकायां द्वितीयाध्यायस्य द्वितीयः पादः ॥ २ ॥

द्वितीयाध्याये तृतीयः पादः ।

वेदान्तके विषै तैत्तिरीय उपनिषद्में आकाश वायुकी उत्पत्ति मानते हैं औ छान्दोग्यके विषै नहीं मानते हैं औ वाजसनेयी शाखा वाले जीवप्राणकी उत्पत्ति मानते हैं औ अथर्ववेदके विषै प्राणकी उत्पत्ति मानते हैं ऐसे उत्पत्तिश्रुतियोंका परस्परमें विरोध है तिसको दूर करते हैं सूत्रकार ॥

न वियदश्रुतेः ॥ १ ॥

इस सूत्रके–न १ वियत् २ अश्रुतेः ३ यह तीन पद हैं ॥ आकाश की उत्पत्ति नहीं होती काहेतें छान्दोग्यकेविषै "तत्तेजोऽसृजत" यह श्रुति तेजपूर्वक जगत्की उत्पत्तिको कहती है औ आकाशकी उत्पत्तिमें कोई श्रुति नहीं ऐसे एकदेशी मानता है ॥ १ ॥

अस्ति तु ॥ २ ॥

इस सूत्रके–अस्ति १ तु २ यह दो पद हैं ॥ 'तु' शब्द पक्षान्तर ग्रहणके वास्ते है जो छान्दोग्यके विषै आकाशकी उत्पत्तिको कहनेवाली श्रुति नहीं है तो न रहो परन्तु तैत्तिरीयके विषै "तस्माद्वा एतस्मादात्मन आकाशः संभूतः" यह श्रुति कहती है कि इस आत्मासे आकाश उत्पन्न होताभया इसीसे श्रुतियोंका परस्पर विरोध है ॥ २ ॥

गौण्यसंभवात् ॥ ३ ॥

इस सूत्रके—गौणी १ असंभवात् २ यह दो पद हैं॥कोई कहता है कि आकाशकी उत्पत्ति नहीं होसकती औ जो आकाशकी उत्पत्तिमें श्रुति प्रमाण कहा सो श्रुति गौणहै मुख्य नहीं काहेतें कारणसामग्रीके अभावतें आकाशकी उत्पत्तिका असंभव है औ जितने काल कणादके शिष्य जीवते हैं उतनेकाल आकाशकी उत्पत्ति कोई भी नहीं कह सकता ॥ ३ ॥

शब्दाच्च ॥ ४ ॥

इस सूत्रके—शब्दात् १ च २ यह दो पद हैं ॥ "वायुश्चान्तरिक्षं चैतदमृतम्" यह श्रुति वायुको औ आकाशको अमृत कहती है अमृत नाम नित्यका है नित्यकी उत्पत्ति होती नहीं औ "आकाशशरीरं ब्रह्म" आकाशशरीरवाला ब्रह्म है इस श्रुतिसेभी आकाश अनादि भान होता है ॥ ४ ॥

एकही संभूत शब्द आकाशके विषै गौण औ तेजके विषै मुख्य कैसा है इस शंकाका उत्तर एकदेशी कहता है ॥

स्याच्चैकस्य ब्रह्मशब्दवत् ॥ ५ ॥

इस सूत्रके—स्यात् १ च २ एकस्य ३ ब्रह्मशब्दवत् ४ यह चार पद हैं ॥ जैसे एक ब्रह्म प्रकरणके विषै "अन्नं ब्रह्म" "आनंदो ब्रह्म" इन दो वाक्यों करके अन्नको औ आनंदको ब्रह्म कहा है तहां अन्नके विषै ब्रह्मशब्द गौण है औ आनंदके विषै मुख्य है तैसे एक ही संभूत शब्द आकाशके विषै गौणहै औ तेजके विषै मुख्य है॥५॥

प्रतिज्ञाऽहानिरव्यतिरेकाच्छब्देभ्यः ॥ ६ ॥

इस सूत्रके—प्रतिज्ञाऽहानिः १ अव्यतिरेकात् २ शब्देभ्यः ३ यह तीन पद हैं ॥ यह वेदकी प्रतिज्ञा है कि एक आत्माके जाननेसे सर्व

जगत् जाना जाताहै जो सर्व जगत्को ब्रह्मसे अभिन्न मानें तो इस प्रतिज्ञाकी हानि न होवै औ जो आकाशको ब्रह्मका कार्य न माने तो ब्रह्मके ज्ञानसे आकाशका ज्ञान न होवेगा तब प्रतिज्ञाकी हानि होवेगी औ "ऐतादात्म्यमिदं सर्वम्" यह सर्व जगत् रूप इस आत्म-रूप है इत्यादि शब्दोंसे भी जगत् औ ब्रह्मका अभेदभान होताहै॥६॥

जो यह कहा कि आकाशकी उत्पत्तिको कहनेवाली श्रुति गौण है तहां कहते हैं ॥

यावद्विकारं तु विभागो लोकवत् ॥ ७ ॥

इस सूत्रके-यावत् १ विकारम् २ तु ३ विभागः ४ लोकवत् ५ यह पांच पद हैं ॥ 'तु' शब्द शंकाकी निवृत्तिके अर्थ है जैसे लोकके विषे घट घटिका शराव कटक केयूर कुण्डलादि जितना विकार है उतनाही तिसका विभागहै औ विकार रहित वस्तुका विभाग है नहीं औ आकाश दिक् कालादिकोंका पृथिव्यादिकोंसे विभाग होनेतें आकाशादिकोंसे विभाग है तथापि आत्मासे परे कोई वस्तु है नहीं जिसको आत्मा विकार होवै ॥ ७ ॥

एतेन मातरिश्वा व्याख्यातः ॥ ८ ॥

इस सूत्रके-एतेन १ मातरिश्वा २ व्याख्यातः ३ यह तीन पद हैं॥इस आकाशके व्याख्यान करके आकाशके आश्रित वायुका भी व्याख्यान होता भया जो श्रुति आकाशको आत्माका विकार कहती है सो श्रुति वायुको आकाशका विकार कहती है ॥ ८ ॥

असंभवस्तु सतोऽनुपपत्तेः ॥ ९

इस सूत्रके-असंभवः १ तु २ सतः ३ अनुपपत्तेः ४ यह चार पद हैं ॥ जो कोई ऐसे कहै कि जैसे आकाश वायुकी उत्पत्ति होती है तैसे ब्रह्मकी भी उत्पत्ति होवेगी सो कहना असंभव है काहेतें सत्ब्रह्मकी उत्पत्ति सत्से है वा असत्से है जो सत्से कहोतो ब्रह्मसे

दूसरा कोई सत् नहीं औ जो असत्से कहो तो कदाचित् वन्ध्याके पुत्रसे भी किसीकी उत्पत्ति होनी चाहिये औ ब्रह्मकी उत्पत्तिको कहने वाली कोई श्रुति भी नहीं है ॥ ९ ॥

तेजोऽतस्तथाह्याह ॥ १० ॥

इस सूत्रके—तेजः१ अतः२ तथा३हि ४ आह ५यह पांच पद हैं ॥ तेज है सो वायुसे उत्पन्न होताभया,काहेतें? "वायोरग्निः" यह श्रुति-वाक्य वायुसे तेजकी उत्पत्ति कहता है औ जो छान्दोग्यमें "तत्तेजो-सृजत" यह श्रुतिहै सो परंपरासे तेजको ब्रह्मका कार्य कहती है साक्षात् नहीं ॥ १० ॥

आपः ॥ ११ ॥

इस सूत्रका—आपः १यह एकही पद है ॥ पूर्व सूत्रसे "अतस्तथा ह्याह" इन पदोंकी अनुवृत्ति करणी, आप है सो तेजसे उत्पन्न होते भये, काहेतें ? "अग्नेरापः" यह श्रुतिवाक्य अग्निसे आपकी उत्पत्ति कहता है ॥ ११ ॥

पृथिव्यधिकाररूपशब्दान्तरेभ्यः ॥ १२ ॥

इस सूत्रके—पृथिवी १ अधिकाररूपशब्दान्तरेभ्यः २ यह दो पद हैं ॥ वेदके विषे श्रवण होता है कि "ताअन्नमसृजत" अस्यार्थः-आप है सो अन्नको रचतेभये इति । तहां संशय है कि अन्नश-ब्दसे व्रीहि यवादिकोंका ग्रहण है वा पृथिवीका ग्रहण है इति । तहां कहते हैं कि अन्नशब्दसे पृथिवीका ग्रहण है,काहेतें?"तत्तेजोऽसृजत" यह महाभूतोंका अधिकार है व्रीहि यवादिकोंका नहीं, औ "यत्कृ-ष्णं तदन्नस्य" जो कृष्णरूप है सो अन्नका है इहां अन्नशब्दसे पृथिवीका ग्रहण है औ "अद्भ्यः पृथिवी" आपसे पृथिवी होतीभई इस शब्दान्तरसे भी पृथिवीका ग्रहण है ॥ १२ ॥

आकाशादि पंचमहाभूत अपने आपही अपने कार्यको रचते हैं वा परमेश्वर तिस तिस आकाशादि रूपसे स्थित होके तिस तिस कार्यका चिंतन करके तिस तिस कार्यको रचता है अतआह ॥

तदभिध्यानादेव तु तल्लिङ्गात्सः ॥ १३ ॥

इस सूत्रके–तदभिध्यानात् १ एव २ तु ३ तल्लिंगात्४ सः५ यह पांच पद हैं ॥ सो परमेश्वरही तिस तिस आकाशादिरूपसे स्थित होके तिस तिस कार्यका चिंतन करके तिस तिस कार्यको रचताहै, काहेतें? "यः पृथिव्यां तिष्ठन्" इत्यादि श्रुति कहती है कि जो परमेश्वर पृथिवीमें स्थित होके पृथिवीको प्रेरता है औ पृथिवी तिसको नहीं जानती है इति ॥ १३ ॥

विपर्ययेण तु क्रमोऽत उपपद्यते च ॥ १४ ॥

इस सूत्रके–विपर्ययेण १ तु २ क्रमः ३ अतः ४ उपपद्यते ५ च ६ यह छह पद हैं ॥ भूतोंका उत्पत्तिक्रम कहके अब प्रलयक्रम कहते हैं जैसे उत्पत्तिक्रम है तैसेही प्रलयक्रम है वा विपरीत है. तहां कहते हैं कि उत्पत्तिक्रमसे प्रलयक्रम विपरीत है, काहेतें? जैसे जिस क्रमसे पुरुष मकानके ऊपर चढता है तिसतैं विपरीत क्रमसे उतरता है तैसे ही उत्पत्ति क्रमसे प्रलयक्रम विपरीत है औ इस अर्थको स्मृति भी कहतीहै "जगत्प्रतिष्ठादेवर्षेपृथिव्यप्सुप्रलीयते । ज्योतिष्यापः प्रलीयंते ज्योतिर्वायौ प्रलीयते । वायुश्च लीयते व्योम्नि तच्चाव्यक्ते प्रलीयते" इत्यादि । अर्थः–हे नारद जगत्को धारण करनेवाली पृथिवी जलके विषे लीन होतीहै औ जल ज्योतिके विषे लीन होता है औ ज्योति वायुके विषे लीन होताहै औ वायु आकाशके विषे लीन होता है औ आकाश अव्यक्तके विषे लीन होता है ॥ १४ ॥

अन्तराविज्ञानमनसी क्रमेण तल्लिङ्गादिति चेन्नाविशेषात् ॥ १५ ॥

इस सूत्रके—अन्तराविज्ञानमनसी १ क्रमेण २ तल्लिङ्गात् ३ इति ४ चेत् ५ न ६ अविशेषात् ७ यह सात पद हैं ॥ अथर्ववेदके विषे उत्पत्ति प्रकरणमें "एतस्माज्जायतेप्राणो मनःसर्वेंद्रियाणिच" इत्यादि मंत्रलिङ्गसे आत्माके औ भूतोंके मध्यमें सर्व इंद्रियसहित बुद्धि औ मनकी उत्पत्तिका श्रवण होताहै तिस मन बुद्धिके उत्पत्ति क्रम करके पूर्वोक्त भूतादि क्रमका भंग होवैगा (इति चेन्न) ऐसे न कहो, काहेतें? मन बुद्धि इंद्रिय यह सर्व भूतोंके कार्य हैं भूतोंके उत्पत्ति प्रलय करकेही इनकाभी उत्पत्ति प्रलय सिद्ध है और कुछ विशेषता नहीं । मंत्रार्थः—इस आत्मासे प्राण मन सर्व इंद्रिय इत्यादि सर्वही उत्पन्न होते हैं इति ॥ १५ ॥

चराचरव्यपाश्रयस्तु स्यात्तद्व्यपदेशो भाक्तस्तद्भावभावित्वात् ॥ १६ ॥

इस सूत्रके—चराचरव्यपाश्रयः १ तु २ स्यात ३ तद्व्यपदेशः ४ भाक्तः ५ तद्भावभावित्वात् ६ यह छह पद हैं॥ जीव जन्मता है औ मरता है यह किसी पुरुषको भ्रांति है तिसको दूर करते हैं जन्ममरण शब्दका कथन चराचर शरीरके आश्रय मुख्य है औ जीवके विषे जन्ममरण शब्दका कथन गौण है शरीरके प्रादुर्भाव तिरोभावका नाम जन्ममरण है शरीरके विना जीवका न जन्म है न मरण है १६

नात्माऽश्रुतेर्नित्यत्वाच्च ताभ्यः ॥ १७ ॥

इस सूत्रके—न १ आत्मा २ अश्रुतेः ३ नित्यत्वात् ४ च ५ ताभ्यः ६ यह छह पद हैं ॥ जैसे व्योमादिक परब्रह्मसे उत्पन्न होते हैं तैसे जीव उत्पन्न होता है वा नहीं तहां कहते हैं कि जीव उत्पन्न नहीं होता, काहेतें ? उत्पत्तिप्रकरणके विषे जीवकी उत्पत्तिका श्रवण

नहीं औ "स वा एष महानज आत्माऽजरोऽमरोऽमृतोऽभयो ब्रह्म"। इत्यादि श्रुतिसे जीवात्मा नित्य सिद्ध है। श्रुत्यर्थः–यह जीव है सो महान् है अज है आत्मा है अजर है अमर है अमृत है अभय है ब्रह्म है इति ॥ १७ ॥

वैशेषिक कहते हैं कि जीवात्मा स्वतः जड है आत्मा मनके संयोगसे जीवमें चैतन्य गुण उत्पन्न होता है औ सांख्यवादी कहतेहैं कि जीव नित्य चैतन्यस्वरूप है इस संशयको दूर करते हैं सूत्रकार ॥

ज्ञोऽत एव ॥ १८ ॥

इस सूत्रके--ज्ञः १ अतः २ एव ३ यह तीन पद हैं ॥ जीवात्मा नित्य चैतन्यस्वरूप है इसी हेतुसे जीवकी उत्पत्ति नहीं होती १८॥

जीवका अणु परिमाण है वा मध्यम परिमाण है वा महत् परिमाण है अत आह ॥

उत्क्रान्तिगत्यागतीनाम् ॥ १९ ॥

इस सूत्रका--उत्क्रान्तिगत्यागतीनाम् १ यह एकही पद समस्त है॥ जीवका अणु परिमाणहै, काहेतें? शास्त्रके विषे जीवकी उत्क्रान्ति गति आगति का श्रवणहै इस शरीरको त्यागनेका नाम उत्क्रान्ति है इस लोकसे चन्द्रलोकादिकोंमें जानेका नाम गति है चन्द्रलोकों से इस लोकमें आनेका नाम आगति है ॥ १९ ॥

स्वात्मना चोत्तरयोः ॥ २० ॥

इस सूत्रके–स्वात्मना १ च २ उत्तरयोः ३ यह तीन पद हैं॥ यद्यपि जेसे कोई पुरुष किसी ग्रामका स्वामी है सो न चले तौभी कदाचित तिसका स्वामीपना दूर होजाता है तैसे जीव इस शरीरसे न चले तौभी इसशरीरके स्वामीपनेकी निवृत्तिरूप उत्क्रान्ति होसकतीहै तथापि उत्तर जो गति आगति है सो अपने आत्माके संयोग विना नहीं

होसकता इस हेतुसेभी जीव अणु हैअणुके विना संयोग नहीं होता सं योगविना चलना नहीं होता चले विना गति आगतिनहीं होसकती॥

नाणुरतच्छ्रुतेरिति चेन्नेतराधिकारात् ॥ २१ ॥

इस सूत्रके—न १ अणुः २ अतच्छ्रुतेः ३ इति ४ चेत् ५ न ६इ-तराधिकारात्७यह सात पद हैं॥जीवका अणु परिमाण नहींहै,काहे-तैं? "महानज आत्मा"यह श्रुतिवाक्य आत्माका अणुपरिमाणसे वि-परीत महत् परिमाण कहता है (इति चेन्न)ऐसे न कहो, काहेतैं?उक्त श्रुतिवाक्यमें परमात्माका अधिकार होनेतैं परमात्मा महत्परिमा-णवाल है जीवात्मा नहीं ॥ २१ ॥

स्वशब्दोन्मानाभ्यां च ॥ २२ ॥

इस सूत्रके--स्वशब्दोन्मानाभ्याम् १ च२यह दो पदहैं॥जीवके अणु परिमाणको साक्षात् श्रुति कहती है"एषोऽणुरात्मा चेतसा वेदितव्यो यस्मिन्प्राणःपंचधा संविवेश" इति।अस्यार्थः-यह आत्मा अणुहै औ चित्त करके जानने योग्य है औ जिसके विषे प्राण पांच प्रकार करके प्रवेश करताभया इति।औ शास्त्रमें यह भी कहा है कि केशके अग्रभा-गका सौ भाग करे तिसमें भी एक भागका सौ भाग करे तिस परिमा णवाला जीव है इस उन्मानसे भी जीवका अणु परिमाण सिद्ध है२२

जो जीवात्मा अणुपरिमाणवाला है तो सर्व शरीरके विषे शीता-दिकोंका ज्ञान न होना चाहिये इस शंकाका उत्तर कहते हैं सूत्रकार॥

अविरोधश्चन्दनवत् ॥ २३ ॥

इस सूत्रके--अविरोधः १ चंदनवत् २यह दो पद हैं॥जैसे हरिच-न्दनका एक बिन्दु शरीरके एकदेशमें लगाहुआ सर्वशरीर व्यापी आनन्दको करता है तैसे जीवात्मा भी त्वक्के साथ संयोग पायके शरीरके एकदेशमें स्थित हुआ भी सर्वशरीरव्यापी शीतादि ज्ञानको करसकता है ॥ २३ ॥

अवस्थितिवैशेष्यादिति चेन्नाभ्युपगमाद्धृदि हि ॥२४॥

इस सूत्रके--अवस्थितिवैशेष्यात् १ इति २ चेत् ३ न ४ अभ्युपगमात् ५ हृदि ६ हि ७ यह सात पद हैं ॥ शरीरके एकदेशमें चन्दनकी अवस्थिति औ सर्वशरीरमें चन्दनकृत आनन्द यह दोनों प्रत्यक्ष हैं औ आत्मकृत सर्वशरीरव्यापी ज्ञान प्रत्यक्ष है परंतु शरीरके एकदेशमें आत्माकी अवस्थिति प्रत्यक्ष नहीं इस रीतिसे अवस्थिति विशेष होनेतें चन्दनका दृष्टान्त विषम है (इति चेन्न) ऐसे नं कहो, काहेतें? "हृदिह्येष आत्मा" यह आत्मा हृदयके विषैहै इस श्रुतिवाक्यसे एकदेश हृदयके विषै आत्माकी अवस्थितिका निश्चयहै ॥

गुणाद्वा लोकवत् ॥ २५ ॥

इस सूत्रके—गुणात् १ वा २ लोकवत् ३ यह तीन पद हैं ॥ जैसे लोकके विषै मणि वा प्रदीप किसी मकानके एकदेशमें स्थित है परंतु तिनकी प्रभा सर्व मकानमें है तैसे आत्मा अणु है परंतु तिसका चैतन्य गुण सर्वशरीरव्यापी है ॥ २५ ॥

जैसे पटका शुक्ल गुण है सो पटके विना और जगह नहीं रहता तैसे जीवका चैतन्य गुण भी जीवके विना सर्वशरीरमें नहीं रहेगा इस शंकाका उत्तर कहते हैं ॥

व्यतिरेको गन्धवत् ॥ २६ ॥

इस सूत्रके—व्यतिरेकः १ गंधवत् २ यह दो पदहैं॥ जैसे गन्ध गुणहै सो अपने आश्रय पुष्पमें वर्त्तके और जगह भी वर्त्तताहै तैसे चैतन्य गुण भी अपने आश्रय जीवमें वर्त्तके सर्वशरीरमें वर्त्तता है ॥ २६ ॥

तथा च दर्शयति ॥ २७ ॥

इस सूत्रके--तथा १ च २ दर्शयति ३ यह तीन पद हैं॥ "आलोमभ्य आनखाग्रेभ्यः" यह श्रुति कहती है कि सर्व लोम पर्यंत औ सर्व नखके अग्रभागपर्यंत सर्वशरीरमें जीवका चैतन्य गुण वर्त्तता है २७

पृथगुपदेशात् ॥ २८ ॥

इस सूत्रके-पृथक् १ उपदेशात् २ यह दो पद हैं ॥ "प्रज्ञया शरीरं समारुह्य" इस श्रुति करके आत्माका औ प्रज्ञाका कर्तृकरण भाव करके पृथक् उपदेश होनेतें चैतन्य गुण करके जीव सर्वशरीरव्यापी है ॥ २८ ॥

जो यह जीवका अणु परिमाण कहा सो एकदेशीका मत है तिसको दूषित करनेके वास्ते मुख्य सिद्धान्ती कहता है कि पर ब्रह्मका नाम जीव है औ परब्रह्मको विभु होनेतें जीव विभु है। शंका-जो जीव विभु है तो शास्त्रके विषै अणु क्यों कहाहै अत आह ॥

तद्गुणसारत्वात्तु तद्व्यपदेशः प्राज्ञवत् ॥ २९ ॥

इस सूत्रके-तद्गुण सारत्वात् १ तु २ तद्व्यपदेशः ३ प्राज्ञवत् ४ यह चार पद हैं ॥ 'तु' शब्द एकदेशी पक्षकी निवृत्तिके अर्थ है जैसे प्राज्ञ परमात्मा विभुहै परंतु सगुण उपासनाके विषै उपाधिको लेके व्रीहि यवादिकोंसे भी अणु कहा है तैसे बुद्धिका गुण जो इच्छा द्वेष सुखदुःखादि तिनको संसारदशामें जीव अपने विषै सार मानता है इस उपाधिको लेके बुद्धिके अणु परिमाणका जीवके विषै कथन है ॥ २९ ॥

जो बुद्धिके संयोगसे आत्मा संसारी है तो जब बुद्धिका वियोग होवैगा तब आत्मा संसारी न रहेगा इस शंकाको दूर करते हैं ॥

यावदात्मभावित्वाच्च न दोषस्तद्दर्शनात् ॥ ३० ॥

इस सूत्रके--यावत् १ आत्मभावित्वात् २ च ३ न ४ दोषः ५ तद्दर्शनात् ६ यह छह पद हैं ॥ जो दोष तुम कहते हो सो नहीं लगसकता, काहेतें ? जितने काल इस जीवको सम्यक् ज्ञान न होगा उतनेकाल बुद्धिका संयोग रहनेसे यह जीव संसारीही रहेगा औ शास्त्र भी विज्ञानमय शब्दसे इस जीवको बुद्धिमय कहता है ॥ ३० ॥

सुषुप्ति औ प्रलयके विषै सर्वविकारका नाश होनेतैं बुद्धिका संयोग भी नहीं रहता इस शंकाको दूर करते हैं ॥

पुंस्त्वादिवत्तस्य सतोऽभिव्यक्तियोगात् ॥ ३१ ॥

इस सूत्रके-पुंस्त्वादिवत् १ तस्य २ सतः ३ अभिव्यक्तियोगात् ४ यह चार पद हैं ॥ जैसैं लोकके विषै पुंस्त्वादिधर्म विद्यमान भी हैं परंतु बाल्यावस्थाके विषै अविद्यमानकी न्याईं रहते हैं औ यौवनादि अवस्थाके विषै प्रगट होते हैं तैसे सुषुप्ति प्रलयके विषै भी बुद्धिसंयोगादि सर्व हैं परंतु अविद्यमानकी न्याईं रहते हैं औ जागरितादि अवस्थाके विषै प्रगट होते हैं ॥ ३१ ॥

नित्योपलब्ध्यनुपलब्धिप्रसंगोऽन्यतरनियमो वाऽन्यथा ॥ ३२ ॥

इस सूत्रके-नित्योपलब्ध्यनुपलब्धिप्रसंगः १ अन्यतरनियमः २ वा ३ अन्यथा ४ यह चार पद हैं ॥ मन बुद्धि चित्त अहंकार यह चार प्रकारका अन्तःकरण आत्माकी उपाधि है औ जो अन्तःकरणकों न माने तो आत्मा इंद्रिय विषय इनका नित्य संबंध होनेतैं नित्यही ज्ञान होना चाहिये अथवा नित्यही न होना चाहिये अथवा आत्माकी वा इंद्रियकी शक्ति रुकनेसें कदाचित् ज्ञान होताहै कदाचित् नहीं होता ऐसा मानना चाहिये जिसके समवधानसे ज्ञान होताहै औ असमवधानसे नहीं होता सो मन है औ "मनसा ह्येव पश्यति मनसा शृणोति" यह श्रुति भी कहती है कि मन करकेही देखता है औ मन करकेही सुनता है इति ॥ ३२ ॥

कर्ता शास्त्रार्थवत्त्वात् ॥ ३३ ॥

इस सूत्रके-कर्त्ता १ शास्त्रार्थवत्त्वात् २ यह दो पद हैं ॥ बुद्धिके संबंधसे जीव कर्त्ता है औ जो जीवको कर्त्ता न मानोगे तो "यजेत,

जुहुयात्, दद्यात्" इत्यादि विधिशास्त्र अनर्थक होवैगा, काहेतें ? यजन करना होम करना दान करना यह सर्व चेतन कर्ताके विना नहीं हो सकते ॥ ३३ ॥

विहारोपदेशात् ॥ ३४ ॥

इस सूत्रका–विहारोपदेशात् १ यह एकही समस्त पद है ॥ "स ईयतेऽमृतो यत्र कामम्" सो अमृत आत्मा स्वप्नस्थानके विषै इच्छापूर्वक गमन करताहै यह विहारका उपदेश करनेवाली श्रुति भी जीवको कर्ता कहती है ॥ ३४ ॥

उपादानात् ॥ ३५ ॥

इस सूत्रका–उपादानात् १ यह एकही पद है ॥ वेदके विषै कहा है कि जीवात्मा प्राणइंद्रियादिकोंका उपादान कर्त्ता है ॥ ३५ ॥

व्यपदेशाच्च क्रियायां न चेन्निर्देशविपर्ययः ॥ ३६ ॥

इस सूत्रके--व्यपदेशात् १ च २ क्रियायाम् ३ न ४ चेत् ५ निर्देशविपर्ययः६ यह छह पद हैं ॥ "विज्ञानं यज्ञं तनुते" इत्यादि शास्त्र लौकिक वैदिक क्रियाके विषै जीवात्माको कर्ता कहता है इहां विज्ञानशब्दसे जीवात्माका निर्देश है औ जो जीवात्माका निर्देश न होवै तो 'विज्ञानेन' ऐसे करणमें तृतीया होके प्रथमासे विपरीत निर्देश होना चाहिये । विज्ञान (जीवात्मा) यज्ञका विस्तार करता है इति श्रुत्यर्थः ॥ ३६ ॥

जो जीव स्वतंत्र कर्त्ता है तो नियमसे अपने हित कार्यको करना चाहिये अहितको न करना चाहिये इस शंकाका उत्तर कहते हैं ॥

उपलब्धिवदनियमः ॥ ३७ ॥

इस सूत्रके-उपलब्धिवत १ अनियमः २ यह दो पद हैं ॥ जैसे जीव अपने ज्ञानके प्रति स्वतंत्र है परंतु अनियमसे इष्ट अनिष्टको प्राप्त होता है तैसे जीव स्वतंत्र होके भी देश कालादि निमित्तको लेके अनियमसे हित अहित कार्यको करता है ॥ ३७ ॥

शक्तिविपर्ययात् ॥ ३८ ॥

इस सूत्रका--शक्तिविपर्ययात् १ यह एकही समस्त पद है॥ विज्ञानशब्दवाच्य बुद्धि करण है औ बुद्धिसे भिन्न जीव कर्त्ता है औ जो बुद्धिको कर्त्ता कहै तो बुद्धिकी करण शक्ति विपरीत होवै औ कर्त्ताके विषे 'अहं गच्छामि'इत्यादि 'अहं'शब्दका प्रयोग होताहै सो जडबुद्धिके विषे नहीं होसकता इसीसे बुद्धि करण है कर्त्ता नहीं३८

समाध्यभावाच्च ॥ ३९ ॥

इस सूत्रके--समाध्यभावात्१च २ यह दो पद हैं ॥ "ओमित्येवं ध्यायथ आत्मानम् " 'ओम्' इस प्रकार आत्माका ध्यान करना यह वेदान्तके विषे समाधि कहा है सो चेतन कर्त्ताके विना नहीं होसकता इसीसे जीव कर्त्ता है बुद्धि नहीं ॥ ३९ ॥

जो यह कहा कि जीव कर्त्ता है तहां संशय है कि जीव स्वभावसे कर्त्ता है वा किसी निमित्तसे कर्त्ता है अत आह ॥

यथा च तक्षोभयथा ॥ ४० ॥

इस सूत्रके--यथा १ च २ तक्षा ३ उभयथा४ यह चार पद हैं ॥ जैसे लोकके विषे काष्ठ छेदनकरनेवाला तक्षा है सो जितने काल वास्यादि करणको अपने हाथमें धारण करे उतने काल कर्त्ता है औ दुःखी है औ जब अपने घरमें जायके वास्यादि करणको त्यागता है तब निर्व्यापार होके सुखी रहता है तैसे जीवात्माभी जागरित स्वप्नके विषे बुद्ध्यादि करणको लेके कर्त्ता है औ दुःखी है औ सुषुप्ति मोक्षके विषे बुद्ध्यादि करणको त्यागके सुखी रहताहै न कर्त्ता है न दुःखी है ॥ ४० ॥

जो यह कहा कि अविद्या अवस्थाके विषे उपाधिको लेके जीव कर्त्ता है तहां संशय है कि जीवको अपने कर्तापने में ईश्वरकी अपेक्षा है वा नहीं अत आह ॥

परात्तु तच्छ्रुतेः ॥ ४१ ॥

इस सूत्रके—परात् १ तु २ तच्छ्रुतेः ३ यह तीन पद हैं ॥ अविद्यारूप तिमिर करके अंधा जीव है सो परमेश्वरकी आज्ञासे कर्तृत्व भोक्तृत्वरूप संसारको प्राप्त होताहै औ परमेश्वरके अनुग्रहरूप हेतुसे सम्यक्ज्ञान होके मोक्षको प्राप्त होताहै इस अर्थको यह श्रुतिभी कहती है "एष ह्येव साधु कर्म कारयति" यह परमेश्वरही श्रेष्ठकर्मको कराता है ॥ ४१ ॥

जो ईश्वरही शुभ अशुभ कर्मको कराता है तो ईश्वरमें विषमतादि दोषका प्रसंग होवैगा इस शंकाका निराकरण करते हैं ॥

कृतप्रयत्नापेक्षस्तुविहितप्रतिषिद्धावैयर्थ्यादिभ्यः ॥ ४२ ॥

इस सूत्रके—कृतप्रयत्नापेक्षः १ तु २ विहितप्रतिषिद्धावैयर्थ्यादिभ्यः ३ यह तीन पद हैं ॥ ईश्वरमें विषमतादि दोष नहीं, काहेतैं? जीवकृत धर्म अधर्मकी अपेक्षासे ईश्वर कर्म कराता है स्वतः नहीं इसीसे विहित निषिद्धकर्मको कहनेवाले वेदादि शास्त्र व्यर्थ नहीं होते ४२

अंशो नानाव्यपदेशादन्यथा चापि दाशकितवादित्वमधीयत एके ॥ ४३ ॥

इस सूत्रके—अंशः १ नानाव्यपदेशात् २ अन्यथा ३ च ४ अपि ५ दाशकितवादित्वम् ६ अधीयते ७ एके ८ यह आठ पद हैं ॥ जीव है सो ईश्वरका अंश है, काहेतैं? शास्त्रके विषै नाना जीवका कथन है यद्यपि ईश्वर निरवयव है तिसका जीव मुख्य अंश नहीं होसकता तथापि जीव अंशकी न्याई अंश है औ शास्त्रके विषै अनानात्वका कथन होनेतैंभी जीव ईश्वरका अंश है. कोई शाखावाले कहते हैं कि दाशकितवादि सर्व ब्रह्म हैं इस रीतिसे जीव ईश्वरका भेद अभेद होनेतैं अग्नि विस्फुलिङ्गकी न्याई अंशांशी भाव है ४३

मंत्रवर्णाच्च ॥ ४४ ॥

इस सूत्रके–मंत्रवर्णात् १ च २ यह दो पद हैं॥ "पादोऽस्य सर्वा भूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवि" इस मंत्रवर्णसेभी जीव ईश्वरका अंश प्रतीत होता है इहां पाद नाम अंशका है। अस्यार्थः--यह सर्व स्थावर जंगम इस परमेश्वरके अंश हैं औ इसके अमृतरूप तीन अंश अपने स्वरूपके विषै हैं इति ॥ ४४

अपि च स्मर्यते ॥ ४५ ॥

इस सूत्रके–अपि १ च २ स्मर्यते ३ यह तीन पद हैं॥ ईश्वरगीताके विषै स्मरण होता है कि ईश्वरका अंश जीव है "ममैवांशोजीव लोके जीवभूतः सनातनः" अस्यार्थः–हे अर्जुन इस जीवलोकके विषै यह सनातन जीव है सो मेराही अंश है इति॥ ४५ ॥

जैसे हस्त पादादि एक अंगमें दुःख होनेसे अंगी देवदत्त दुःखी होताहै तैसे जीव अंशके विषै दुःख होनेतें अंशी ईश्वर भी दुःखी होना चाहिये इस शंकाका उत्तर करते हैं ॥

प्रकाशादिवन्नैवं परः ॥ ४६ ॥

इस सूत्रके–प्रकाशादिवत् १ न २ एवं ३ परः यह चार पदहैं।॥जैसे अंगुल्यादि उपाधिको ऋजु वक्र होनेतें अकाशमें स्थित सूर्यादि-प्रकाश ऋजु वक्र भान होता है परंतु परमार्थसे न ऋजु होता है न वक्र होता है तैसे अविद्यादि उपाधिवाले जीवोंको दुःखी होनेतैं ईश्वर दुःखी नहीं होता ॥ ४६ ॥

स्मरन्ति च ॥ ४७ ॥

इस सूत्रके--स्मरंति १च२ यह दो पद हैं॥ जीवके दुःख करके परमात्मा दुःखी नहीं होता इस अर्थके विषै व्यासादिकोंकी स्मृति भी है"तत्र यः परमात्मा हि स नित्यो निर्गुणः स्मृतः। न लिप्यते

फलैश्चापि पद्मपत्रमिवांभसा"॥अस्या अर्थः--जीवात्मा परमात्माके मध्यमें जो परमात्मा है सो नित्य है औ निर्गुण है औ जैसे कमलका पत्ता जलकरके लिपायमान नहीं होता तैसे सुख दुःखादि फलकरके परमात्मा लिपायमान नहीं होता इति ॥ ४७ ॥

अनुज्ञापरिहारौ देहसम्बन्धाज्ज्योतिरादिवत ॥ ४८ ॥

इस सूत्रके—अनुज्ञापरिहारौ १ देहसंबंधात् २ ज्योतिरादिवत् ३ यह तीन पद हैं ॥ जैसे लोकके विषै सर्व ज्योति एकही है परन्तु श्मशानकी अग्निका निषेध है औरका नहीं तैसे एकही आत्माको देहके सम्बन्धसे अनुज्ञा परिहार है अनुज्ञा नाम विधिका है जैसे ऋतु कालमें अपनी भार्यासे संग करना यह शास्त्रकी अनुज्ञा है औ परिहार नाम निषेधका है जैसे गुरुकी भार्यासे संग नहीं करना यह परिहारहै ४८

एक आत्माका सर्व शरीरके साथ संबंध होनेतें देवदत्तके कर्मका फल यज्ञदत्त क्यों नहीं भोगता इस शंकाका परिहार करते हैं सूत्रकार ॥

असंततेश्चाव्यतिकरः ॥ ४९ ॥

इस सूत्रके—असंततेः १ च २ अव्यतिकरः ३ यह तीन पद हैं ॥ बुद्धि अहंकारादि उपाधिवाला जीव कर्त्ता भोक्ता है तिसका सर्व शरीरके साथ संबंध नहीं हो सकता इस हेतुसे एक पुरुषके कर्मका फल दूसरा पुरुष नहीं भोग सकता ॥ ४९ ॥

आभास एव च ॥ ५० ॥

इस सूत्रके—आभासः १ एव २ च ३ यह तीन पद हैं ॥ जैसे जलके विषै सूर्यका प्रतिबिम्ब सूर्यका आभास है तैसे अन्तःकरणके विषै परमात्माका प्रतिबिम्ब जीव आभास है औ जैसे एक जल प्रतिबिम्बके कंपनेसे दूसरा नहीं कंपता तैसे एकजीवके कर्म फलको दूसराजीव नहीं भोगता औ जिसके मतमें नाना आत्मा हैं तिसके मतमें सर्व आत्मा-

शरीरके साथ संबंध होनेतें एक पुरुषके कर्मका फल दूसरे पुरुषको भोगना चाहिये ॥ ५० ॥

अदृष्टानियमात् ॥ ५१ ॥

इस सूत्रका--अदृष्टानियमात् १ यह एकही पद है ॥ जिस अदृष्ट करके जिस आत्माका औ मनका संयोग भयाहै सो संयोग उसही आत्माके सुखादिकोंका हेतु है दूसरेका नहीं यह वैशेषिकका कहना ठीक नहीं काहेतें अदृष्टको सर्व आत्माके साथ साधारण होनेतें अदृष्ट करके नियम नहीं हो सकता ॥ ५१ ॥

अभिसंध्यादिष्वपि चैवम् ॥ ५२ ॥

इस सूत्रके--अभिसंध्यादिषु १ अपि २ च ३ एवम् ४ यह चार पद हैं ॥ मैं इस कर्मको करके इस फलको प्राप्त होऊंगा इत्यादि संकल्प है सो भिन्न भिन्न आत्माका औ अदृष्टका नियम करता है यह कहना भी समीचीन नहीं, काहेतें? सर्व साधारण आत्मा मन संयोग करके संकल्प होताहै सो नियमका हेतु नहीं हो सकता॥५२॥

प्रदेशादिति चेन्नान्तर्भावात् ॥ ५३ ॥

इस सूत्रके--प्रदेशात् १ इति २ चेत् ३ न ४ अंतर्भावात् ५ यह पांच पद हैं ॥ यद्यपि आत्मा विभु है तथापि शरीरके विषै स्थित मनका संयोग शरीरविशिष्ट आत्माके विषै होताहै जिस शरीरविशिष्ट आत्मामें मनका संयोग है तिस शरीरविशिष्ट आत्माही अपने सुखदुःखको भोगता है दूसरा नहीं भोगता (इति चेन्न) ऐसे न कहो, काहेतें? तुम्हारे मतमें सर्व आत्माका सर्व मनके साथ संयोग होके एकका सुख दुःख दूसरेको भोगनाही होवेगा इस दोषका परिहार हमारे एकात्मपक्षमें हो सकता है ॥ ५३ ॥

इति श्रीमन्मौक्तिकनाथयोगिविरचितायांब्रह्मसूत्रसारार्थप्रदीपिकायां द्वितीयाध्यायस्य तृतीयः पादः ॥ ३ ॥

द्वितीयाऽध्याये चतुर्थः पादः ।

तृतीयपादके विषे आकाशादि पंचभूतकी उत्पत्तिका विचार किया औ तिसके अनंतर कर्ता भोक्ता जीवके स्वरूपका विचार किया अब भौतिक प्राणकी उत्पत्तिका विचार करनेके वास्ते इस चतुर्थ पादका प्रारंभ है वेदके विषे उत्पत्तिप्रकरणमें कहां प्राणकी उत्पत्ति कही है औ कहां नहीं कही है तहां संशय है कि प्राण उत्पन्न होते हैं वा नहीं इस संशयको दूर करते हैं भगवान् सूत्रकार॥

तथा प्राणाः ॥ १ ॥

इस सूत्रके—तथा १ प्राणाः २ यह दो पद हैं ॥ जैसे आकाशादि पंचभूतकी उत्पत्ति परब्रह्मसे होतीहै तैसे प्राणकी उत्पत्ति भी परब्रह्मसे होतीहै औ प्राणकी उत्पत्तिको श्रुति भी कहती है "एतस्माज्जायते प्राणो मनःसर्वेंद्रियाणि च" अस्या अर्थः—इस परमात्मासे प्राण मन औ सर्व इंद्रिय उत्पन्न होते हैं इति ॥ १ ॥

गौण्यसंभवात् ॥ २ ॥

इस सूत्रके—गौणी १ असंभवात् २ यह दो पद हैं ॥ जो श्रुति प्राणकी उत्पत्तिको कहती है सो गौण है यह पूर्वपक्षीका कहना ठीक नहीं, काहेतें? एक कारण परमेश्वरके जानेतें सर्व कार्य जाना जाता है यह वेदकी प्रतिज्ञा है जो प्राणादि सर्व जगत् ब्रह्मका कार्य न होवे तो प्रतिज्ञाकी हानि होवे इसीसे प्राणकी उत्पत्तिको कहनेवाली श्रुति गौण नहीं किंतु मुख्य है ॥ २ ॥

तत्प्राक्छ्रुतेश्च ॥ ३ ॥

इस सूत्रके--तत्प्राक्छ्रुतेः १च २यह दो पद हैं ॥जायते यह एकही जन्मवाची शब्द है सो पहिले प्राणकी उत्पत्तिको कहके पश्चात् आकाशादिकोंकी उत्पत्तिको कहताहै एक प्रकरणके विषे एक बेर कथन कियाहुआ बहुतके साथ संबंधवाला एकही शब्द है सो कहीं गौण कहीं मुख्य नहीं कहाता किंतु सर्वत्र मुख्यही कहाता है ॥ ३ ॥

तत्पूर्वकत्वाद्वाचः ॥ ४ ॥

इस सूत्रके- तत्पूर्वकत्वात् १ वाचः २ यह दो पद हैं ॥ यद्यपि "तत्तेजोऽसृजत" इस प्रकरणके विषे प्राणकी उत्पत्ति नहीं कही है तेज जल पृथिवी इन तीनकी उत्पत्तिका श्रवण है तथापि तेज जल पृथिवीको ब्रह्मका कार्य होनेतें वाक् प्राण मन यह भी ब्रह्मके कार्य हैं इस अर्थको श्रुतिभी कहती है "अन्नमयं हि सोम्य मनः आपोमयः प्राणः तेजोमयी वाक्" इति। अस्या अर्थः—हे सोम्य श्वेतकेतो यह मन पृथिवीमय है औ प्राण जलमय है औ वाक् तेजोमयी है इति ॥ ४ ॥

सप्तगतेर्विशेषितत्वाच्च ॥ ५ ॥

इस सूत्रके—सप्तगतेः विशेषितत्वात् २ च ३ यह तीन पद हैं ॥ अब प्राणकी संख्या कहते हैं तिनमें मुख्य प्राणको अगाडी कहेंगे वेदके विषे कहीं पंच ज्ञानइंद्रिय वाक् मन यह सप्त प्राण कहे हैं औ कहीं यही हस्त करके सहित अष्ट प्राण कहे हैं औ कहीं दो श्रोत्र दो चक्षु दो घ्राण वाक् पायु उपस्थ यह नव प्राण कहे हैं औ कहीं पंच ज्ञानेंद्रिय पंच कर्मेंद्रिय यह दश प्राण कहे हैं औ कहीं यही मनसहित एकादश प्राण कहे हैं औ कहीं यही बुद्धिसहित द्वादश प्राण कहे हैं औ कहीं यही अहंकारसहित त्रयोदश प्राण कहे हैं तहां संशय है कि इनमें प्राणकी कौनसी संख्या माननी चाहिये तहां पूर्वपक्षी कहताहै कि " सप्त वै शीर्षण्याः प्राणाः" इस श्रुतिसे शिरके विषे दो श्रोत्र दो चक्षु दो घ्राण एक वाक् इन सप्त प्राणका ज्ञान होता है यह शिर करके विशेषित सप्त प्राणही मानने चाहियें ॥ ५ ॥

हस्तादयस्तु स्थितेऽतो नैवम् ॥ ६ ॥

इस सूत्रके—हस्तादयः १ तु २ स्थिते ३ अतः ४ न ५ एवम् ६ यह छह पद हैं ॥ सप्त प्राणसे अधिक हस्तादिक प्राण कहे हैं सप्त प्राणसे अधिक हस्तादि प्राणको स्थित होनेतें सप्तही प्राण हैं ऐसे नहीं

माननां चाहिये औ सिद्धान्त कोटि यह है कि पंच ज्ञानेंद्रिय पंच कर्मेंद्रिय एक मन यह एकादशही प्राण हैं इनसे न न्यून हैं न अधिक हैं ॥ ६ ॥

अणवश्च ॥ ७ ॥

इस सूत्रके–अणवः १ च २ यह दो पद हैं ॥ यह प्राण अणु है अर्थात्सूक्ष्म औ परिच्छिन्न परिमाणवाला है परमाणुकी तुल्य नहीं औ जो स्थूल होवें तो जैसे बिलसे निकलता सर्प दीखता है तैसे मरण कालमें देहसे निकलते प्राण भी दीखने चाहियें ॥ ७ ॥

श्रेष्ठश्च ॥ ८ ॥

इस सूत्रके–श्रेष्ठः १ च २ यह दो पद हैं ॥ जैसे और प्राण ब्रह्मसे उत्पन्न भये हैं तैसे मुख्य प्राण भी ब्रह्मसे उत्पन्न भया है "स प्राणमसृजत" यह श्रुतिवाक्य कहता है कि सो परमात्मा मुख्यप्राणको रचता भया इति ॥ ८ ॥

न वायुक्रिये पृथगुपदेशात् ॥ ९ ॥

इस सूत्रके–न १ वायुक्रिये २ पृथगुपदेशात् ३ यह तीन पद हैं ॥ अब मुख्यप्राणके स्वरूपका विचार करते हैं मुख्यप्राण है सो न वायु है औ न इंद्रियोंका व्यापार है, काहेतें ? "प्राण एव ब्रह्मणश्चतुर्थः पादः सवायुना ज्योतिषा भाति च तपति च" यह श्रुति कहती है कि मनोरूप ब्रह्मका वाक् प्राण चक्षु श्रोत्र यह चार पाद हैं तिनके विषे प्राण है सो अपने अधिदेव वायु करके प्रगट होती है औ ज्योतिकरके अपना कार्य करनेको समर्थ होता है ऐसे वायुसे औ इंद्रियव्यापारसे मुख्यप्राणका पृथक् उपदेश है ॥ ९ ॥

जैसे इस शरीरके विषे जीव स्वतंत्र है तैसे प्राण भी सर्ववागादिकोंसे श्रेष्ठहै सो स्वतंत्र होना चाहिये इस शंकाका उत्तर करते हैं ॥

चक्षुरादिवत्तु तत्सहशिष्ट्यादिभ्यः ॥१०॥

इस सूत्रके–चक्षुरादिवत् १ तु २ तत्सहशिष्ट्यादिभ्यः ३यह तीन पद हैं ॥ तुशब्द प्राणकी स्वतंत्रताकी निवृत्तिके अर्थ है जैसे चक्षु श्रोत्रादिक जीवके कर्त्तृत्व भोक्तृत्वका साधन हैं तैसे मुख्यप्राण भी राजमंत्रीकी न्याईं जीवके सर्व अर्थको सिद्धकरनेवाला है स्वतंत्र नहीं, काहेतें ? प्राण है सो चक्षुरादिकोंके साथही शेष रहताहै अर्थात् चक्षुरादिकोंके समानधर्मवाला है ॥ १० ॥

अकरणत्वाच्च न दोषस्तथाहि दर्शयति ॥ ११ ॥

इस सूत्रके–अकरणत्वात् १ च २ न ३ दोषः ४ तथा ५ हि ६ दर्शयाति ७ यह सात पद हैं॥जैसे नेत्र श्रोत्रादिकोंका रूप शब्दादिक विषय हैं तैसे प्राणका भी कोई विषय होना चाहिये यह दोष प्राण के विषे नहीं आ सकता काहेतें जैसे नेत्रादि करण हैं तैसे प्राण करण नहीं है । प्रश्न–जो प्राण करण नहीं तो प्राणसे कोई कार्य न होना चाहिये । उत्तर–यद्यपि प्राण करण नहीं तथापि शरीररक्षाही प्राणका कार्य श्रुति कहती है "प्राणेन रक्षन्नवरं कुलायम्" अस्या अर्थः–प्राण करके इस नीच देहकी रक्षा करताहुआ जीवात्मा सोता है इति ॥ ११ ॥

पञ्चवृत्तिर्मनोवद्व्यपदिश्यते ॥ १२ ॥

इस सूत्रके–पंचवृत्तिः १ मनोवत् २ व्यपादिश्यते ३ यह तीन पद हैं ॥जैसे श्रोत्रादि निमित्तद्वारा शब्दादिकोंको विषय करनेवाली मनकी पांच वृत्ति हैं तैसे मुख्यप्राणकी भी कार्यद्वारा प्राण अपान व्यान उदान समान यह पांच वृत्ति श्रुतिके विषै कथन करी हैं॥१२॥

अणुश्च ॥ १३ ॥

इस सूत्रके–अणुः १च २ यह दो पद हैं ॥ मुख्यप्राणकी उत्पत्तिको औ स्वरूपको कहके अब तिसका परिमाण कहते हैं मुख्यप्राण अणु

परिमाणवाला है अणुशब्दसे इहां सूक्ष्म औ परिच्छिन्न परिमाणका ग्रहण है, काहेतें ? मरणकालमें समीप बैठे पुरुषको दीखता नहीं इस हेतुसे सूक्ष्म है औ अपनी प्राणादि पंच वृत्तिसे सर्वशरीरमें वर्त्तता है औ लोकांतरमें जाता आता है इस हेतुसे परिच्छिन्नपरिमाणवाला है ॥ १३ ॥

जो पूर्व जितने प्राण कहे सो अपने स्वभावसे अपनेअपने कार्यमें प्रवृत्त होते हैं वा अपने अधिष्ठातृ देवताके अधीन होके प्रवृत्त होते हैं तहां पूर्वपक्षी कहता है कि अपने स्वभावसे ही प्रवृत्त होते हैं औ जो देवताके अधीन होके प्रवृत्त होवेंगे तो देवताही भोक्ता रहेगा जीव भोक्ता न रहेगा इस शंकाका उत्तर कहते हैं ॥

ज्योतिराद्यधिष्ठानं तु तदामननात् ॥ १४ ॥

इस सूत्रके–ज्योतिराद्यधिष्ठानम् १ तु २ तदामननात् ३ यह तीन पद हैं ॥'तु'शब्द पूर्वपक्षकी निवृत्तकें अर्थ है अग्न्यादि देवताके अधीन होके वागादि सर्व प्राण प्रवृत्त होते हैं इस अर्थमें श्रुति प्रमाण है "अग्निर्वाग्भूत्वा मुखं प्राविशत्"अस्याअर्थः–अग्नि है सो वाक् इंद्रिय होके मुखमें प्रवेश करता भया इति ॥ १४ ॥

प्राणवत्ता शब्दात् ॥ १५ ॥

इस सूत्रके–प्राणवत्ता१शब्दात्२यह दो पद हैं ॥ जो यह कहा कि देवताके अधीन होके प्राण प्रवृत्त होवेंगे तो देवताही भोक्ता होवेगी सो कहना ठीक नहीं, काहेतें ? कार्यकरणसमुदायका स्वामी जो शारीर जीवात्मा तिसके साथ ही सर्व प्राणका संबंध श्रुति कहती है और एक शरीरात्माही भोक्ता है बहुत देवता भोक्ता नहीं होसक्ते

तस्य च नित्यत्वात् ॥ १६ ॥

इस सूत्रके–तस्य १ च २ नित्यत्वात्३ यह तीन पदहैं ॥ शारीर आत्मा इस शरीरके विषै भोक्तृरूप करके नित्य है तिसकेही पुण्य

पापका लेप होताहै औ सुखदुःखका भोग होताहै औ देवता परमऐश्वर्यवालेहैं इस हीन शरीरके विषै भोग नहीं भोगते औ करण पक्षके अग्न्यादि देवता हैं भोक्तृपक्षके नहीं ॥ १६ ॥

एक मुख्य प्राण है औ दूसरे वागादि एकादश प्राण हैं तहां संशय है कि वागादि मुख्यप्राणके भेद हैं वा नहीं?इस संशयको दूर करते हैं॥

त इन्द्रियाणि तद्व्यपदेशादन्यत्र श्रेष्ठात् ॥१७॥

इस सूत्रके-ते १ इन्द्रियाणि २ तद्व्यपदेशात् ३ अन्यत्र ४श्रेष्ठात्५ यह पांच पद हैं ॥ वागादिक मुख्यप्राणके भेद नहीं हैं किंतु मुख्यप्राणसे जुदे हैं, काहेतें ? श्रुतिके विषै मुख्य प्राणको बरजके वागादि एकादश इन्द्रिय कहे हैं औ मुख्यप्राण इंद्रिय है नहीं॥ १७॥

भेदश्रुतेः ॥ १८ ॥

इस सूत्रका-भेदश्रुतेः १ यह एकही पद है॥ उद्गीथ कर्मके विषै पापवृत्ति असुरोंके नाशके वास्ते वागिंद्रियको देवता कहते भये कि तूं हमारे मध्यमें उद्गान कर जिस उद्गानसे पापवृत्ति असुर नष्ट होवें जब वाक् उद्गान करने लगी तब असुर हैं सो अनृत दोष करके वाक्का विध्वंस करतेभये ऐसे सर्व इंद्रियोंको पाप करके ग्रस्त करते भये पीछे निर्विषय औ संग दोष रहित मुख्य प्राण उद्गान करने लगा तब असुर नष्ट होतेभये इत्यादि स्थलके विषै सारे मुख्यप्राणसे वागादिकोंके भेदका श्रवण होता है ॥ १८ ॥

वैलक्षण्याच्च ॥ १९ ॥

इस सूत्रके-वैलक्षण्यात १ च २ यह दो पद हैं॥वागादिकोंसे मुख्य प्राण विलक्षण है काहेतें जब वागादिक सर्व इंद्रिय सोते हैं तब एक मुख्य प्राणही जागता है औ प्राणकी स्थितिसे देहकी स्थिति रहती है औ प्राणके निकलनेसे देहका पतन होता है ॥ १९ ॥

संज्ञामूर्त्तिक्लृप्तिस्तु त्रिवृत्कुर्वत उपदेशात् ॥ २० ॥

इस सूत्रके-संज्ञामूर्तिक्लृप्तिः १ तु २ त्रिवृत्कुर्वतः ३ उपदेशात् ४

यह चार पद हैं॥इस सूत्रके विषे संज्ञाशब्दसे नामका ग्रहण है मूर्तिश ब्दसे रूपका ग्रहण है क्लृतिनाम करनेका है वेदमें ऐसे कहा है कि जो परमात्मा तेज जल पृथिवी इन सूक्ष्म भूतोंका त्रिवृत् करके इनको स्थूल करताभया सोही परमात्मा इस जगत्का नामरूप करताभया इति। यह त्रिवृत्करण है सो पंचीकरणका उपलक्षण है ॥ २० ॥

मांसादिभौमं यथाशब्दमितरयोश्च ॥ २१ ॥

इस सूत्रके-मांसादिभौमम् १ यथाशब्दम् २ इतरयोः ३ च ४ यह चार पद हैं ॥ बाह्यत्रिवृत् कहके अब इस सूत्रसे अध्यात्मत्रिवृत कहते हैं पुरुष करके भक्षित अन्नरूप पृथिवीका स्थूलभाग हैसो पुरीष होके बाहिरनिकलताहै औ मध्यमभाग मांस होजाताहै औअणुभाग मनहै औ जलकास्थूलभाग मूत्र होके बाहिर निकलता है औ मध्यम भाग रुधिर होजाता है औ अणुभाग प्राण है औ तेजका स्थूलभाग अस्थि है औ मध्यमभाग मज्जा है औ अणुभाग वाक् है इति २१

जो सर्वभूतोंका समानही त्रिवृत् करण है तो यह तेज है यह जल है यह पृथिवी है ऐसा विशेष कथन क्यों है? इस शंकाको दूरकरते हैं॥

वैशेष्यात्तु तद्वादस्तद्वादः॥ २२ ॥

इस सूत्रके-वैशेष्यात् १ तु २ तद्वादः ३ तद्वादः ४ यह चार पद हैं ॥ 'तु' शब्द उक्त शंकाकी निवृत्तिके अर्थ है यद्यपि सर्वभूतोंका त्रिवृत्करण समान है तथापि जहां जिस भूतका विशेषभाग है तहां तिस भागको लेके विशेष कथन है इहां दो बेर तद्वाद पदका अभ्यास है सो इस विरोधपरिहाराध्यायकी समाप्तिको द्योतन करता है २२

इति श्रीमद्योगिवर्य्ययमुनानाथपूज्यपादशिष्यश्रीमन्मौक्तिकनाथयोगिविरचितायां ब्रह्मसूत्रसारार्थप्रदीपिकायां द्वितीयाध्यायस्य चतुर्थः पादः ॥ ४ ॥

इति द्वितीयोऽध्यायः समाप्तः ॥ २ ॥

तृतीयोऽध्यायः ३.

प्रथमः पादः ।

पूर्वोक्तवागादिउपकरणसहित जीवके संसारगति प्रकारादि दिखानेके वास्ते इस तृतीय अध्यायका प्रारंभ है तहां प्रथमपादमें वैराग्यके वास्ते पंचाग्निविद्याको दिखाते हैं मुख्यप्राण इन्द्रिय मन उपासना धर्म अधर्म पूर्वसंस्कार इन सर्वको लेके जीव है सो पूर्व देहको त्यागके दूसरे देहको प्राप्त होताहै तहां संशय है कि उत्तर देहके कारण जो भूत सूक्ष्म तिनको त्यागके जाताहै वा तिनको लेके जाताहै अत आह ॥

तदनन्तरप्रतिपत्तौ रंहति संपरिष्वक्तः प्रश्ननिरूपणाभ्याम् ॥ १ ॥

इस सूत्रके–तदनन्तरप्रतिपत्तौ १ रंहति २ संपरिष्वक्तः ३ प्रश्न-निरूपणाभ्याम् ४ यह चार पद हैं ॥ प्रश्नसे औ निरूपणसे यह निश्चय है कि जब जीव पूर्वदेहको त्यागके उत्तरदेहको प्राप्त होताहै तब उत्तर देहके बीज जो भूत सूक्ष्म तिनको लेके जाता है वेदके विषै उपासनाके वास्ते द्यु पर्जन्य पृथिवी पुरुष योषित यह पांच अग्नि कहे हैं जब इन पांच अग्निके विषै आप (जल)को होमे तब पंचमी आहुतिमें जैसे पुरुष शब्द वाच्य होतेहैं अर्थात् पुरुषरूप करके परिणामको प्राप्त होतेहैं तैसे हे श्वेतकेतो तूं जानता है यह श्वेतकेतुके प्रति प्रवाहण राजाका प्रश्न है. जब इस प्रश्नका उत्तर श्वेत-केतु नहीं जानताभया तब तिसके पिताके प्रति राजा बोला कि हे गौतम यह द्युलोक अग्नि है इसमें श्रद्धारूप जलकी आहुति है औ यह पर्जन्य अग्नि है इसमें सोमरूप जलकी आहुति है इस लोकमें अग्निहोत्रके विषै श्रद्धा करके दध्यादिरूप जल होमे हुये यजमा-नके संलग्न होके स्वर्गलोकको प्राप्त होके सोमरूप दिव्य देह करके

स्थित होते हैं पीछे कर्मके अंतमें पर्जन्यमें होमेंजाते हैं पीछे वृष्टिरूप जल पृथिवीमें होमेजाते हैं पीछे अन्नरूप जल पुरुषमें होमेजाते हैं पीछे रेतरूप जल योषित्में होमे हुये पुरुषशब्दवाच्य हो जाते हैं यह निरूपण है ॥ १ ॥

उक्तप्रश्ननिरूपणसे यह सिद्ध भया कि केवल जलकरके सहित जीवात्मा देहान्तरमें जाता है सर्वभूत सूक्ष्म करके सहित नहीं जाता इस शंकाको दूर करते हैं ॥

आत्मकत्वात्तु भूयस्त्वात् ॥ २ ॥

इस सूत्रके–आत्मकत्वात् १ तु २ भूयस्त्वात् ३ यह तीन पद हैं ॥ 'तु' शब्द शंकानिवृत्तिके अर्थ है त्रिवृत्करण श्रुतिसे तीन प्रकारके जल जानेजाते हैं जो तीन प्रकारके जल देहके आरंभक हैं तो तेज पृथिवी यह दो भूत सूक्ष्म और भी मानने चाहिये, काहेतें ? यह देह तीन भूतका है । प्रश्न–जो देह तीन भूतका है तो आप पंचमी आहुतिमें पुरुषशब्दवाच्य होतेहैं यह कथन क्यों है ? उत्तर–इस देहमें जल बहुत है तिसकी अपेक्षासे यह कथन है ॥ २ ॥

प्राणगतेश्च ॥ ३ ॥

इस सूत्रके–प्राणगतेः १ च २ यह दो पद हैं ॥ वेदमें श्रवण होता है जब जीवात्मा पूर्व देहको त्यागके उत्तर देहके प्रति गमन करता है तब जीवके पीछे मुख्यप्राण भी गमन करता है औ मुख्यप्राणके पीछे अन्य प्राण गमन करते हैं औ आश्रयके विना प्राणका गमन होता नहीं सो प्राणगमनके आश्रय जल तेज पृथिवी यह तीन भूत हैं ॥ ३ ॥

अग्न्यादिगतिश्रुतेरिति चेन्न भाक्तत्वात् ॥ ४ ॥

इस सूत्रके–अग्न्यादिगतिश्रुतेः १ इति २ चेत् ३ न ४ भाक्तत्वात् ५ यह पांच पद हैं ॥ अन्यदेहके प्रति जीवके साथ प्राण नहीं जाते हैं,

काहेतें ? मरणकालमें वागादि सर्व प्राण अपने अग्न्यादि देवताको प्राप्त होते हैं यह अग्न्यादिकोंमें गतिकी श्रुति है (इति चेन्न) ऐसे न कहो काहेतें अग्न्यादिकोंमें गतिकी श्रुति गौणतिहै मुख्य नहीं॥४॥

प्रथमेऽश्रवणादिति चेन्न ता एव ह्युपपत्तेः ॥ ५ ॥

इस सूत्रके–प्रथमे १ अश्रवणात् २ इति ३ चेत् ४ न ५ ताः ६एव ७ हि ८ उपपत्तेः ९ यह नव पद हैं॥पंचमी आहुतिके विषै जल है सो पुरुषशब्द वाच्य नहीं होसकता,काहेतें?द्युलोकरूप प्रथम अग्निके विषै श्रद्धाहोमका श्रवणहै जलहोमका श्रवण नहीं(इति चेन्न)ऐसे न कहो काहेतें प्रथम अग्निमें श्रद्धाशब्दसे जलहोमका विधान है अन्यथा प्रथमअग्निमें श्रद्धाहोमका विधान होनेतें औ उत्तर चार अग्निमें जल होमका विधान होनेतें वाक्यभेद होके एकवाक्यता न रहेगी ५

अश्रुतत्वादिति चेन्नेष्टादिकारिणां प्रतीतेः ॥ ६ ॥

इस सूत्रके–अश्रुतत्वात् १ इति २ चेत ३ न ४ इष्टादिकारिणाम् ५ प्रतीतेः६यह छह पद हैं ॥ यद्यपि पूर्वोक्त प्रश्न निरूपणसे यह निश्चय भया कि श्रद्धादि क्रम करके पंचमी आहुतिमें जल पुरुषाकारको प्राप्त होता है तथापि श्रद्धादिसहित जीव नहीं जाता, काहेतें? श्रद्धादिकों करके सहित जीव जाता है ऐसा कहीं वेदमें श्रवण नहीं (इति चेन्न) ऐसे न कहो,काहेतें?जैसे यज्ञ वापी कूपादि करनेवाले पुरुष धूमादि पितृयाण मार्ग करके चन्द्रलोकको जाते हैं तैसे श्रद्धादि होम करनेवाले भी जाते हैं यह वार्त्ता शास्त्रप्रसिद्ध है ॥ ६ ॥

इष्टादि कर्मको करनेवाले चन्द्रलोकमें जाते हैं यह प्रतिज्ञा ठीक नहीं, काहेतें श्रुति कहतीहै? कि यह चन्द्रमा देवोंका अन्न है तिसको देवता भक्षण करते हैं जो इष्टादि कर्म करनेवाले चन्द्रलोकमें जावेंगे तो अन्न होजावैंगे जब तिनको देवता भक्षण करेंगे तब भोग्यही होजावें गे तो भोक्ता कहां से होवेंगे? इस शंकाका उत्तर कहतेहैं ॥

भाक्तं वाऽनात्मवित्त्वात्तथा हि दर्शयति ॥ ७ ॥

इस सूत्रके--भाक्तम् १ वा २ अनात्मवित्त्वात ३ तथा ४ हि ५ दर्शयाति ६ यह छह पद हैं ॥ चन्द्रलोकमें जानेवाले गौण अन्न होते हैं मुख्य अन्न नहीं होते औ जो मुख्य अन्न होवें तो "स्वर्गकामो यजेत" इत्यादि श्रुतिका उपरोध होवै औ देवता अमृतको देखके ही तृप्त रहते हैं न खाते हैं न पीते हैं औ वेदमें यह भी कहा है कि इष्टादि कर्म करनेवाले अनात्मज्ञानी पशुकी न्याईं देवोंके उपकारक हैं भक्ष्य नहीं ॥ ७ ॥

कृतात्ययेऽनुशयवान्दृष्टस्मृतिभ्यां यथेतमनेवं च ॥ ८ ॥

इस सूत्रके--कृतात्यये १ अनुशयवान् २ दृष्टस्मृतिभ्याम् ३ यथा ४ इतम् अनेवम् ६ च ७ यह सात पद हैं ॥ इष्टादि कर्म करनेवाले धूमादि मार्गकरके चन्द्रलोकमें जायके विभूतिको भोगके पीछे कर्मके अंतमें इस लोकमें आते हैं तहां संशय है कि सर्व कर्मफलको भोगके आते हैं वा कुछ कर्म शेष लेके आते हैं तहां कहते हैं कि जैसे तैल निकाले पीछे भी तैलका भांडा कुछ चिकना रहताहै तैसे कर्मके अंतमें जब पीछे आते हैं तब कुछ कर्म शेप रहता है,काहेतें? इस लोकमें ब्राह्मणसे आदिलेके चांडाल पर्यंत योनिके विषे उत्पन्न होते औ उच्च नीच भोगको भोगतेहुये पुरुष दिखते हैं औ स्मृति भी कहती है कि पुरुष मरके परलोकमें कर्म फलको भोगके कुछ कर्मशेषको लेके इस लोकमें आते हैं औ सोपानारोहण अवरोहणकी न्याईं जिस क्रम करके चन्द्रलोकमें जाते हैं तिससे विपरीत क्रम करके पीछे उतरते हैं ॥ ८ ॥

चरणादिति चेन्नोपलक्षणार्थेति कार्ष्णाजिनिः ॥ ९ ॥

इस सूत्रके--चरणात् १ इति २ चेत् ३ न ४ उपलक्षणार्था५इति६

कार्ष्णाजिनिः ७ यह सात पद हैं ॥ श्रुति कहती है कि रमणीय चरण अर्थात् शुद्ध आचारवाले ब्राह्मणादि योनिको प्राप्त होते हैं औ कुपूयचरण अर्थात् अशुद्ध आचारवाले श्वादियोनिको प्राप्त होतेहैं. चरण चारित्र आचारशील इन शब्दोंका एकही अर्थ है. जो अच्छे चरणसे ब्राह्मणादि योनिको प्राप्त होते हैं औ बुरे चरणसे श्वादि योनि को प्राप्त होते हैं तो कर्म शेष मानना निरर्थक है(इति चेन्न) ऐसे न कहो काहेतें श्रुतिमें चरण शब्द कर्मशेषकाही उपलक्षण है ऐसे कार्ष्णाजिनि आचार्य मानता है ॥ ९ ॥

आनर्थक्यमिति चेन्न तदपेक्षत्वात ॥ १० ॥

इस सूत्रके—आनर्थक्यम् १ इति२ चेत्३न४ तदपेक्षत्वात्५ यह पांच पद हैं ॥ श्रुतिविहित शीलको त्यागके चरण शब्दकी कर्मशेषमें लक्षणा माननी ठीक नहीं औ जो लक्षणा मानोगे तो श्रुतिप्रतिपादित शील अनर्थक होवैगा (इति चेन्न) ऐसे न कहो,काहेतैं? चरणकी अपेक्षासेही इष्टादि कर्म होता है औ आचारहीनको कर्मका अधिकार नहीं है इस अर्थको स्मृति भी कहती है "आचारहीनं न पुनंति वेदाः" आचारहीन पुरुषको वेद पवित्र नहीं करते इत्यर्थः ॥ १०॥

सुकृतदुष्कृते एवेति तु बादरिः ॥ ११ ॥

इस सूत्रके—सुकृतदुष्कृते १एव २ इति ३ तु ४ बादरिः ५ यह पांच पद हैं ॥ चरणशब्दसे सुकृत दुष्कृतका ग्रहण है ऐसे बादरि आचार्य मानता है जो वेदविहित इष्टादि कर्मको करताहै तिसको लोक कहते हैं कि यह महात्मा पुण्यकर्मको करता है औ तिससे विपरीत कर्म करनेवालेको कहतेहैं कि यह निषिद्धकर्मको करता है ॥ ११ ॥

अनिष्टादिकारिणामपि च श्रुतम् ॥ १२ ॥

इस सूत्रके—अनिष्टादिकारिणाम्१अपि२ च ३श्रुतम् ४ यह चार पद हैं ॥ जो यह कहा कि इष्टादि कर्म करनेवाले चंद्रलोकमें जाते

हैं तहां पूर्वपक्षी कहता है कि अनिष्टादि कर्म करनेवाले चंद्रलोकमें जाते हैं ऐसा भी श्रवण होता है कौषीतकी शाखामें कहा है कि "ये वै केचास्माल्लोकात्प्रयन्ति चन्द्रमसमेव ते सर्वे गच्छन्ति" जो कोई इस लोकसे जाते हैं सो सर्वही चन्द्रमाको प्राप्त होते हैं इत्यर्थः १२

संयमने त्वनुभूयेतरेषामारोहावरोहौ तद्ग-तिदर्शनात ॥ १३ ॥

इस सूत्रके–संयमने १ तु२ अनुभूय ३ इतरेषाम् ४ आरोहावरोहौ ५ तद्गतिदर्शनात् ६ यह छह पद हैं॥ 'तु' शब्द पूर्वपक्षकी निवृत्तिक अर्थ है आनिष्ट कर्म करनेवाले चन्द्रलोकमें भोग नहीं भोग सकते इसीसे चन्द्रलोकमें नहीं जाते किंतु यमलोकमें जायके अपने अनिष्ट कर्मका फलभोगके पीछे इसी लोकमें आते हैं अपने आनिष्ट कर्मका फल भोगनेके वास्तेही तिनका यमलोकमें जाना आनाहै. ऐसेही नाचिकेताके प्राति यमराज कहते भये कि हे नाचिकेतः जो मूर्ख परलोकके उपायको नहीं जानता है औ वित्तके मोह करके मूढ हुआ प्रमादको करता है और यही स्त्री पुत्रादिलोक है परलोक नहीं है ऐसे मानता है सो वारंवार मेरे वश होता है इति ॥ १३ ॥

स्मरन्ति च ॥ १४ ॥

इस सूत्रके–स्मरन्ति १ च २ यह दो पद हैं ॥ मनुव्यासादि शिष्ट पुरुष हैं सो यमपुरके विषै निन्दित कर्म करनेवाले पुरुषोंके कर्मफलका स्मरण करते हैं ॥ १४ ॥

अपि च सप्त ॥ १५ ॥

इस सूत्रके–अपि १ च२सप्त ३ यह तीन पद हैं ॥ अपि (निश्चय करके) पौराणिक कहते हैं कि पापकारी पुरुषोंके वास्ते रौरवादि सात नरक हैं तिनके विषै पापकारी पुरुष जातेहैं चन्द्रलोकको नहीं जाते ॥ १५ ॥

जो यह कहा कि यमराजकी यातनाको पापकारी पुरुषभोगतेहैं सो कहना विरुद्ध है, काहेतें? रौरवादि नरकके विषे चित्रगुप्तादि नाना अधिष्ठाताका स्मरण होता है इस शंकाको दूर करते हैं॥

तत्रापि च तद्व्यापारादविरोधः॥ १६॥

इस सूत्रके-तत्र १ अपि च ३ तद्व्यापारात् ४ अविरोधः ५ यह पांच पद हैं॥ तिन रौरवादि सात नरकके विषें यमराज अधिष्ठाताका व्यापार होनेतें कोई विरोध नहीं यमराज करके प्रेरित चित्रगुप्तादि अधिष्ठाताका स्मरण होता है॥ १६॥

विद्याकर्मणोरिति तु प्रकृतत्वात॥ १७॥

इस सूत्रके-विद्याकर्मणोः १ इति २ तु ३ प्रकृतत्वात् ४ यह चार पद हैं॥ जो पंचाग्निविद्यावाले चन्द्रलोकमें जाते हैं तो तिन करके जब चन्द्रलोक पूरित होजायगा तब चंन्द्रलोकमें अवकाश न रहेगा तहां कहते हैं कि प्रकरणमें विद्या और इष्टादि कर्म यह दो देवयान पितृयानके साधन कहे हैं औ जिनके यह दोनों नहीं हैं तिनका 'जायस्व, म्रियस्व' यह तृतीय मार्ग कहा है इसीसे चन्द्रलोक पूरित नहीं होता॥ १७॥

जो यह कहा कि देहलाभके वास्ते सर्वही चन्द्रलोकमें जाने योग्यहैं,काहेतें? पंचमी आहुतिमें जल पुरुषाकार होता है यह पंचत्व संख्याका नियम है इस आक्षेपका समाधान कहते हैं॥

न तृतीये तथोपलब्धेः॥ १८॥

इस सूत्रके-न १ तृतीये २ तथा ३ उपलब्धेः ४ यह चार पद हैं॥ तृतीयस्थानमें देहलाभके वास्ते आहुतिकी संख्याके नियम नहीं मानना चाहिये कहेतें आहुति संख्याके नियमके विनाही उक्त प्रकार करके 'जायस्व म्रियस्व' इस तृतीय स्थानकी प्राप्तिका ज्ञान

है औ पंचमी आहुतिमें जल पुरुषाकार होता है यह मनुष्य शरीरके वास्ते संख्याका नियम है कीटादि शरीरके वास्ते नहीं ॥ १८ ॥

स्मर्यतेऽपि च लोके ॥ १९ ॥

इस सूत्रके–स्मर्यते १ अपि २ च३ लोके ४ यह चार पद हैं॥ पंचमी आहुतिमें जल पुरुषाकार होता है यह नियम है औ यह नियम नहीं है कि पंचमी आहुतिके विना जल पुरुषाकार न होवै, काहेतें? लोकमें स्मरण होता है कि द्रोण धृष्टद्युम्न सीता द्रौपदी इत्यादि सर्व योनिके विनाही उत्पन्न भये हैं ॥ १९ ॥

दर्शनाच्च ॥ २० ॥

इस सूत्रके–दर्शनात् १च२ यह दो पद हैं जरायुज अण्डज स्वेदज उद्भिज्ज यह चार प्रकारके भूत हैं तिनमें मैथुन धर्मके विनाही स्वेदज उद्भिज्जकी उत्पत्तिका दर्शन होनेतें आहुति संख्याका अनादर है २०

इन भूतोंके अण्डज जीवज उद्भिज्ज यह तीन बीज होनेतें तीन प्रकारकेही भूत ह चार प्रकारके भूतोंकी प्रतिज्ञा क्यों करते हो? इस शंकाका समाधान कहते हैं ॥ २० ॥

तृतीयशब्दावरोधः संशोकजस्य ॥ २१ ॥

इस सूत्रके–तृतीयशब्दावरोधः १ संशोकजस्य२ यह दो पद हैं॥ अण्डज जरायुज उद्भिज्ज यहां तृतीय उद्भिज्ज शब्दकरके संशोकजका ग्रहण है, काहेतें? जैसे उद्भिज्ज भूमिको भेदन करके निकलते हैं तैसे संशोकज जलको भेदन करके निकलतेहैं इस रीतिसे तुल्यता है संशोकजनाम स्वेदजका है ॥ २१ ॥

साभाव्यापत्तिरुपपत्तेः ॥ २२ ॥

इस सूत्रके–साभाव्यापत्तिः १ उपपत्तेः२ यह दो पद हैं॥ इष्टादि कर्म करनेवालेआकाशादिद्वारा चन्द्रलोकसे पीछे आतेहैं इस अर्थको

यह श्रुति कहती है–"अथैतमेवाध्वानं पुनर्निवर्तन्ते यथेतमाकाश माकाशाद्वायुं वायुर्भूत्वा धूमो भवति धूमो भूत्वाऽभ्रं भवत्यभ्रं भूत्वा मेघो भवति मेघो भूत्वा प्रवर्षति" इति। तहां संशयहै कि जब चन्द्रलोकसे पीछे आते हैं तब आकाशादिकोंका स्वरूपही होजाते हैं वा आकाशादिकोंके सदृश होजाते हैं इति। तहां कहते हैं कि आकाशादिकोंके सदृश होजाते हैंऔ जो आकाशादिकोंका स्वरूप होवै तो आकाशको विभु होनेतैं वाय्वादिक्रम करके आनाही न बनेगा औ श्रुतिका अर्थ यह है कि जिस क्रमसे जातेहैं तिससे विपरीत क्रम करके आते हैं कर्मके अंतमें द्रवीभूत देहवाले होतेहैं पीछे आकाशको प्राप्त होके आकाशकी सदृश होते हैं पीछे पिण्डीकृत अतिसूक्ष्म लिङ्गदेहसहित वायु करके जहांतहां भ्रमते हुये वायुके समान होतेहैं पीछे धूमको प्राप्त होके धूमके समान होते हैं पीछे अभ्रको प्राप्त होके अभ्रके समान होते हैं जो जलको धारे सो अभ्र कहाता है औ जो जलको वर्षे सो मेघ कहाता है अभ्रसे मेघको प्राप्त होके मेघके समान होतेहैं पीछे वृष्टिद्वारा पृथ्वीमें प्रवेश करके व्रीहि यवादिरूप होते हैं इति ॥ २२ ॥

नातिचिरेण विशेषात् ॥ २३ ॥

इस सूत्रके–न १ अतिचिरेण २ विशेषात् ३ यह तीन पद हैं ॥ चन्द्रलोकसे पीछे आनेवाले व्रीहि यवादि प्राप्तिसे पूर्व बहुत बहुत काल आकाशादिकोंके सदृश रहके उत्तर उत्तरके सदृश होते हैं वा अल्प अल्प काल रहके होते हैं तहां कहते हैं कि अल्प अल्प काल आकाशादिकोंके सदृश रहके उत्तर उत्तरके सदृश होते हैं, काहेतें? अगाडी वाक्य विशेषमें कहा है कि व्रीहि यवादिकोंसे दुःख करके निकलना होता है इससे यही निश्चय भया कि आकाशादिकोंसे अल्पकालमेंही सुखपूर्वक निकलते हैं ॥ २३ ॥

अन्याधिष्ठिते पूर्ववदभिलापात् ॥ २४ ॥

इस सूत्रके–अन्याधिष्ठिते १ पूर्ववत् २ अभिलापात् ३ यह तीन पद हैं ॥ चन्द्रलोकसे आनेवाले वृष्टिद्वारा भूमिमें प्रवेश करके व्रीहियवादिभावको प्राप्त होते हैं तहां संशय है कि स्थावर जातिके सुखदुःखको भोगते हैं वा जीवान्तरके अधीन स्थावर शरीरमें संबंध मात्रको प्राप्त होते हैं ? तहां कहते हैं कि जैसे वायु धूमादिकमें संबंध मात्रको प्राप्त होते हैं तैसे जीवान्तरके अधीन व्रीहियवादिकोंके विषे संबंध मात्रको प्राप्त होते हैं सुखदुःखको नहीं भोगते यह शास्त्रका कथन है ॥ २४ ॥

अशुद्धमिति चेन्न शब्दात् ॥ २५ ॥

इस सूत्रके–अशुद्धम् १ इति २ चेत् ३ न ४ शब्दात् ५ यह पांच पद हैं ॥ हिंसाके योगसे इष्टादि कर्म अशुद्ध हैं औ अशुद्ध कर्मका फल व्रीहियवादि जन्मभी होसकता है (इति चेन्न) ऐसे न कहो, काहेतैं? धर्म अधर्म ज्ञानका हेतु शास्त्र है "अग्नीषोमीयं पशुमालभेत" यह श्रुति यज्ञके विषे हिंसाका विधान करती है इसीसे इष्टादि कर्म अशुद्ध नहीं किंतु शुद्ध हैं ॥ २५ ॥

रेतःसिग्योगोऽथ ॥ २६ ॥

इस सूत्रके–रेतःसिग्योगः १ अथ २ यह दो पद हैं ॥ व्रीहियवादिभावके अनंतर वीर्यसेचनका विधान है सो वीर्यसेचन यौवनादि अवस्थामें होताहै औ व्रीहियवादि अवस्थामें वीर्यसेचनका अयोग होनेतैं व्रीहियवादिकोंके साथ संबंध मात्र है ॥ २६ ॥

योनेः शरीरम् ॥ २७ ॥

इस सूत्रके–योनेः १ शरीरम् २ यह दो पद हैं ॥ योनिमें वीर्यसेचनके अनंतर कर्मफल भोगके वास्ते शरीर उत्पन्न होताहै ॥ २७ ॥

इति श्रीमन्मौक्तिकनाथयोगिविरचितायां ब्रह्मसूत्रसारार्थप्रदीपिकायां तृतीयाध्यायस्य प्रथमः पादः ॥ १ ॥

तृतीयाध्याये द्वितीयः पादः ।

पूर्व पादके विषे पंचाग्निविद्याको कहके जीवकी संसार गतिका भेद कहा अब तिस जीवकी अवस्थाका भेद कहते हैं ॥

संध्ये सृष्टिराह हि ॥ १ ॥

इस सूत्रके संध्ये १ सृष्टिः २ आह ३ हि ४ यह चार पद हैं ॥ संध्य नाम स्वप्नका है स्वप्नकी सृष्टि जागरितकी न्याईं व्यावहारिक सत्तावाली है वा शुक्ति रजतकी न्याईं प्रातिभासिक सत्तावाली है तहां पूर्वपक्षी कहताहै कि स्वप्नकी सृष्टि व्यावहारिक सत्तावाली है, काहेतैं? श्रुति कहती है कि, "अथ रथान् रथयोगान् पथः सृजते" इति। अस्या अर्थः--जागरितके अनंतर स्वप्नस्थानमें रथ औ रथके योग्य घोड़ा औ चलनेके योग्य मार्ग इन सर्वको आपही रचता है इति ॥ १ ॥

निर्मातारं चैके पुत्रादयश्च ॥ २ ॥

इस सूत्रके–निर्मातारम् १ च२एके ३ पुत्रादयः ४ च ५ यह पांच पदहैं ॥ कोईशाखावाले इस आत्माको स्वप्नके विषै सर्व कामको रचनेवाला मानते हैं "य एष सुप्तेषु जागर्ति कामं कामंपुरुषोनिर्मिमाणः" अस्या अर्थः-जो यह पुरुष है सो जब स्वप्नके विषै सर्व इंद्रिय व्यापारहीन होवैं तब काम कामको रचताहुआ जागताहै, इति । इहां काम शब्दसे पुत्रादि विषयका ग्रहण होनेतैं स्वप्नकी सृष्टि सत्य है ॥ २ ॥

मायामात्रं तु कार्त्स्न्येनानभिव्यक्तस्वरूपत्वात् ॥ ३ ॥

इस सूत्रके–मायामात्रम् १ तु २ कार्त्स्न्येन ३ अनभिव्यक्तस्वरूपत्वात् ४ यह चार पद हैं ॥ 'तु' शब्द पूर्वपक्षकी निवृत्तिके अर्थ है स्वप्नकी सृष्टि सत्य नहीं किंतु मायामयी है, काहेतैं स्वप्नके देश काल निमित्त संपात्ति इनमें कोई भी अपने प्रगट स्वरूपसे सत्य नहीं "न तत्र रथा न रथयोगा न पंथानो भवन्ति" यह श्रुति कहती है कि

स्वप्नके विषे न रथ हैं न रथके योग्य घोडा हैं न चलनेके योग्य मार्ग हैं इति ॥ ३ ॥

सूचकश्च हि श्रुतेराचक्षते च तद्विदः ॥ ४ ॥

इस सूत्रके–सूचकः १च २ हि ३ श्रुतेः आचक्षते ५ च६ तद्विदः ७ यह सात पद हैं ॥ भविष्यत् साधु असाधु वस्तुका सूचक स्वप्न है ऐसेही श्रुति कहती है "यदा कर्मसु काम्येषु स्त्रियं स्वप्नेषु पश्यति। समृद्धिं तत्र जानीयात्तस्मिन्स्वप्ननिदर्शने" इति। "पुरुषं कृष्णं कृष्णदंतं पश्यति स एनं हन्ति" इति च ॥ पुरुष है सो जिस स्वप्नमें काम्यकर्मके विषे स्त्रीको देखे तिस स्वप्नमें समृद्धि जाननी इति प्रथमश्रुत्यर्थः । औ जो कृष्णदांतवाले कृष्ण पुरुषको देखे तो देखनेवालेको हनन करे इति द्वितीयश्रुत्यर्थः । औ स्वप्नाध्यायको जाननेवालेभी कहते हैं कि स्वप्नमें कुंजरके ऊपर चढना शुभकारी है औ खरके ऊपर चढना अशुभकारी है इति । यद्यपि स्वप्नके स्त्रीदर्शनादिसे सूचित वस्तु सत्य है तथापि स्वप्नके स्त्रीदर्शनादिक सत्य नहीं ॥

पराभिध्यानात्तु तिरोहितं ततो ह्यस्य बन्धविपर्ययौ ॥ ५ ॥

इस सूत्रके–पराभिध्यानात् १ तु २ तिरोहितम् ३ ततः ४ हि५ अस्य ६ बंधविपर्ययौ ७ यह सात पद हैं ॥ जो जीव ईश्वरका अंशहै तो ईश्वरके समान धर्मवाला होनेतें जैसे ईश्वरकी सृष्टि सत्य है तैसे स्वप्नके विषे जीवकी सृष्टिभी सत्य होनी चाहिये यह कहनाभी ठीक नहीं?काहेतें?अविद्याकेव्यवधानसे जीवके सत्यसंकल्पत्वादिधर्म तिरोहित होरहे हैं जब कोई जीव ईश्वरका ध्यान करे तब ईश्वरकी कृपासे किसी जीवके सत्यसंकल्पत्वादि धर्म प्रकट होते हैं औ ईश्वरके स्वरूपके अज्ञानसे इसी जीवके बन्ध है औ तिसके ज्ञानसे मोक्ष है ॥ ५ ॥

देहयोगाद्वा सोऽपि ॥ ६ ॥

इस सूत्रके–देहयोगात् १ वा २ सः३ अपि ४ यह चार पद हैं ॥

जो जीव ईश्वरका अंश है तो तिसके ज्ञान ऐश्वर्यादि धर्म तिरस्कृत न होने चाहियें यह कहना ठीक है परंतु जीवके ज्ञानऐश्वर्यादि धर्मका तिरोभाव देह इंद्रिय मन बुद्धि विषयादिकोंके योगसे हैं इसीसे जीवरचित स्वप्नकी सृष्टि सत्य नहीं ॥ ६ ॥

तदभावो नाडीषु तच्छ्रुतेरात्मनि च ॥ ७ ॥

इस सूत्रके--तदभावः१नाडीषु २ तच्छ्रुतेः ३ आत्मनि४च५यह पांच पद हैं ॥ पूर्वोक्त रीतिसे स्वप्नावस्थाकी परीक्षा करी अब सुषुप्ति अवस्थाकी परीक्षा करते हैं नाडी प्राण हृदय ब्रह्म यह जीवके सुषुप्ति स्थान हैं ऐसे श्रुति कहती है तहां संशय है कि यह स्थान परस्परमें भिन्न हैं वा एकही है तहां कहते हैं कि प्राण औ हृदय यह ब्रह्मके नाम हैं औ नाडीद्वारा एक ब्रह्मकोही स्वप्नदर्शनाऽभावरूप सुषुप्ति स्थानका श्रवण होनेतें एक ब्रह्मही जीवका सुषुप्ति स्थान है ॥ ७ ॥

अतः प्रबोधोऽस्मात् ॥ ८ ॥

इस सूत्रके--अतः १ प्रबोधः२ अस्मात्३ यह तीन पद हैं॥ जिस हेतुसे आत्माही सुषुप्तिस्थान है तिस हेतुसे आत्मासेही प्रबोध होता है जैसे अग्निके क्षुद्र विस्फुलिङ्ग अग्निसे निकलते हैं तैसे सर्व प्राण आत्मासे ही निकलते हैं ॥ ८ ॥

स एव तु कर्मानुस्मृतिशब्दविधिभ्यः ॥ ९ ॥

इस सूत्रके--सः १ एव २ तु३ कर्मानुस्मृतिशब्दविधिभ्यः ४ यह चार पद हैं॥जो सोता है सो ही जागता है वा अन्य जागताहै ? तहां कहते हैं कि जो सोता है सोही जागताहै काहेतें?जो पहिलेदिन कर्मका अनुष्ठान कर्त्ता है सो ही दूसरे दिन शेष रहे कर्मका अनुष्ठान कर्त्ता है औ उत्थित पुरुषको यह स्मरण होताहै कि जो सोया था सोई मैं हूं औ दिनादिनके प्रति यह प्रजा ब्रह्मलोकको प्राप्त होवै है इत्यादि शब्द भी तिसका उत्थान कहतेहैं औ कर्म विद्या विधिसेभी तिसीका उत्थान जाना जाता है अन्यथा विधि अनर्थक होवेगा

मुग्धेऽर्द्धसम्पत्तिः परिशेषात् १० ॥

इस सूत्रके--मुग्धे १ अर्द्धसंपत्तिः २ परिशेषात ३ यह तीन पदहैं मुग्ध नाम मूर्च्छिका है तिसकी मूर्च्छावस्था जाग्रत् स्वप्न सुषुप्ति मरण इन सर्वसे विलक्षण होनेतें परिशेषसे अर्द्ध सम्पत्ति कहातीहै सुषुप्तिके सर्व धर्मोंकरके सम्पन्न न होनेतें सुषुप्त नहीं कहाता औ मरणके सर्व धर्मोंकरके सम्पन्न न होनेतैं मृत नहीं कहाता किंतु सुषुप्तिके औ मरणके अर्द्ध अर्द्ध धर्म करके सम्पन्न होनेतें अर्द्ध-सम्पत्तिवाला है ॥ १० ॥

न स्थानतोऽपि परस्योभयलिङ्गं सर्वत्र हि ॥ ११ ॥

इस सूत्रके--न १ स्थानतः २ अपि ३ परस्य ४ उभयलिङ्गं ५ सर्वत्र ६ हि ७ यह सात पद हैं ॥ सुषुप्तिके विषे जीव जिस ब्रह्मको प्राप्त होता है तिस ब्रह्मके स्वरूपका निरूपण करते हैं "सर्वकर्मा सर्व कामः" इत्यादि श्रुति ब्रह्मको सर्व कर्मवाला औ सर्व कामवाला कहती है सो सविशेष ब्रह्मका लिङ्ग है औ "अस्थूलमनणु" इत्यादि श्रुति ब्रह्ममें स्थूलताका औ अणुताका अभाव कहती है सो निर्विशेष ब्र-ह्मका लिङ्ग है तहां संशयहै कि सविशेष निर्विशेष दोनोंहीं प्रकारका ब्रह्म प्राप्त होने योग्य है वा एक प्रकारका तहां कहते हैं कि परब्रह्म निर्विशेषही है सोई प्राप्त होने योग्य है औ स्थान जो पृथिव्यादि उपाधि तिसके योगसे भी निर्विशेषही रहता है, काहेतें ? अशब्दम् इत्यादि श्रुति सर्वत्र निर्विशेष ब्रह्मकोही प्रतिपादन करती हैं ॥ ११ ॥

न भेदादिति चेन्न प्रत्येकमतद्वचनात् ॥ १२ ॥

इस सूत्रके--न १ भेदात् २ इति ३ चेत् ४ न ५ प्रत्येकम् ६ अत-द्वचनात् ७ यह सात पद हैं ॥ जो यह कहा कि ब्रह्म सविशेष नहींहै किंतु निर्विशेष है सो कहना ठीक नहीं, काहेतें ? कोई श्रुति ब्रह्मको

चतुष्पाद कहती है औ कोई षोडशकल कहती है ऐसे श्रुतिभेदसे ब्रह्मका भी सविशेष निर्विशेष भेद प्रतीत होता है (इति चेन्न) ऐसे न कहो काहेतें जुदे जुदे उपाधिभेदको लेके भी शास्त्र अभेदही कहता है औ जो श्रुति भेदको कहती है सो उपासनाके वास्ते कहती है तिसका तात्पर्य अभेदमेंही है ॥ १२ ॥

अपि चैवमेके ॥ १३ ॥

इस सूत्रके अपि १ च २ एवम् ३ एके ४ यह चार पद हैं ॥ अपि (निश्चय करके) कोईशाखावाले भेददर्शनकी निन्दापूर्वक अभेद दर्शनको कहते हैं "मनसैवेदमाप्तव्यं नेह नानास्ति किञ्चन ॥ मृत्योः स मृत्युमाप्नोति य इह नानेव पश्यति"इति। अस्या अर्थः- यह ब्रह्म मन करकेही प्राप्त होने योग्य है औ इसके विषे नाना वस्तु कोई नहीं है औ जो कोई इसके विषै नानाकी न्याई देखता है सो मृत्युके सकाशसे मृत्युकोही प्राप्त होताहै इति ॥ १३ ॥

श्रुतिसे तो साकार निराकार दो प्रकारका ब्रह्म प्रतीत होताहै तुम निराकारही कैसे कहतेहो इस शंकाका उत्तर कहते हैं ॥

अरूपवदेव हि तत्प्रधानत्वात् ॥ १४ ॥

इस सूत्रके--अरूपवत् १ एव २ हि ३ तत्प्रधानत्वात् ४ यह चार पद हैं ॥ रूपादि आकार करके रहितही ब्रह्म है,काहेतें ? "अस्थूलमनणु" इत्यादि श्रुति निराकारके प्रतिपादनमेंही प्रधान हैं१४

जो निराकार ब्रह्म है तो साकार ब्रह्मप्रतिपादक श्रुतिकी क्या गति है इस शंकाका समाधान कहते हैं ॥

प्रकाशवच्चावैयर्थ्यम् ॥ १५ ॥

इस सूत्रके-प्रकाशवत् १ च २ अवैयर्थ्यम् ३ यह तीन पद हैं॥ जैसे सूर्य चन्द्रमाका तेज आकाशमें स्थित है परंतु अंगुल्यादि

उपाधिके संबंधसे ऋजु वक्र भान होताहै तैसे ब्रह्म भी पृथिव्यादि उपाधिके संबंधसे साकार भान होताहै उपासनाके वास्ते श्रुति साकार ब्रह्मको कहती है इसीसे व्यर्थ नहीं ॥ १५ ॥

आह च तन्मात्रम् ॥ १६ ॥

इस सूत्रके–आह १ च २ तन्मात्रम् ३ यह तीन पद हैं ॥ जैसे लवणका पिण्ड बाहिर भीतरसे एक रस है तैसे रूपान्तर करके रहित निर्विशेष चैतन्यमात्र ब्रह्म है ऐसे श्रुति कहती है ॥ १६ ॥

दर्शयति चाथो अपि स्मर्यते ॥ १७ ॥

इस सूत्रके–दर्शयति १ च २ अथो ३ अपि ४ स्मर्यते ५ यह पांच पद हैं ॥ "नेतिनेति" इत्यादि श्रुति पररूपका निषेध करके निर्विशेष ब्रह्मको कहतीहै औ "ज्ञेयं यत्तत्प्रवक्ष्यामि यज्ज्ञात्वामृतम श्नुते । अनादिमत्परं ब्रह्म न सत्तन्नासदुच्यते" यह गीतास्मृति भी निर्विशेष ब्रह्म को कहती है । अस्याअर्थः–हे अर्जुन जो जानने योग्य वस्तु है सो मैं तेरेकों कहूंगा जिसको जानके पुरुष मोक्षको प्राप्त होता है औ पर ब्रह्म है सो अनादि है न सत् कहाता है न असत् कहाता है. इति ॥ १७ ॥

अत एव चोपमा सूर्यकादिवत् ॥ १८ ॥

इस सूत्रके–अतः १ एव २ च ३ उपमा ४ सूर्यकादिवत् ५ यह पांच पद हैं ॥ जिस हेतुसे ब्रह्म निर्विशेष है तिसी हेतुसे ब्रह्मको जल सूर्यादिकोंकी उपमा है जैसे अनेक जलपात्रोंके विषे अनेक सूर्य भासते हैं तैसे अनेक शरीरोंके विषे अनेकही आत्मा भासते हैं १८

अम्बुवदग्रहणात्तु न तथात्वम् ॥१९॥

इस सूत्रके–अंबुवत् १ अग्रहणात् २ तु ३ न ४ तथात्वम् ५ यह पांच पदहैं॥ जल सूर्यादिकोंकी उपमाके योग्य ब्रह्म नहींहै, काहेतें? सूर्य मूर्तिमान् है तिसकी उपाधि जल दूरदेशके विषे ग्रहीत होता है तिसके

विषे सूर्यका प्रतिबिम्ब होना युक्त है औ मूर्तिरहित ब्रह्म सर्वगत है तिसकी उपाधिको दूरदेशमें न होनेतें तिसके विषै ब्रह्मका प्रतिबिम्ब नहीं हो सकता ॥ १९ ॥

वृद्धिह्रासभाक्त्वमन्तर्भावादुभयसामञ्जस्यादेवम् ॥ २० ॥

इस सूत्रके–वृद्धिह्रासभाक्त्वम् १ अंतर्भावात् २ उभयसामंजस्यात् ३ एवम् ४ यह चार पद हैं ॥ दृष्टान्त दार्ष्टान्तिकके सर्वअंश सम नहीं होते हैं किंतु विवक्षित अंशको लेके दृष्टान्त होता है जैसे जलगत सूर्यका प्रतिबिम्ब है सो जलके बधनेसे बधता है औ जलके घटनेसे घटता है तैसे एक परब्रह्म है सो देहादि उपाधिके अंतर्गत होनेतें उपाधिके धर्म जो वृद्धि ह्रासादि तिनको भजता है ऐसे दृष्टांतदार्ष्टान्तिकको समीचीन होनेतें कोई विरोध नहीं ॥ २० ॥

दर्शनाच्च ॥ २१ ॥

इस सूत्रके–दर्शनात् १ च २ यह दो पद हैं ॥ देहादिक उपाधिके विषे परब्रह्मका प्रवेश श्रुति कहती है "पुरश्चक्रे द्विपदः पुरश्चक्रे चतुष्पदः पुरः स पक्षी भूत्वा पुरः पुरुष आविशत्" अस्याअर्थः–ईश्वर है सो मनुष्यादि शरीरोंको रचके औ पश्वादि शरीरोंको रचके चक्षुरादिकोंकी प्रगटतासे पहिले लिङ्गशरीरवाला होके तिन शरीरोंके विषै प्रवेश करता भया प्रवेश करनेसे भी पूर्णही है. इति ॥ २१ ॥

प्रकृतैतावत्त्वं हि प्रतिषेधति ततो ब्रवीति च भूयः ॥२२॥

इस सूत्रके--प्रकृतैतावत्त्वम् १ हि २ प्रतिषेधति ३ ततः ४ ब्रवीति ५ च ६ भूयः ७ यह सात पद हैं ॥ प्रकरणके विषे मूर्त्त अमूर्त्त यह दो ब्रह्मके रूप हैं तिनका नेति नेति यह श्रुति निषेध कहती है तिस निषेधके पीछे "अन्यत् परमस्ति" यह श्रुति कहती है कि मूर्त्त अमूर्त्त इन दोनोंसे परे ब्रह्म है ॥ २२ ॥

तदव्यक्तमाह हि ॥ २३ ॥

इस सूत्रके–तत् १ अव्यक्तम् २ आह ३ हि ४ यह चार पद हैं॥ जो सर्व प्रपंचसे परब्रह्म न्यारा है तो नेत्रादिकोंसे गृहीत क्यों नहीं होता तहां कहतेहैं कि परब्रह्म अव्यक्त है नेत्रादिइंद्रियोंका विषय नहीं ऐसेही श्रुति कहतीहै "न चक्षुषा गृह्यते नापि वाचा"इति परब्रह्म न चक्षुकरके गृहीत होता है औ न वाणी करके गृहीत होता है अर्थात् कोई भी इंद्रिय करके गृहीत नहीं है ॥ २३ ॥

अपि संराधने प्रत्यक्षानुमानाभ्याम् ॥ २४ ॥

इस सूत्रके–अपि१संराधने२प्रत्यक्षानुमानाभ्याम्३यह तीन पद हैं॥श्रुति स्मृतिसे यह निश्चय है कि संराधन कालके विषे अव्यक्त ब्रह्मको योगी देखते हैं संराधन नाम भक्ति ध्यान प्रणिधानादि अनुष्ठानका है ॥ २४ ॥

जो संराध्य संराधक भाव मानोगे तो पर अपर आत्माका भेद मानना होवेगा इस शंकाका समाधान कहते हैं ॥

प्रकाशादिवच्चावैशेष्यं प्रकाशश्च कर्मण्यभ्यासात्॥२५॥

इस सूत्रके–प्रकाशादिवत् १ च२ अवैशेष्यम् ३ प्रकाशः ४ च ५ कर्मणि ६ अभ्यासात् ७ यह सात पद हैं॥ जैसे प्रकाशादिक हैं सो उपाधिके विषैं भेदको प्राप्त होतेहैं स्वतः भेदवाले नहीं हैं तैसे चिदात्माभी ध्यानादि कर्मरूप उपाधिके विषै भेदको प्राप्त होताहै स्वतः नहीं,काहेतैं? 'तत्त्वमसि' इस महावाक्यके अभ्याससे ब्रह्म एकरसही प्रतीत होताहै ॥ २५ ॥

अतोऽनन्तेन तथा हि लिङ्गम् ॥ २६ ॥

इस सूत्रके–अतः १ अनन्तेन २ तथा ३ हि ४ लिङ्गम् ५ यह पांच पद हैं ॥ अभेदको स्वाभाविक होनेतैं औ भेदको अविद्याकृत

होनेतैं विद्यासे अविद्याको दूर करके जीव है सो अनन्त प्राज्ञात्माके साथ एकताको प्राप्त होता है ऐसेही श्रुति कहती है "ब्रह्मविद्ब्रह्मैव भवति" अस्या अर्थः--ब्रह्मको जाननेवाला ब्रह्मही होता है इति २६

उभयव्यपदेशात्त्वहिकुण्डलवत् ॥ २७॥

इस सूत्रके--उभयव्यपदेशात् १ तु २ अहिकुण्डलवत् ३ यह तीन पद हैं ॥ कहीं ध्यातृध्यातव्यरूप करके औ कहीं द्रष्टृद्रष्टव्य रूप करके जीवका औ प्राज्ञका भेद कहा है जो अभेदही मानोगे तो भेदकथन निरर्थक होवैगा यह कहना ठीक नहीं, काहेतें ? जैसे सर्प एकही होताहै परंतु कुण्डलित्व वक्राकारत्व दीर्घदण्डाकारत्व-रूप करके तिसका भेद है तैसेही एक ब्रह्मके विषे उपाधि अनुपाधिको लेके भेद अभेदका कथन है ॥ २७ ॥

प्रकाशाश्रयवद्वा तेजस्त्वात् ॥ २८ ॥

इस सूत्रके--प्रकाशाश्रयवत् १ वा २ तेजस्त्वात् ३ यह तीन पद हैं ॥ जैसे प्रकाश औ प्रकाशका आश्रय सूर्य इन दोनोंको तेज होनेतें अत्यंत भिन्न नहीं है परंतु लोक इनको भिन्न कहते हैं तैसे प्रकरणमेंभी जानना चाहिये ॥ २८ ॥

पूर्ववद्वा ॥ २९ ॥

इस सूत्रके--पूर्ववत् १ वा २ यह दो पद हैं ॥ "प्रकाशादिवच्चावैशेष्यम्" इस सूत्रमें जो कहा है कि प्रकाशादिकोंकी न्याइं ब्रह्म एकरस है सो वेदान्तसिद्धान्त कहा है औ बन्ध अविद्याकृत है तिसकी विद्यासे निवृत्ति है ॥ २९ ॥

प्रतिषेधाच्च ॥ ३० ॥

इस सूत्रके--प्रतिषेधात् १ च २ यह दो पद हैं ॥ परमात्मासे अन्य चेतनका निषेधभी शास्त्र कहता है "नान्योऽतोऽस्ति द्रष्टा" यह श्रुति कहती है कि परमात्मासे अन्य कोई द्रष्टा नहीं है ॥ ३० ॥

परमतः सेतून्मानसम्बन्धभेदव्यपदेशेभ्यः ॥ ३१ ॥

इस सूत्रके–परम् १ अतः २ सेतून्मानसंबन्धभेदव्यपदेशेभ्यः ३ यह तीन पद हैं ॥ यह पूर्वपक्षसूत्र है। जो सर्व प्रंपचसे रहित ब्रह्म कहा तिसतैं परे औरभी तत्त्व वस्तु है काहेतैं? सेतु १ उन्मान २ सम्बंध ३ भेद ४ इनका कथन होनेतैं "अथ य आत्मा स सेतुर्विधृतिः" यहश्रुति कहती है कि जो आत्मा है सो सर्वको धारण करनेवाला सेतु है इसतैं यही निश्चय भया कि आत्मरूप सेतुसे परे औरभी तत्त्व वस्तु है औ "तदेतत् ब्रह्म चतुष्पात्" यह श्रुति कहती है कि वह ब्रह्म चारपाद-वाला है जो चारपाद करके परिमित ब्रह्म है तो तिसतैं अन्य वस्तु भी है औ "सता सोम्य तदा सम्पन्नोभवति" यह श्रुति कहती है कि हे सौम्य यह जीव सुषुप्ति कालमें सत् ब्रह्मके साथ सम्बन्धको प्राप्त होताहै औ "अथ य एषोऽक्षिणि पुरुषः" इत्यादि श्रुति अक्षिस्थ पुरुषका औ आदित्यमण्डलस्थ पुरुषका भेद कहती है इन सर्वसे यही जाना गया कि परब्रह्मसे परे कोई तत्त्व वस्तु है ॥ ३१ ॥

सामान्यात्तु ॥ ३२ ॥

इस सूत्रके–सामान्यात् १ तु २ यह दो पद हैं ॥ 'तु' शब्द पूर्वप-क्षकी निवृत्तिके अर्थ है ब्रह्मसे अन्य कोई तत्त्ववस्तु है यह कहना प्रमाण करके शून्य है औ सेतुके कथन करकेभी ब्रह्मसे भिन्न काइ वस्तुकी सिद्धि नहीं होसकती, काहेतैं? लौकिकसेतुकी समानतासे श्रुति आत्मा को सेतु कहती है औ यह नहीं कहती कि आत्मासे अन्य कोई तत्त्व वस्तु है ॥ ३२ ॥

बुद्ध्यर्थः पादवत् ॥ ३३ ॥

इस सूत्रके–बुद्ध्यर्थः १ पादवत् २ यह दो पद हैं ॥ जो यह कहा कि उन्मानका कथन होनेतैं ब्रह्मसे. भिन्न कोई वस्तु है सो कहना

ठीक नहीं, काहेतें ? जैसे ध्यानके वास्ते वाक् प्राण चक्षु श्रोत्र यह मनके चार पाद हैं तैसे (बुद्ध्यर्थः) उपासनाके वास्ते ब्रह्मके चार पाद हैं ॥ ३३ ॥

स्थानविशेषात्प्रकाशादिवत् ॥३४॥

इस सूत्रके-स्थानविशेषात् १ प्रकाशादिवत् २ यह दो पद हैं ॥ जैसे सूर्यका प्रकाश एकही है परंतु उपाधिके योगसे विशेष कहाता है औ उपाधिके वियोगसे महाप्रकाशके साथ सम्बन्धवाला कहाता है औ उपाधिके भेदसे भिन्न कहाता है तैसे एकही आत्मा जाग्रदादि अवस्थामें बुद्ध्यादि उपाधिके योगसे विशेष विज्ञानवाला कहाता है औ सुषुप्तिमें उपाधिकी शान्ति होनेतें परमात्माके साथ सम्बन्धवाला कहाता है औ उपाधिके भेदसे भिन्न कहाता है ॥ ३४ ॥

उपपत्तेश्च ॥ ३५ ॥

इस सूत्रके-उपपत्तेः १ च २ यह दो पद हैं ॥ अपने स्वरूपसे ही ब्रह्मके साथ भेदनिवृत्तिरूप सम्बन्ध जीवका है मुख्य सम्बन्ध नहीं, काहेतें? श्रुति करके एक ब्रह्मका कथन होनेतें वस्तुद्वयका अभाव है॥

तथान्यप्रतिषेधात् ॥ ३६ ॥

इस सूत्रके-तथा १ अन्यप्रतिषेधात् २ यह दो पद हैं॥ "नेह नानास्ति किञ्चन" यह श्रुति ब्रह्मसे भिन्नवस्तुका प्रतिषेध करती है इससे यही निश्चय भया कि परब्रह्मसे परे कोई तत्त्व वस्तु नहीं है॥३६॥

अनेन सर्वगतत्वमायामशब्दादिभ्यः ॥ ३७ ॥

इस सूत्रके-अनेन १ सर्वगतत्वम् २ आयामशब्दादिभ्यः ३ यह तीन पद हैं ॥ इस सेत्वादिकथनके निषेधसे सर्वगत आत्मा सिद्ध भया । प्रश्न-तुम आत्माको सर्वगत कैसे जानतेहो? उत्तर-आयाम शब्दसे जानते हैं । प्रश्न-आयामशब्द किसको कहते हो ? उत्तर-व्याप्तिवाचक शब्द आयामशब्दहै जैसे "ज्यायान् दिवो ज्यायानाकाशात्

यह ब्रह्मको व्यापक कहनेवाला आयाम शब्दहै । अस्यार्थः—परमात्मा द्युलोकसे बडा है औ आकाशसे बडा है अर्थात् सर्वगत है ३७

फलमत उपपत्तेः ॥ ३८ ॥

इस सूत्रके—फलम् १ अतः २उपपत्तेः ३ यह तीन पद हैं॥ शुभ अशुभ व्यामिश्र यह तीन प्रकारके कर्म हैं तिनका सुख दुःख व्यामिश्र यह तीन ही प्रकारके फल हैं तिन फलोंको देव नारकीय मनुष्यादिक भोगते हैं तिन फलोंको भुगानेवाला कर्म है वा ईश्वर है तहां कहते हैं कि फलको भुगानेवाला ईश्वर है, काहेतें ? सर्वेश्वर सर्वज्ञ चेतनके विना जड कर्मके विषे फल भुगानेकी योग्यता नहीं॥३८॥

श्रुतत्वाच्च ॥ ३९ ॥

इस सूत्रके—श्रुतत्वात्१ च२यह दो पद हैं ॥ "स वा एष महानज आत्माऽन्नादो वसुदानः"यह श्रुति कहती है कि सो यह महान् अज आत्मा है सो सर्वको अन्न देता है औ धन देता है इति ॥ ३९ ॥

धर्मं जैमिनिरत एव ॥ ४० ॥

इस सूत्रके—धर्मम्१जैमिनिः२ अतः३एव ४ यह चार पद हैं ॥ "स्वर्गकामो यजेत" इत्यादि श्रुतिसे धर्मही फलका दाता है ऐसे जैमिनि आचार्य मानता है ॥ ४० ॥

पूर्वं तु बादरायणो हेतुव्यपदेशात् ॥ ४१ ॥

इस सूत्रके—पूर्वम्१तु२बादरायणः३हेतुव्यपदेशात् ४ यह चार पद हैं ॥ केवल कर्मही फलका दाता है इस पक्षकी निवृत्तिके अर्थ 'तु'शब्द है पूर्वोक्त ईश्वरही फलका दाता है ऐसे बादरायण आचार्य मानता है काहेतें सर्ववेदान्तके विषे ईश्वरही जगत्का हेतु कहाहै ४१

इति श्रीमन्मौक्तिकनाथयोगिविरचितायां ब्रह्मसूत्रसारार्थप्रदीपिकायां तृतीयाध्यायस्य द्वितीयः पादः ॥ २ ॥

तृतीयाध्याये तृतीयःपादः ।

पूर्वपादके विषै विज्ञेय ब्रह्मका तत्त्व कहा अब विचार करते हैं कि सर्व वेदान्तके विषै विज्ञानका भेद है वा नहीं इस संशयको दूर करते हैं भगवान् सूत्रकार ॥

सर्ववेदान्तप्रत्ययं चोदनाद्यविशेषात् ॥ १ ॥

इस सूत्रके—सर्ववेदान्तप्रत्ययम् १ चोदनाद्यविशेषात् २ यह दो पद हैं ॥ सर्ववेदान्तके विषै एकही विज्ञान है, काहेतें ? चोदनादिकोंकी अविशेषता होनेतें चोदना नाम प्रेरणाका है वा विधायकशब्दका नाम चोदना है जैसे एकही अग्निहोत्रके विषै शाखाभेद है परंतु 'जुहुयात्' यह चोदना शब्द एकही है तैसे वाजसनेयी शाखामें औ छान्दोग्यके विषै "ज्येष्ठश्च श्रेष्ठश्च" इत्यादि ज्येष्ठत्वादिगुणविशिष्ट प्राणविद्या एक है तैसे पंचाग्निविद्या भी एक है ॥ १ ॥

भेदान्नेति चेन्नैकस्यामपि ॥ २ ॥

इस सूत्रके—भेदात् १ न २ इति ३ चेत् ४ न ५ एकस्याम् ६ अपि ७ यह सात पद हैं ॥ वाजसनेयी शाखामें पंचाग्निविद्याकी स्तुति करके छठा अग्नि और माना है औ छान्दोग्यमें पंचाग्नि-विद्याही मानी है ऐसे गुण भेद होनेतें, सर्व वेदान्तके विषै एक विद्या नहीं (इति चेन्न) ऐसे न कहो, काहेतें ? एक विद्याके विषै भी गुण भेदका संभव होनेतें एकही विद्या है ॥ २ ॥

स्वाध्यायस्य तथात्वेन समाचारेऽधिका-राच्च सववच्च तन्नियमः ॥ ३ ॥

इस सूत्रके—स्वाध्यायस्य १ तथात्वेन २ समाचारे ३ अधिकारात् ४ च ५ सववत् ६ च ७ तन्नियमः ८ यह आठ पद हैं ॥ जो ऐसे कहते हैं कि अथर्ववेदके विषै विद्याके प्रति शिरोव्रतादि धर्मकी अपेक्षाहै औ

दूसरे वेदमें नहीं है इसीसे विद्याका भेद है सो कहना ठीक नहीं, काहेतें ? शिरोव्रतादि अध्ययनका धर्म है विद्याका धर्म नहीं औ अध्ययन धर्म करके ही वेदव्रतोपदेश ग्रंथके विषै आथर्वणिक कहते हैं कि शिरोव्रतादिरहित पुरुष इसका अध्ययन न करे जैसे एक ऋषि संज्ञक अग्निमें सौर्यादि सप्त होम करे यह नियम भी अथर्वमें है परंतु शिरोव्रतादिधर्मविद्याका है यह नियम नहीं ॥ ३ ॥

दर्शयति च ॥ ४ ॥

इस सूत्रके-दर्शयति१ च २ यह दो पद हैं ॥ एकही विद्याको वेद कहता है "सर्वे वेदा यत्पदमामनन्ति" अस्या अर्थः- जिस ब्रह्मस्वरूपको सर्व वेद कहते हैं. इति ॥ ४ ॥

उपसंहारोऽर्थाभेदाद्विधिशेषवत्समाने च ॥ ५ ॥

इस सूत्रके-उपसंहारः १ अर्थाभेदात् २ विधिशेषवत् ३ समाने ४ च ५ यह पांच पद हैं ॥ उक्त प्रकारसे सर्व वेदान्तके विषै एकही विद्या सिद्ध भई औ जो शाखान्तरमें विद्याके गुण कहे हैं तिनका समानविद्यामें उपसंहार करना, अर्थात् जिस शाखामें नहीं है तिस शाखामें शाखान्तरसे इकट्ठा करना काहेतें?तिनके अर्थका अभेद है जैसे विधिके शेष अग्निहोत्रादि धर्मोंका एकविधिमें उपसंहार होता है तैसे शाखान्तरस्थ गुणोंका समानविद्यामें उपसंहार जानना ॥ ५ ॥

अन्यथात्वं शब्दादिति चेन्नाविशेषात् ॥ ६ ॥

इस सूत्रके-अन्यथात्वम् १ शब्दात् २ इति ३ चेत् ४ न ५ अविशेषात ६ यह छह पद हैं ॥ वाजसनेयी शाखामें श्रवण होताहै कि सात्त्विक वृत्तिवाले देव कहतेभये कि यज्ञके विषै उद्गीथ करके राजसतामस वृत्तिवाले असुरोंको जीतैंगे पीछे वागादिक सर्व प्राणोंको कहा कि तुम हमारे मध्यमें उद्गान करो जब वागादिक उद्गान करने लगे तब

अनृतादि दोष करके ग्रस्त होतेभये पीछे मुख्यप्राणको कहा कि "त्वं न उद्गाय" तूं हमारे मध्यमें उद्गान कर जब मुख्यप्राण उद्गान करनेलगा तब असुर नष्ट होतेभये इति। औ छान्दोग्यके विषे भी श्रवण होता है कि "तमुद्गीथमुपासांचक्रिरे" जब वागादिक सर्व प्राण दोष करके ग्रस्त होतेभये तब मुख्यप्राण उद्गान करता भया पीछे असुर नष्ट होगये तब तिस उद्गीथरूप मुख्य प्राणकी देवता उपासना करतेभये इति । इन दोनों स्थलोंमें प्राणविद्या कही है तहां संशय है कि यह विद्या एक है वा नहीं? पूर्वोक्त न्यायसे प्राणविद्या एक है यह पूर्वपक्षीका मत है। सिद्धान्ती–प्राणविद्या एक नहीं, काहेतें? वाजसनेयी शाखामें "त्वं न उद्गाय" इस वाक्य करके प्राणको कर्ता माना है औ छान्दोग्यमें "तमुद्गीथमुपासांचक्रिरे" इस वाक्य करके प्राणको कर्म माना है ऐसे उपास्य कर्त्ता कर्मका भेद होनेतें विद्याका भेद है । पूर्व पक्षी–कर्ता कर्मरूप विशेषता करके विद्याका भेद नहीं होसकता, काहेतें ? बहुत स्थलमें प्राणविद्याकी अविशेषता प्रतीत होती है इसीसे प्राणविद्या एक है ॥ ६ ॥

न वा प्रकरणभेदात्परोवरीयस्त्वादिवत् ॥ ७ ॥

इस सूत्रके--न १ वा २ प्रकरणभेदात् ३ परोवरीयस्त्वादिवत् ४ यह चार पद हैं ॥ यह सिद्धांत सूत्र है जैसे प्रकरणका भेद होनेतें आदित्यादिगताहिरण्यश्मश्रुत्वादिगुणविशिष्ट उद्गीथकी उपासनासे परोवरीयस्त्वादि अर्थात् (परमश्रेष्ठत्वादिगुणविशिष्ट उद्गीथकी उपासनाका भेद है तैसे प्रकरणका भेद होनेतें प्राणविद्याका भेद है ७

संज्ञातश्चेत्तदुक्तमस्ति तु तदपि ॥ ८ ॥

इस सूत्रके–संज्ञातः १ चेत् २ तत् ३ उक्तम् ४ अस्ति ५ तु ६ तत् ७ अपि ८ यह आठ पद हैं ॥ वाजसनेयीशाखामें औ छान्दोग्यमें 'उद्गीथविद्या' ऐसी एक संज्ञा होनेतें एकही विद्या है यह कहना

भी ठीक नहीं, काहेतें? "न वा प्रकरणभेदात् परोवरीयस्त्वादिवत्" इस पूर्वसूत्रमें जो कह आये हैं सोई ठीक है औ एकसंज्ञा यह कहना भी श्रुतिके अक्षरोंसे बाह्य है श्रुतिमें तो उद्गीथ इतनाही पद है॥८॥

व्याप्तेश्च समञ्जसम् ॥ ९ ॥

इस सूत्रके--व्याप्तेः १ च२समंजसम् ३ यह तीन पद हैं ॥"ओमित्येतदक्षरमुद्गीथमुपासीत" अर्थः--'ओम्'यह अक्षर उद्गीथ है ऐसे उपासना करनी इति।इस वाक्यमें अक्षरशब्दका औ उद्गीथशब्दका सामानाधिकरण्य होनेतें अध्यास अपवाद एकत्व विशेषण यह चार पक्ष प्रतीत होतेहैं बुद्धिपूर्वक अभेदके आरोपका नाम अध्यास है, बाधका नाम अपवाद है,वास्तव अभेदका नाम एकत्व है व्यावर्त्तकका नाम विशेषण है।तहां संशय है कि इन चार पक्षोंमें कौनसे पक्षका ग्रहण करना ठीक है ? तहां कहते हैं कि विशेपणपक्षका ग्रहण करना ठीक है, काहेतें ? इस उपासनामें सर्ववेदव्याप्य ओङ्कार प्राप्त भया तिसका निरास करके ओङ्कारके विषे प्राणदृष्टि विधान के वास्ते अक्षरका उद्गीथ विशेपण है ऐसे ही मानना ठीक है ॥ ९ ॥

सर्वाभेदादन्यत्रेमे ॥ १० ॥

इस सूत्रके--सर्वाभेदात् १ अन्यत्र २ इमे ३ यह तीन पद हैं ॥ वाजसनेयीशाखामें औ छान्दोग्यमें प्राणका संवाद है तहां प्राणको श्रेष्ठ मानके उपास्य माना है तिसके विषे वागादिकोंके वसिष्ठत्वादि गुणोंका समर्पण किया है वाणीका वसिष्ठत्व गुण है औ चक्षुका प्रतिष्ठा गुण है,काहेतें?वाणीवाला सुखपूर्वक वस्ता है औ चक्षुवालेकी सुखपूर्वक पादप्रतिष्ठा होती है औ कौषीतकी शाखामें प्राणसंवादके विषे वसिष्ठत्वादिगुणोंका श्रवण है नहीं तहां संशय है कि वाजसनेयी शाखासे वसिष्ठत्वादिगुणोंका आकर्षण करना वा नहीं? तहां कहतेहैं कि आकर्षण करना, काहेतें ? सर्वशाखामें प्राणविज्ञान एकहीहै १०

आनन्दादयः प्रधानस्य ॥ ११ ॥

इस सूत्रके–आनन्दादयः १ प्रधानस्य २ यह दो पद हैं ॥ जो श्रुति ब्रह्मके स्वरूपको कहती है तिनके विषे आनन्दरूपत्व विज्ञानघनत्व सर्वगतत्वादि ब्रह्मके धर्म कहेहैं तहां संशय है कि जिस श्रुतिमें जो धर्म कहा है सो वहांही जानना वा सारे धर्म सारेही जानने तहां कहते हैं कि सारे धर्म सारेही जानने, काहेतें ? सर्व श्रुतियोंमें एकही ब्रह्म प्रधान है तिसका भेद नहीं ॥ ११ ॥

तैत्तिरीय उपनिषद्में प्रियशिरस्त्व मोदप्रमोदादि ब्रह्मके धर्म कहे हैं सो भी सारे ही जानने चाहियें इस शंकाका उत्तर कहते हैं ॥

प्रियशिरस्त्वाद्यप्राप्तिरुपचयापचयौ हि भेदे ॥ १२ ॥

इस सूत्रके–प्रियशिरस्त्वाद्यप्राप्तिः १ उपचयापचयौ २ हि ३ भेदे ४ यह चार पद हैं ॥ प्रियशिरस्त्वादि धर्मोंकी सारे प्राप्ति नहीं है, काहेतें ? पुत्रादि दर्शन सुखका नाम प्रिय है पुत्रकी वार्त्तासे मोद होता है यह सर्व कोशके धर्म हैं ब्रह्मके नहीं, काहेतें ? परस्परकी अपेक्षासे औ भोगनेवालेकी अपेक्षासे इन धर्मोंकी वृद्धि औ हानि होती है औ हानि वृद्धिभेदके विना होवैं नहीं औ ब्रह्म भेदरहित है ॥ १२ ॥

इतरे त्वर्थसामान्यात् ॥ १३ ॥

इस सूत्रके--इतरे १ तु २ अर्थसामान्यात् ३ यह तीन पद हैं ॥ ज्ञान आनन्दादि धर्म सारेही जानने चाहियें, काहेतें ? इन धर्मों करके प्रतिपाद्य धर्मि ब्रह्म सारे एकही है ॥ १३ ॥

आध्यानाय प्रयोजनाभावात् ॥ १४ ॥

इस सूत्रके–आध्यानाय १ प्रयोजनाभावात् २ यह दो पद हैं ॥ "इन्द्रियेभ्यः परा ह्यर्था अर्थेभ्यश्च परं मनः" इत्यादिश्रुतिवाक्य कठवल्लीके विषे श्रवण होता है तहां संशय है कि तिस तिसकी अपेक्षासे

अर्थादिक परे कहे हैं वा इन सर्वकी अपेक्षासे पुरुषही परे कहाहै? तहां कहते हैं कि इन सर्वकी अपेक्षासे पुरुषही परे कहा है,काहेतें ? इन द्वारा पुरुषका दर्शन होना यही इनका प्रयोजन है और कोई प्रयोजन नहीं औ ब्रह्मको परे कहनेका प्रयोजन मोक्षकी सिद्धि है ॥ १४ ॥

आत्मशब्दाच्च ॥ १५ ॥

इस सूत्रके–आत्मशब्दात् १ च २ यह दो पद हैं ॥ पुरुषज्ञानके वास्तेही इन्द्रिय अर्थादिकोंका प्रवाह माना है, काहेतें? "एष सर्वेषु भूतेषु गूढोऽऽत्मा न प्रकाशते" इत्यादि श्रुतिमें पुरुषके विषै आत्मशब्दका प्रयोग होनेतें इन्द्रिय अर्थादिक सर्व अनात्मा हैं औ श्रुतिका अर्थ यह है कि सर्वभूतोंके विषै आत्मा गूढ है इसीसे प्रकाशता नहीं है इति ॥ १५ ॥

आत्मगृहीतिरितरवदुत्तरात् ॥ १६ ॥

इस सूत्रके–आत्मगृहीतिः १ इतरवत् २ उत्तरात् ३ यह तीन पद हैं ॥ ऐतरेय उपनिषद्में कहा है कि इस सृष्टिसे पहिले एक आत्माही रहा और कुछ नहीं था सो आत्मा इन लोकोंको रचता भया इति तहां संशय है कि आत्मशब्दसे परमात्माका ग्रहण है वा अन्य किसीका ग्रहण है ? तहां कहते हैं कि परमात्माका ग्रहण है,काहेतें ? जैसे इतर सृष्टि वाक्योंमें परमात्माका ग्रहण करते हैं तैसे इहांभी करना चाहिये ॥ १६ ॥

अन्वयादिति चेत्स्यादवधारणात् ॥ १७ ॥

इस सूत्रके--अन्वयात् १ इति २ चेत् ३ स्यात् ४ अवधारणात् ५ यह पांच पद हैं॥ सृष्टिवाक्यका प्रजापतिके विषै अन्वय होनेतें परमात्माका ग्रहण नहीं होसकता ऐसे कहे तो ठीक नहीं, काहेतें? जो परमात्माका ग्रहण न होगा तो सृष्टिसे पहिले एकही आत्मा रहा ऐसा निश्चयभी न होगा इसीसे परमात्माका ग्रहण करना ठीकहै १७

कार्याख्यानादपूर्वम् ॥ १८ ॥

इस सूत्रके–कार्याख्यानात् १ अपूर्वम् २ यह दो पद हैं ॥ छान्दोग्यमें औ वाजसनेयी शाखामें प्राणसंवादके विषे श्वादिपर्यन्त प्राणका अन्न कहके पीछे कहा है कि जल प्राणका वस्त्र है ऐसे उपासक पुरुष प्राणकी अनग्नताका चिन्तन करे औ तिसके पीछे छान्दोग्यमें कहाहै किभोजनसे पहिले औ पीछे आचमन करना यह प्राणको आच्छादन करनेके वास्ते आचमन विधि है इति।तहां संशय है कि यह दोनोंही मानने चाहियें वा आचमनविधि मानना चाहिये वा अनग्नताचिन्तन मानना चाहिये इति। तहां कहते हैं कि ध्यानके वास्ते अनग्नताचिन्तनही मानना ठीक है, काहेतें? शुद्धिके वास्ते कार्यरूपसे आचमन नित्यही प्राप्त है तिसकी विधि नहीं है ॥ १८॥

समान एवंचाभेदात् ॥ १९ ॥

इस सूत्रके–समानः १ एवम् २ च ३ अभेदात् ४ यह चार पद हैं॥ वाजसनेयी शाखामें अग्निरहस्यके विषै शाण्डिल्यविद्याहै तहां मनोमयत्व प्राणशरीरत्व भारूपत्वादि आत्माके गुण कहे हैं औ तिसी शाखामें कहा है कि आत्मा सर्वका अधिपति है सर्वका प्रशास्ता है इति। तहां संशय है कि यह विद्या एक है औ मनोमयत्वादि गुणका उपसंहार है वा दो विद्या हैं वा गुणकाअनुपसंहार है? तहां कहते हैं कि जैसे कहीं भिन्न शाखामें एक विद्या औ गुणका उपसंहार होता है तैसे इहां भी एक शाखामें एकही विद्या औ गुणका उपसंहार है, काहेतें? मनोमयत्वादि गुणवाला एक ब्रह्मही उपास्य है ॥ १९ ॥

सम्बन्धादेवमन्यत्रापि ॥ २० ॥

इस सूत्रके–सम्बन्धात्१ एवम्२ अन्यत्र३अपि४यह चारपदहैं ॥ बृहदारण्यकमें कहा है कि इस मण्डलके विषे औ दक्षिण नेत्रके विषे आदित्य पुरुष है औ पीछे दो उपनिषद् कहे हैं एक तो यह कहा कि

अहर इस नामवाला मण्डलस्थ पुरुष अधिदैवत है औ दूसरा यह कहा कि अहम् इस नामवाला नेत्रस्थ पुरुष अध्यात्म है तहां संशय है कि अविभाग करके यह दोनों उपनिषद् दोनोंही जगह मानने वा विभाग करके एक अधिदैवत औ दूसरा अध्यात्म मानना इति। तहां पूर्वपक्षी कहता है कि जैसे शाण्डिल्यविद्यामें एकविद्या औ गुणका उपसंहार माना है तैसे इहां भी एकविद्या औ अधिदैवतत्वादि गुण का उपसंहार मानना चाहिये ॥ २० ॥

न वा विशेषात् ॥ २१ ॥

इस सूत्रके–न १ वा २ विशेषात् ३ यह तीन पद हैं॥ यह सिद्धांत सूत्र है इन दोनों उपनिषदोंकी दोनो जगह प्राप्ति नहीं है, काहेतें ? मण्डलस्थ पुरुषकी अहर इस नामसे उपासना कही है औ नेत्रस्थ पुरुषकी अहम् इस नामसे उपासना कही है ऐसे स्थानविशेष होनेतें दोनों उपनिषद् भिन्न हैं एक नहीं ॥ २१ ॥

दर्शयति च ॥ २२ ॥

इस सूत्रके--दर्शयति १ च २ यह दो पद हैं ॥ मण्डलस्थ पुरुष औ नेत्रस्थ पुरुषरूप स्थानके भेदसे भिन्न धर्मोंका अतिदेशके विना परस्परमें उपसंहार नहीं होसकता इसीसे "तस्यैतस्य तदेव रूपं यदमुष्य रूपम्" इत्यादि श्रुतिरूप अतिदेश करके आदित्यपुरुषगतरूपादिधर्मोंका नेत्रस्थ पुरुषके विषे उपसंहार माना है। श्रुत्यर्थः–जो इस मण्डलस्थपुरुषका रूप है सोई नेत्रस्थ पुरुषका रूप है इति २२

सम्भृतिद्युव्याप्त्यपि चातः ॥ २३ ॥

इस सूत्रके-संभृतिद्युव्याप्ती १ अपि २ च ३ अतः ४ यह चार पद हैं॥आकाशादिकोंको उत्पन्न करनेवाला औ धारण करनेवालाजो ब्रह्मका पराक्रमतिसका नाम संम्भृतिहैऔस्वर्गादिकोंके साथ ब्रह्मकी याप्तिका नाम द्युव्याप्ति है सो यह सभृति औ द्युव्याप्तिब्रह्मकी विभूति

वेदमें कही है औ तिसी वेदमें शाण्डिल्यविद्यासे आदिलेके ब्रह्मविद्या कही है तहां संशय है कि ब्रह्मविद्याके विषै ब्रह्मविभूतिका उपसंहार करना वा नहीं? तहां कहते हैं कि नहीं करना, काहेतें? शाण्डिल्यविद्यादिकोंके हृदयादि स्थान कहे हैं तिनके विषे ब्रह्मविभूतिकी प्राप्ति नहीं होसकती ॥ २३ ॥

पुरुषविद्यायामिव चेतरेषामनाम्नानात् ॥ २४ ॥

इस सूत्रके--पुरुषविद्यायाम् १ इव२ च ३ इतरेषाम् ४ अनाम्नानात् ५ यह पांच पद हैं ॥ छान्दोग्यके विषे पुरुषका यज्ञरूपकरके वर्णन किया है तिसकी आयुका तीन विभाग करके तीन सवन कहे हैं तिस पुरुषके चौविसवर्षपर्यंत प्रातःकालका सवन है औ तिसके आगे चवालिसवर्ष पर्यंत मध्यंदिनका सवन है औ तिसके आगे अडतालिसवर्ष पर्यंत सायंकालका सवन है ऐसे एक सौ सोलहवर्ष पर्यंत पुरुषका जीवनरूप फल कहाहै औ तैत्तिरीयके विषैभी पुरुषको यज्ञरूप कहाहै तिस विद्वान् यज्ञपुरुषका आत्मा यजमान है श्रद्धा पत्नी है इति। तहां संशय है कि छान्दोग्यमें पुरुषयज्ञके जो धर्म कहे हैं तिनका तैत्तिरीयमें उपसंहार करना वा नहीं? तहां कहते हैं कि नहीं करना, काहेतें ? छान्दोग्यमें जो पुरुषयज्ञ कहा है तिसतें विलक्षण तैत्तिरीयमें कहाहै इन दोनोंकी तुल्यता नहीं॥२४॥

वेधाद्यर्थभेदात् ॥ २५ ॥

इस सूत्रके--वेधाद्यर्थभेदात् १ यह एकही समस्त पद है॥अथर्ववदके विषे उपनिषद्के प्रारम्भमें प्रविध्यादि मंत्र कहे हैं "सर्वं प्रविध्य हृदयं प्रविध्य धमनीः प्रवृज्य शिरोऽभिप्रवृज्य त्रिधा विपृक्तः" इति। अर्थः--अभिचारकर्त्ता पुरुष देवताकी प्रार्थना कर्त्ता है कि हे देवते! मेरे शत्रुके सर्व अंगोंको विदीर्ण कर विशेष करके हृदयको विदीर्ण कर नाड़ीको तोड शिरका नाश कर ऐसे तीन प्रकारसे मेरा

शत्रु नष्ट होवे इति । तहां संशय है कि इन प्रविध्यादि मंत्रोंका उपनिषद् विद्याके विषे उपसंहार करना वा नहीं तहां कहते हैं कि नहीं करना, काहेतें? इन मंत्रोंके हृदयवेधादि अर्थ भिन्न हैं तिनका उपनिषद् विद्याके साथ सम्बन्ध नहीं ॥ २५ ॥

हानौ तूपायनशब्दशेषत्वात्कुशाच्छन्दःस्तुत्युपगानवत्तदुक्तम् ॥ २६ ॥

इस सूत्रके—हानौ १ तु २ उपायनशब्दशेषत्वात् ३ कुशाच्छन्दःस्तुत्युपगानवत् ४ तत् ५ उक्तम् ६ यह छह पद हैं ॥ विद्वान् अपने पुण्यपापको त्यागके शुद्ध होके परब्रह्मको प्राप्त होता है ऐसे अथर्ववेदमें पुण्यपापका हान कहा है हान नाम त्यागका है औ विद्वान्के जो प्रिय हैं सो तिसके पुण्यको ग्रहण करते हैं अप्रिय हैं सो पापको ग्रहण करते हैं ऐसे कौषीतकी शाखामें पुण्यपापका उपायन कहा है उपायन नाम ग्रहणका है तहां संशय है कि अथर्वमें हानका श्रवण है उपायनका नहीं तहां उपायनका सन्निपात करना वा नहीं? तहां कहते हैं कि करना, काहेतें ? हानशब्दका शेष उपायन शब्द है ऐसे कौषीतकीरहस्यमें कहा है जैसे उद्गाता अपने स्तोत्र गणनेके वास्ते काष्ठकी (कुशा) शलाका अपने समीप रखता है सो कुशा कहीं अविशेष करके वनस्पतिमात्रकी कही है परंतु कहीं विशेष करके उदुम्बरकी कही है तहां उदुम्बरकीही ग्रहण करनी औ जैसे नव अक्षरका आसुर छन्द है तिसतें अन्य दैव छंद है तिनका अविशेष करके पौर्वापर्यके प्रसंगमें दैवछन्द पूर्व है ऐसे पैङ्गी वाक्यमें विशेष ग्रहण है औ जैसे षोडशीकमका अंगभूत स्तोत्र पढना ऐसे अविशेषकालकी प्रहरमें सूर्योदयमें पढना ऐसे विशेषकालका ग्रहण है औ जैसे अविशेष करके सर्व ऋत्विजोंको उपगानकी प्राप्तिमें अध्वर्युसे भिन्न ऋत्विक् उपगान करें यह विशेष ग्रहण है तैसे प्रकरणमें भी जानना चाहिये ॥ २६ ॥

साम्पराये कर्तव्याभावात्तथा ह्यन्ये ॥ २७ ॥

इस सूत्रके–साम्पराये १ कर्त्तव्याभावात् २ तथा ३हि४अन्ये ५ यह पांच पद हैं ॥ कौषीतकी शाखावाले कहते हैं कि जब विद्वान् मरके देवयानमार्ग करके ब्रह्मलोकको जाता है तब मार्गके मध्यमें विरजानाम नदी आती है तिसको मन करके ही तरता है औ वहांही पुण्य पापको दूर करता है इति।तहां संशय है कि विद्वान्के पुण्यपाप विरजामें दूर होते हैं वा देह त्यागसे पहिलेही दूर होते हैं इति । तहां कहते हैं कि पहिलेही दूर होते हैं,काहेतें? मृत विद्वान्को मार्गके विषै पुण्यपापसे कुछ कर्त्तव्य नहीं ऐसेही अन्य शाखावाले कहतेहैं॥२७॥

छन्दत उभयाविरोधात् ॥ २८ ॥

इस सूत्रके–छन्दतः१उभयाविरोधात २ यह दो पदहैं॥ मार्गके मध्यमें विद्वान्के पुण्यपापका नाश मानना सर्वथा असंगत है,काहेतें पुण्यपापके नाशक जो यमनियमादि साधन तिनका इच्छापूर्वक अनुष्ठान देहके पडे पीछे नहीं हो सकता औ देहपातके पूर्वही विद्वान्के पुण्यपापका नाश होता है ऐसे ताण्डीश्रुति औ शाट्यायनी श्रुति कहती है तिनके साथ विरोध होवेगा औ जो देहपातसे पूर्वही पुण्यपापका नाश मानो तो विरोध नहीं ॥ २८ ॥

गतेरर्थवत्त्वमुभयथाऽन्यथा हि विरोधः ॥ २९ ॥

इस सूत्रके–गतेः १ अर्थवत्त्वम् २ उभयथा ३ अन्यथा ४ हि ५ विरोधः६ यह छह पद हैं ॥ सगुण विद्याके विषै पुण्यपापके हानकी सन्निधिमें देवयानमार्गका श्रवण है औ निर्गुण विद्याके विषै नहीं है तहां संशय है कि सगुण निर्गुण दोनोंही विद्यामें हान तो है परंतु देवयान मार्गका उपसंहार दोनों विद्यामें है वा कहीं है कहीं नहीं है इति। तहां कहते हैं कि सगुणमें है निर्गुणमें नहीं ऐसा माननेसेही देवयान

मार्ग अर्थवाला होसकताहै अन्यथा जो श्रुति पुण्यपापके त्यागपूर्वक विद्वान्‌की परब्रह्मके साथ एकता कहतीहै तिसके साथ विरोध होवेगा, काहेतें ? निर्गुण विद्यामें देवयानमार्गकी अपेक्षा नहीं ॥ २९ ॥

उपपन्नस्तल्लक्षणार्थोपलब्धेर्लोकवत् ॥ ३० ॥

इस सूत्रके–उपपन्नः १ तल्लक्षणार्थोपलब्धेः २ लोकवत् ३ यह तीन पद हैं ॥ सगुणविद्यामें देवयानमार्ग है औ निर्गुणमें नहीं यही मानना ठीक है,काहेतें? पर्यंकविद्याके विषे कहा है कि सगुणका उपासक देवयानमार्ग करके ब्रह्मलोकको जाताहै औ ब्रह्माके साथ पर्यंकपर बैठके संवाद करताहै औ दिव्य गंधादिकोंको भोगता है इति । औ निर्गुणका उपासक कहीं जाता नहीं इसीसे देवयानमार्गकी अपेक्षा नहीं औ इस लोकमें भी यह वार्त्ता प्रसिद्ध है कि किसी ग्राम जानेवालेको मार्गकी अपेक्षा होती है दूसरेको नहीं ॥ ३० ॥

अनियमः सर्वासामविरोधः शब्दानुमानाभ्याम् ॥ ३१ ॥

इस सूत्रके–अनियमः १ सर्वासाम २ अविरोधः ३ शब्दानुमानाभ्याम् ४ यह चार पद हैं॥सगुणविद्यामें भी पर्यंकविद्या पंचाग्निविद्या उपकोसलविद्या दहरविद्या इनके विषे देवयानमार्गका श्रवण है औ मधुविद्या शाण्डिल्यविद्या षोडशकलविद्या वैश्वानरविद्याके विषे नहीं है तहां संशय है कि जिस विद्यामें देवयानमार्ग कहा है तिसमें तिसको जानना यह नियमहै वा अनियमसे सर्व सगुण विद्याके विषे जानना इति।तहां कहते हैं कि सर्वही सगुणविद्या ब्रह्मलोकको प्राप्तकरनेवाली हैं तिन सर्वके विषे ही देवयानमार्ग जानना ऐसेही श्रुति स्मृति कहती हैं इसीसे कोई विरोध नहीं ॥ ३१ ॥

सगुणविद्याका ब्रह्मलोक फल कहा औ निर्गुण विद्याका मुक्ति फल कहा सो ठीक नहीं,काहेतें?इतिहास पुराणादिकोंके विषे तत्त्वज्ञानीके जन्मका श्रवणहै जैसे'अपान्तरतमाः'नाम वेदाचार्य विष्णुकी

आज्ञासे कलि द्वापरकी सन्धिमें कृष्णद्वैपायन होता भया औ ब्रह्माका मानसपुत्र वसिष्ठ निमिराजाके शापसे पूर्वदेहको त्यागके ब्रह्माकी आज्ञासे मित्रावरुणके सकाशसे उत्पन्न होताभया ऐसे भृगु सनत्कुमार दक्ष नारदादिकोंके जन्मका भी श्रवण है इस शंकाका समाधान कहतेहैं ।

यावदधिकारमवस्थितिराधिकारिकाणाम् ॥ ३२ ॥

इस सूत्रके—यावदधिकारम् १अवस्थितिः२आधिकारिकाणाम् ३ यह तीन पद हैं ॥ लोकस्थितिका हेतु जो वेदप्रवर्त्तनादिक अधिकार है तिनके विषे परमेश्वर करके अपान्तरतम वसिष्ठ भृगु नारदादिक नियुक्त हैं इसीसे जितनेकाल अधिकार है उतनेकाल वसिष्ठादिकोंकी स्थिति रहेगी ॥ ३२ ॥

अक्षरधियां त्ववरोधः सामान्यतद्भावाभ्यामौपसदवत्तदुक्तम् ॥ ३३ ॥

इस सूत्रके—अक्षरधियाम् १तु२अवरोधः३ सामान्यतद्भावाभ्याम ४ औपसदवत् ५ तत् ६ उक्तम् ७ यह सात पद हैं ॥ अक्षरब्रह्म न स्थूल है न अणु है न ह्रस्व है न दीर्घ है ऐसे वाजसनेयी शाखामें अक्षरब्रह्मके विषे स्थूलतादि द्वैतका निषेध किया है तहां संशय है कि जिस शाखामें स्थूलतादिद्वैतकी निषेधबुद्धि होती है तहांही तिस बुद्धिको जाननी चाहिये वा सारे ही सर्वनिषेध बुद्धिका उपसंहार करना, तहां कहते हैं कि सारे सर्व निषेध बुद्धिका उपसंहार करना, काहेतें? सारे ही अद्वय ब्रह्मका प्रतिपादन समान है जैसे उपसद कर्मके विषे उद्गाताके वेदमें स्थित पुरोडाश प्रदानमंत्रोंका अध्वर्युके साथ संबंध होता है तैसे इहां भी सर्वनिषेधबुद्धिका अक्षरब्रह्मके साथ संबंध है ॥ ३३ ॥

इयदामननात् ॥ ३४ ॥

इस सूत्रका--इयदामननात् १ यह एकही समस्त पद है ॥ अथर्व

वेदमें अध्यात्मअधिकारके विषै "द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया" इत्यादिमंत्र कहाहै औ कठवल्लीके विषै "ऋतं पिबन्तौ सुकृतस्य लोके" इत्यादि मंत्र कहा है तहां संशय है कि यह विद्या एक है वा नाना हैं तहां कहते हैं कि एक है, काहेतें ? इन दोनों मंत्रोंमें इयत्ता करके परिच्छिन्न द्वित्वसंख्यावाला वेद्यरूप एकही है परिच्छिन्न परिमाण का नाम इयत्ता है ॥ ३४ ॥

अन्तरा भूतग्रामवत्स्वात्मनः ॥ ३५ ॥

इस सूत्रके-अन्तरा १ भूतग्रामवत् २ स्वात्मनः ३ यह तीन पद हैं ॥ वाजसनेयी शाखामें याज्ञवल्क्यके प्रति उषस्ति ब्राह्मणका प्रश्न है कि हे याज्ञवल्क्य जो साक्षात् अपरोक्ष ब्रह्म है औ जो सबके अन्तर आत्मा है सो मेरे प्रति कहो इति । औ यही प्रश्न कहोल ब्राह्मणका है तहां संशय है कि इन दोनों ब्राह्मणोंमें एकविद्या है वा नाना हैं तहां कहते हैं कि एक है, काहेतें ? जैसे श्रुति कहती है कि एक देव सर्वभूतोंके विषै गूढ है सर्वव्यापी है सर्वका अन्तर आत्मा है इति । तैसे इहांभी दोनोंको सर्वान्तरत्वकी अनुपपत्ति होनेतें एक ही अपना आत्मा सर्वान्तरात्मा है इसीसे विद्या एक है ॥ ३५ ॥

अन्यथा भेदानुपपत्तिरिति चेन्नोपदेशान्तरवत् ॥ ३६ ॥

इस सूत्रके-अन्यथा १ भेदानुपपत्तिः २ इति ३ चेत् ४ न ५ उपदेशान्तरवत् ६ यह छह पद हैं॥ जो दोनों ब्राह्मणोंमें एकही विद्या है तो प्रश्नका भेद न होना चाहिये अर्थात् एकही प्रश्न होना चाहिये (इति चेन्न) ऐसे न कहो, काहेतें ? जैसे श्वेतकेतुके प्रति नौबेर "तत्त्वमसि" महावाक्यका उपदेश है परंतु विद्या एक है तैसे इहां भी प्रश्न दो हैं परंतु विद्या एकही है ॥ ३६ ॥

व्यतिहारो विशिंषन्ति हीतरवत् ॥ ३७ ॥

इस सूत्रके-व्यतिहारः १ विशिंषन्ति २ हि ३ इतरवत् ४

यह चार पद हैं ॥ इहां जीव ईश्वरके विशेषणविशेष्यभावका नाम व्यतिहार है ऐतरेय उपनिषद्में कहा है कि जो मैं हूं सो यह ईश्वर है औ जो यह ईश्वर है सो मैं हूं इति । तहां सशय है कि इहां व्यतिहार करके उभयरूप मति करनी वा एकरूप मति करनी ? तहां कहते हैं कि व्यतिहार करके उभयरूप मति करनी,काहेतें?जैसे ध्यानके वास्ते ईश्वरके सर्वात्मत्वादि गुण कहे हैं तैसेही ध्यानके वास्ते व्यतिहार कहा है ऐसे और जगह भी व्यतिहारका श्रवण होता है कि तूं है सो मैं हूं औ मैं हूं सो तूं है इति ॥ ३७ ॥

सैव हि सत्त्यादयः ॥ ३८ ॥

इस सूत्रके–सा१एव२हि३सत्त्यादयः ४ यह चार पद हैं॥वाजसनेयीशाखामें सर्वसे पहिले उत्पन्न होनेवाले सत्यब्रह्म हिरण्यगर्भकी जो कोई उपासना करे सो अच्छे लोकको प्राप्त होताहै ऐसे नामाक्षरकी उपासना कही है सत्त्य इसनाममें स १ त् २ त्य ३ यह तीन अक्षर हैं औ तिसके अनन्तर "तद्यत् तत्सत्यम्" इत्यादि श्रुतिमें कहा है कि जो यह मंडलके विषै औ दक्षिण नेत्रके विषै पुरुष है सो सत्य है इति । तहां संशय है कि यह सत्यविद्या दो हैं वा एक है ? तहां कहते हैं कि एक है, काहेतें ? तद्यत् तत् इन पदों करके पूर्वोक्त सत्यादिगुणविशिष्ट ब्रह्मकाही आकर्षण किया है ३८

कामादीतरत्र तत्र चायतनादिभ्यः ॥ ३९ ॥

इस सूत्रके–कामादि १ इतरत्र२ तत्र ३ च४ आयतनादिभ्यः ५ यह पांच पद हैं ॥ छान्दोग्यमें हृदयरूप ब्रह्मपुरके विषै अन्तराकाशरूप आत्माको कहके तिसके सत्यकामत्व सत्यसंकल्पत्वादिगुण कहे हैं औ वाजसनेयीशाखामें हृदयाकाशके विषै आत्माको कहके तिसके सर्ववशित्वादिगुण कहे हैं तहां संशय है कि यह विद्या एक औ सत्यकामत्वादिगुणोंका परस्परमें योग है वा नहीं? तहां कहते हैं कि

विद्या एक है औ सत्यकामत्वादिगुणका वाजसनेयीशाखामें योग करना औ सर्ववशित्वादि गुणका छान्दोग्यमें योग करना,काहेतें ? दोनों स्थलोंमें हृदयस्थान समान है औ तिसमें जानने योग्य ईश्वर भी समान है ॥ ३९ ॥

आदरादलोपः ॥ ४० ॥

इस सूत्रके--आदरात१ अलोपः २ यह दो पद हैं ॥ छान्दोग्यमें वैश्वानरविद्यामें कहा है कि जो भोजनके वास्ते पहिले स्थालीमें वा पत्तलादिकोंमें अन्न प्राप्त होवै तिसका प्राणाग्निमें होम करना प्रथम आहुति प्राणाय स्वाहा इस मंत्रसे होमनी ऐसे पांच आहुति होमनी इति।तहां संशय है कि भोजनका लोप होनेतें प्राणाग्निहोत्रका लोप होता है वा नहीं ? तहां पूर्वपक्षी कहता है कि नहीं होता, काहेतें ? वैश्वानरविद्याके विषे जाबाल श्रुति प्राणाग्निहोत्रका आदर कहती है भोजनका लोप होवे तो भी प्रतिनिधि न्यायसे जल करके वा अन्य किसी अविरुद्ध द्रव्य करके प्राणाग्निहोत्रका अनुष्ठान करना ॥४०॥

उपस्थितेऽतस्तद्वचनात् ॥ ४१ ॥

इस सूत्रके—उपस्थिते १ अतः२तद्वचनात् ३ यह तीन पद हैं ॥ सिद्धान्ती कहता है कि जो अन्न भोजनके वास्ते प्रथम प्राप्त होवै तिस अन्नसे प्राणाग्निहोत्र करना,काहेतें?श्रुतिने यही नियम किया है जो अन्न भोजनके वास्ते प्रथम प्राप्त होवै तिसीको होमना इति ।इस नियमसे यह भी जानागया कि भोजनका लोप होनेतें प्राणाग्नि होत्रका भी लोप है ॥ ४१ ॥

तन्निर्धारणानियमस्तद्दृष्टेः पृथग्घ्यप्र-तिबन्धः फलम् ॥ ४२ ॥

इस सूत्रके—तन्निर्धारणानियमः १तद्दृष्टेः २ पृथक्३हि४ अप्रति-बन्धः५फलम्६यह छह पद हैं ॥ 'ओं' इस अक्षरकी उद्गीथरूप करके

उपासना करनी इत्यादि विज्ञान कर्मांगके आश्रित हैं तहां संशय है कि यह विज्ञान कर्मके विषै नित्य है वा अनित्य है ? तहां कहते हैं कि अनित्य है, काहेतें ? तिनके निर्धारणका नियम नहीं औ श्रुतिभी कहती है कि जो "ओम्" इस अक्षरको रसतमत्वादिरूप करके जानताहै औ जो नहीं जानता है सो दोनोंही पुरुष कर्म करते हैं औ दोनोंकेही पृथक् कर्मके फलकी सिद्धिका अप्रतिबन्ध है. जो जानता है तिसको अधिक फल होता है औ जो नहीं जानता है तिसको न्यून फल होता है ॥ ४२ ॥

प्रदानवदेव तदुक्तम् ॥ ४३ ॥

इस सूत्रके-प्रदानवत् १ एव २ तत् ३ उक्तम् ४ यह चार पद हैं ॥ वाजसनेयीशाखामें वागादि सर्वके विषै अध्यात्मरूप प्राणको श्रेष्ठ कहाहै औ छान्दोग्यमें अग्न्यादिसर्वके विषै अधिदैवरूप वायुको श्रेष्ठ कहा है तहां संशय है कि, प्राणको औ वायुको भिन्न जानना वा अभिन्न जानना ? तहां कहते हैं कि भिन्न जानना, काहेतैं ? जैसे इंद्र देवता एकही है परन्तु राज १ अधिराज २ स्वराज ३ इन गुणोंके भेदसे तिसका भेद है औ तिसके अर्थ पुरोडाश प्रदानका भी भेद है तैसे इहां भी ध्यानके वास्ते अध्यात्म अधिदैवका विभाग होनेतें प्राणका औ वायुका भेद है ॥ ४३ ॥

लिङ्गभूयस्त्वात्तद्धि बलीयस्तदपि ॥ ४४ ॥

इस सूत्रके-लिङ्गभूयस्त्वात् १ तत् २ हि ३ बलीयः ४ तत् ५ अपि ६ यह छह पद हैं॥अग्निरहस्य ब्राह्मणके विषै वाजसनेयी कहतेहैं कि, मनुष्यकी सौ वर्षकी आयु है तिसके अंतर्गत छत्तीसहजार अहोरात्र हैं तिन करके अविच्छिन्न छत्तीसहजार मनकी वृत्तिहैं यद्यपि मनकी वृत्ति बहुत हैं तथापि छत्तीसहजारकीही गणना करते हैं तिन अपनी वृत्तियोंको मनहै सो अग्निरूप करके देखताभया ऐसेही वागा

दिक अपनी अपनी वृत्तियोंको अग्निरूप करके देखतेभये इति। तहां संशय है कि यह वृत्ति यज्ञका अंगहै वा स्वतंत्र केवल विद्यारूप है? तहां कहते हैं कि केवल विद्यारूप है, काहेतें? इस अग्निरहस्यब्राह्मण के विषै बहुतसे लिङ्ग केवल विद्याकोही कहते हैं औ प्रकरणसे लिङ्ग बलवान् होता है ऐसे पूर्वकांडके विषै जैमिनि आचार्यने कहा है४४

पूर्वविकल्पः प्रकरणात्स्यात्क्रियामानसवत् ॥ ४५ ॥

इस सूत्रके--पूर्वविकल्पः १ प्रकरणात् २ स्यात् ३ क्रियामानसवत्४ यह चार पद हैं ॥ पूर्वपक्षी कहता है-कि या मनोवृत्तिरूप अग्नि है सो केवल विद्यारूप नहीं है किंतु इनके पूर्व क्रियारूप अग्निका प्रकरण होनेतें तिसीके विकल्पविशेषका उपदेश है, औ जो यह कहा कि प्रकरणसे लिङ्ग बलवान् होता है सो कहना ठीक है परन्तु इहां लिङ्ग बलवान् नहींहै औ जैसे द्वादशरात्र कर्मके विषै दशमें दिन मानस ग्रहकी कल्पना करते हैं तिस मानसग्रहके पूर्वक्रियाका प्रकरण होनेतें मानसग्रह भी क्रियाका शेष है तैसे इहां भी जानना चाहिये ॥ ४५ ॥

अतिदेशाच्च ॥ ४६ ॥

इस सूत्रके-अतिदेशात् १ च २ यह दो पद हैं ॥ यह मनोवृत्तिरूप छत्तीसहजार अग्नि हैं तिनके विषै एक एक अग्निक्रिया अग्निके सदृश है इस अतिदेशसे यही निश्चय भया कि यह मनोवृत्तिरूप अग्नि क्रियाका अंग है ॥ ४६ ॥

विद्यैव तु निर्धारणात् ॥ ४७ ॥

इस सूत्रके-विद्या १ एव २ तु ३ निर्धारणात् ४ यह चार पद हैं॥ 'तु'शब्द पूर्वपक्षकी निवृत्तिके अर्थ है। सिद्धान्ती कहताहै-कि यह मनोवृत्तिरूप अग्नि स्वतंत्र केवल विद्यारूप है क्रियाका अंग नहीं ऐसा श्रुति करके निर्धारण है ॥ ४७ ॥

दर्शनाच्च ॥ ४८ ॥

इस सूत्रके–दर्शनात् १ च २ यह दो पद हैं ॥ इन मनोवृत्तिरूप अग्नियोंकी स्वतंत्रताका बोधक लिङ्ग भी दीखता है सो "लिङ्गभूयस्त्वात् तद्धि बलीयस्तदपि" इस सूत्रके विषे दिखाया है ॥ ४८ ॥

प्रकरणकी सामर्थ्यसे स्वतंत्रपक्षका बाध होनेतें मनोवृत्तिरूप अग्नि क्रियाके अंग हैं इस शंकाका उत्तर कहते हैं सूत्रकार ॥

श्रुत्यादिबलीयस्त्वाच्च न बाधः ॥ ४९ ॥

इस सूत्रके–श्रुत्यादिबलीयस्त्वात १ च २ न ३ बाधः ४ यह चार पद हैं ॥ प्रकरणकी सामर्थ्यसे स्वतंत्रपक्षका बाध नहीं हो सकता, काहेतें ? स्वतंत्रपक्षको कहनेवाले श्रुति लिङ्ग वाक्य यह तीनों प्रकरणसे बलवान् हैं ॥ ४९ ॥

अनुबन्धादिभ्यः प्रज्ञान्तरपृथक्त्ववद्दृष्टश्च तदुक्तम् ॥ ५० ॥

इस सूत्रके–अनुबन्धादिभ्यः १ प्रज्ञान्तरपृथक्त्ववत २ दृष्टः ३ च ४ तत् ५ उक्तम् ६ यह छह पद हैं ॥ अनुबन्धादिकोंसे प्रकरणको बाधके मनोवृत्तिरूप अग्नि स्वतंत्र हैं संपतके वास्ते जो उपासना तिस उपासनाके वास्ते मनोवृत्तिके विषे क्रियाके अंगको जोडनेका नाम अनुबन्ध है ऐसेही श्रुति कहती है कि अग्निका आधान, इष्टकाका चयन, पात्रका ग्रहण इत्यादि जो यज्ञके कर्म हैं सो सर्व मनोमय करना इति । औ जैसे शाण्डिल्यविद्यादिरूप प्रज्ञान्तर क्रियासे भिन्न है तैसे मनोवृत्तिरूप अग्नि भी क्रियासे भिन्न है क्रियाका अंग नहीं ऐसेही पूर्वकांडकी श्रुतिमें दीखता है ॥ ५० ॥

न सामान्यादप्युपलब्धेर्मृत्युवन्न हि लोकापत्तिः॥५१॥

इससूत्रके–न १ सामान्यात् २ अपि ३ उपलब्धेः ४ मृत्युवत् ५ न ६ हि ७ लोकापत्तिः ८ यह आठ पद हैं ॥ जो यह कहा कि जैसे द्रा-

दशरात्र कर्मके विषै दशमें दिन मानसग्रहकी कल्पना करते हैं सो मानसग्रह क्रियाका अंग है तैसे मनोवृत्तिरूप अग्निभी क्रियाका अंग है सो कहना ठीक नहीं, काहेतैं? पूर्वोक्त श्रुत्यादिरूप हेतुसे मनोवृत्तिरूप अग्निकी केवल विद्यारूपसे उपलब्धि है औ जैसे वेदमें आदित्यको औ अग्निको मृत्यु कहे हैं यद्यपि इन दोनोंके विषै मृत्यु शब्दका प्रयोग समान है तथापि यह दोनों अत्यंत सम नहीं औ यह भी कहा है कि यह लोक अग्नि है तिसका आदित्य इंधन है परंतु इंधनकी समानतासे इस लोकको अग्निभावकी प्राप्ति नहीं तैसे मानसग्रहकी यत्किंचित् समानतासे मनोवृत्तिरूप अग्नि क्रियाके अंग नहीं ॥ ५१ ॥

परेण च शब्दस्य ताद्विध्यं भूयस्त्वात्त्वनुबन्धः ॥ ५२ ॥

इस सूत्रके–परेण १ च २ शब्दस्य ३ ताद्विध्यम् ४ भूयस्त्वात् ५ तु ६ अनुबन्धः ७ यह सात पद हैं ॥ पूर्व उत्तर ब्राह्मणोंके विषै स्वतंत्र विद्याका विधान होनेतैं मध्यब्राह्मणके विषैभी स्वतंत्रविद्याका विधानही शब्दका प्रयोजन है । प्रश्न–जो मनोवृत्तिरूप अग्नि क्रियका अंग नहीं तो क्रिया अग्निके साथ तिनका पाठ क्यों है? उत्तर विद्यामें अग्निके बहुत अवयवोंका संपादन करना, इसीसे क्रिया अग्निके साथ तिनका अनुबन्ध है क्रियाका अंग मानके नहीं॥५२॥

एक आत्मनः शरीरे भावात् ॥ ५३ ॥

इस सूत्रके--एके १ आत्मनः २ शरीरे ३ भावात् ४ चार पद हैं ॥ बन्धमोक्षकी सिद्धिके वास्ते देहसे पृथक् आत्माके सद्भावका विचार करते हैं देहात्मवादी लोकायतिक चार्वाक कहते हैं कि देहसे न्यारा आत्मा नहीं है, काहेतैं? प्राण चेष्टा चेतनत्व स्मृत्यादिक आत्माके धर्म हैं सो देहके होतेही होते हैं औ देहके न होते नहीं होते हैं इसीसे देहके धर्म हैं औ देहका नाम ही आत्मा है और कोई आत्मा नहीं ५३

व्यतिरेकस्तद्भावाभावित्वान्नतूपलब्धिवत् ॥ ५४ ॥

इस सूत्रके-व्यतिरेकः १ तद्भावाभावित्वात् २ न ३ तु ४ उपलब्धिवत् ५ यह पांच पद हैं ॥ सिद्धान्ती कहता है-कि देह आत्मा नहीं है किंतु देहसे आत्मा जुदा है, काहेतें ? देहके धर्म रूपादिक मृतदेहके विषे भी रहते हैं औ तिनका दूसरे पुरुषको ज्ञान होता है औ आत्माके धर्म प्राण चेष्टादिक मृतदेहके विषै नहीं रहते हैं औ न तिनका दूसरे पुरुषको ज्ञान होता है ॥ ५४ ॥

अङ्गावबद्धास्तु न शाखासु हि प्रतिवेदम् ॥ ५५ ॥

इस सूत्रके-अङ्गावबद्धाः १ तु २ न ३ शाखासु ४ हि ५ प्रतिवेदम् ६ यह छह पद हैं ॥ उद्गीथाऽवयव ओंकारमें प्राण दृष्टि करनी उक्थाख्य शास्त्रमें पृथिवी दृष्टि करनी इष्टकाचित अग्निमें लोक दृष्टि करनी ऐसे उद्गीथादि कर्मोंके अंगके आश्रित उपासना कही है तहां संशय है कि जिस वेदकी शाखामें जो उपासना कही है सो वहांही जाननी वा सर्व उपासना सर्वशाखाओंमें जाननी ? तहां कहतेहैं कि जो उपासना जिस शाखामें कहीहै सो वहांही नहीं जाननी किंतु सर्व उपासना सर्वशाखाओंमें जाननी, काहेतें ? उद्गीथादि श्रुति सर्वत्र समानहैं ५५

मन्त्रादिवद्वाऽविरोधः ॥ ५६ ॥

इस सूत्रके-मंत्रादिवत् १ वा २ अविरोधः ३ यह तीन पद हैं ॥ अथवा मंत्रादिकोंकी न्याईं अविरोध है जैसे अन्यशाखागत जो मंत्र कर्म गुण तिनका शाखान्तरमें उपसंहार होता है तैसे अन्य शाखागत उद्गीथादि कर्ममें शाखान्तरगत उपासनाका उपसंहार जानना चाहिये ॥ ५६ ॥

भूम्नः क्रतुवज्ज्यायस्त्वं तथा हि दर्शयति ॥ ५७ ॥

इस सूत्रके-भूम्नः १ क्रतुवत् २ ज्यायस्त्वम् ३ तथा ४ हि ५ दर्शयति ६

यह छह पद हैं॥केकेय देशके अश्वपति नाम राजाके समीप प्राची-नशालको आदिलेके छह ऋषि विद्याके वास्ते जातेभये तिस आ-ख्यायिकामें व्यस्त समस्त वैश्वानरकी उपासनाका श्रवण है द्युलो-कादि प्रत्येक अवयवके विषे वैश्वानरकी उपासना व्यस्तउपासना है औ सर्व अवयवके विषे समस्तउपासना है तहां संशय है कि व्य-स्त समस्त दोनों उपासना करनी वा समस्तही करनी?तहां कहते हैं कि जैसे दर्श पूर्णमासादियज्ञमें सर्व अंगसहित प्रधान एकही प्रयोग श्रेष्ठ है तैसे भूमा वैश्वानरकी समस्त उपासनाही श्रेष्ठ है ऐसेही श्रुति कहती है ॥ ५७ ॥

नानाशब्दादिभेदात् ॥ ५८ ॥

इस सूत्रका--नानाशब्दादिभेदात्१ यह एकही समस्त पदहै॥ जो यह कहा कि वैश्वानरकी समस्त उपासना श्रेष्ठ है तहां ऐसी बुद्धि होतीहै कि औरभी जो भिन्नभिन्न श्रुतिके विषे ईश्वर प्राणादिकोंकी उपासना कही हैं सो समस्तही श्रेष्ठ हैं, काहेतें ? यद्यपि उपासनाकी प्रतिपादक श्रुति अनेक हैं तथापि उपासनाके योग्य ईश्वर एक है औ प्राणभी एकहै तहां कहतेहैं कि उपास्यका अभेदहै परंतु उपासनाका भेद है, काहेतें? नाना शब्दका भेद होनेतें कर्मका भेद है औ कर्मका भेद होनेतें उपासनाका भेद है ॥ ५८ ॥

विकल्पोऽविशिष्टफलत्वात् ॥ ५९ ॥

इस सूत्रके--विकल्पः १अविशिष्टफलत्वात्२यह दो पद हैं॥विद्याका स्वरूप कहके अब अनुष्ठान प्रकार कहते हैं--जो यह विद्या कही हैं तिनका समुच्चय जानना वा समुच्चय विकल्प दोनों जानने वा विकल्पही जानना? एक विद्यामें दूसरी विद्याको मिलनेका नाम समुच्चयहै औ नहीं मिलानेका नाम विकल्प है. तहां कहते हैं कि विकल्पही जानना, काहेतें? यह जो अहंग्रह विद्या हैं तिनका उपास्य ईश्वरादिकों

का साक्षात्काररूप फल एकही है जहां एकविद्यासे साक्षात्कार होवै तहां दूसरी निरर्थक है ॥ ५९ ॥

काम्यास्तु यथाकामं समुच्चीयेरन्न वा पूर्वहेत्वभावात्६०

इस सूत्रके–काम्याः १ तु २ यथाकामम् ३ समुच्चीयेरन् ४ न ५ वा ६ पूर्वहेत्वभावात् ७ यह सात पद हैं ॥ यह वायु दिशाका वत्स है ऐसे जो पुरुष उपासना करता है सो पुत्रमरणनिमित्त रोदनको नहीं पाता है इत्यादि काम्यविद्या कही हैं तिनका समुच्चय उपासक अपनी इच्छासे करे वा नहीं करे इसमें कोई पूर्व हेतु नहीं कहा है ॥ ६० ॥

अङ्गेषु यथाश्रयभावः ॥ ६१ ॥

इस सूत्रके–अङ्गेषु १ यथाश्रयभावः २ यह दो पद हैं ॥ वेदत्रयके विषै कर्मके अङ्ग जो उद्गीथादि तिनके आश्रित जो उपासना तिनका समुच्चय करना वा नहीं ? तहां पूर्वपक्षी कहता है–कि जैसे क्रतुके अनुष्ठानमें तदाश्रित अंगोंके समुच्चयका नियम है तैसे अंगोंके अनुष्ठानमें तदाश्रित उपासनाके समुच्चयकाभी नियम है ॥ ६१ ॥

शिष्टेश्च ॥ ६२ ॥

इस सूत्रके–शिष्टेः १ च २ यह दो पद हैं॥ जैसे वेदत्रयमें कर्मके अंग स्तोत्रादिकोंका विधान है औ समुच्चय है तैसे अंगाश्रित उपासनाका भी विधान है औ समुच्चय है ॥ ६२ ॥

समाहारात ॥ ६३ ॥

इस सूत्रका–समाहारात् १ यह एकही पद है ॥ ऋग्वेदियोंका जो प्रणव है सोई सामवेदियोंका उद्गीथ है छान्दोग्यमें प्रणव उद्गीथका एकही ध्यान कहा है जब उद्गाता स्वरादिउच्चारणके प्रमादसे अपने उद्गीथको सदोष देखता है तब होताके कर्मसे तिसका अनुसमाहार करता है अर्थात् तिसको अनुसमाहार करके निर्दोष करता है,

काहेतें ? उद्गीथ प्रणवका ध्यान एक है यह समाहार भी उपासनाके समुच्चयमें हेतु है ॥ ६३ ॥

गुणसाधारण्यश्रुतेश्च ॥ ६४ ॥

इस सूत्रके—गुणसाधारण्यश्रुतेः १च२ यह दो पद हैं ॥ विद्याका गुणभूत ओंकार वेदत्रयके विषै साधारण है औ ओंकार करकेही वेदत्रयका कर्म प्रवृत्त होता है औ ओंकारके आश्रित जो उपासना है तिनका समुच्चय है ॥ ६४ ॥

न वा तत्सहभावाश्रुतेः ॥ ६५ ॥

इस सूत्रके—न १ वा २ तत्सहभावाश्रुतेः ३ यह तीन पद हैं ॥ सिद्धान्ती कहता है—कि अंगाश्रित उपासनाके समुच्चयका नियम नहीं है, काहेतें ? जैसे वेदत्रयविहित स्तोत्रादि अंगोंके सहभावका श्रवण है तैसे अंगाश्रित उपासनाके सहभावका श्रवण नहीं है॥६५॥

दर्शनाच्च ॥ ६६ ॥

इस सूत्रके—दर्शनात् १ च २ यह दो पद हैं॥ उपासनाके समुच्चयका नियम नहीं,काहेतें? श्रुति कहती है—कि यज्ञके विषै ऋग्वेदादिविहित अंगका लोप होवै तो व्याहृतिहोम प्रायश्चित्तादि विज्ञानवाला ब्रह्माहै सो यज्ञ यजमान ऋत्विज इन सर्वकी रक्षा करे इति। जो उपासनाका समुच्चय होवै तो सर्वही सर्वविज्ञानवाले होवैं तब ब्रह्मा किसकी रक्षा करे उपासककी इच्छासे समुच्चय वा विकल्प है एकका नियम नहीं ॥ ६६ ॥

इति श्रीमन्मौक्तिकनाथयोगिविरचितायां ब्रह्मसूत्रसारार्थप्रदीपिकायां तृतीयाध्यायस्य तृतीयः पादः ॥ ३ ॥

तृतीयाध्याये चतुर्थः पादः ।

पुरुषार्थोऽतः शब्दादिति बादरायणः ॥ १ ॥

इस सूत्रके—पुरुषार्थः १ अतः २ शब्दात् ३ इति ४ बादरायणः५ यह पांच पद हैं ॥ आत्मज्ञान अधिकारीद्वारा कर्मके विषे प्रवेश करता है वा स्वतंत्र पुरुषार्थको सिद्ध करताहै ? तहां सिद्धान्ती कहताहै—कि वेदान्तविहित स्वतंत्र आत्मज्ञानसे पुरुषार्थकी सिद्धि होती है ऐसे बादरायण आचार्य मानताहै, काहेतें? "तरति शोकमात्मवित्" इत्यादि श्रुति केवल आत्मज्ञानको पुरुषार्थका हेतु कहती है ॥ १ ॥

शेषत्वात्पुरुषार्थवादो यथाऽन्येष्विति जैमिनिः ॥२॥

इस सूत्रके—शेषत्वात् १ पुरुषार्थवादः २ यथा३ अन्येषु ४इति ५ जैमिनिः ६ यह छह पद हैं ॥ आत्माको कर्त्ता होनेतें कर्मका शेष है औ तिसका ज्ञानभी व्रीहिप्रोक्षणादिकोंकी न्याई विषयद्वारा कर्मके साथ सम्बंधको प्राप्त होता है।औ जैसे "यस्य पर्णमयी जुहूर्भवति न स पापं श्लोकं शृणोति" यह अर्थवाद है तैसे पुरुषार्थवाद भी अर्थ वाद है ऐसे जैमिनि अचार्य मानता है। जिसके पर्णमयी जुहू होती है सो पापरूपी श्लोक अर्थात् अपकीर्तिको नहीं सुनता है इति श्रुत्यर्थः ॥ २ ॥

आचारदर्शनात् ॥ ३ ॥

इस सूत्रका--आचारदर्शनात्१ यह एकही समस्त पद है ॥जनक अश्वपति उद्दालक व्यास याज्ञवल्क्य इनको आदिलेके ब्रह्मवेत्ता गृहस्थाश्रममें रहके यज्ञादिकर्मको करते भये इससे यही निश्चय भया कि केवल ज्ञानसे पुरुषार्थकी सिद्धि नहीं होसकती ॥ ३ ॥

तच्छ्रुतेः ॥ ४ ॥

इस सूत्रका--तच्छ्रुतेः १ यह एकही पद है ॥ श्रुति कहती है--कि

विद्याकरके श्रद्धाकरके जो कर्म होता है सो वीर्यवत्तर होता है इससे यही जानागया कि केवल विद्या पुरुषार्थका हेतु नहीं किंतु विद्या कर्मका शेष है ॥ ४ ॥

समन्वारम्भणात् ॥ ५ ॥

इस सूत्रका--समन्वारम्भणात् १ यह एकही पद है ॥ फलके आरम्भमें विद्या कर्म इन दोनोंके सहभावका श्रवण होनेतें विद्या स्वतंत्र नहीं है। श्रुति कहती है कि जब पुरुष परलोकको जाता है तब विद्या कर्म यह दोनों तिसके संगही जाते हैं ॥ ५ ॥

तद्वतो विधानात् ॥ ६ ॥

इस सूत्रके--तद्वतः १ विधानात् २ यह दो पद हैं ॥ श्रुति कहती है--कि जो आचार्यकुलमें वेदका अध्ययन करे गुरुकी शुश्रूषा करे पीछे व्रतका विसर्जन करके दाराको ग्रहण करे कुटुंबमें स्थित रहे पवित्र देशमें वेदका अध्ययन करताहुआ वेदविहितकर्मको यथा शक्ति करे सो ब्रह्मलोकको प्राप्त होता इससे भी यही जानागया कि सर्व वेदार्थके ज्ञानवाले पुरुषको कर्मका अधिकार है स्वतंत्र विद्याफलका हेतु नहीं है ॥ ६ ॥

नियमाच्च ॥ ७ ॥

इस सूत्रके--नियमात् १ च २ यह दो पदहैं ॥ केवलविद्याफलका हेतु नहीं है किंतु विद्या कर्मका शेष है, काहेतें? "कुर्वन्नेवेह कर्माणि" इत्यादि श्रुति नियम करती है कि विहितकर्मको करता हुआ सौ वर्ष जीवनेकी इच्छा करे ॥ ७ ॥

अधिकोपदेशात्तु बादरायणस्यैवं तद्दर्शनात् ॥ ८ ॥

इस सूत्रके--अधिकोपदेशात् १ तु २ बादरायणस्य ३ एवम् ४ तद्दर्शनात ५ यह पांच पद हैं ॥ 'तु' शब्द पूर्वपक्षकी निवृ-

त्तिके अर्थ है जो यह कहा कि कर्मका शेष होनेतें पुरुषार्थवाद अर्थवाद है सो कहना ठीक नहीं, काहेतें ? संसारी जीवात्मासे अधिक असंसारी ईश्वरात्माका वेदान्तमें उपदेश है. औ ईश्वरात्माका ज्ञान कर्मका प्रवर्तक नहीं किंतु कर्मका उच्छेदक है औ "यः सर्वज्ञः सर्ववित्" इत्यादि श्रुति जीवात्मासे ईश्वरात्माको अधिक कहती है इसीसे "पुरुषार्थोऽतः शब्दात्" यह बादरायण आचार्यका मतही समीचीन है ॥ ८ ॥

तुल्यं तु दर्शनम् ॥ ९ ॥

इस सूत्रके-तुल्यम् १ तु २ दर्शनम् ३ यह तीन पद हैं ॥ जो यह कहा कि आचारदर्शनसे विद्या कर्मका शेष है सो कहना समीचीन नहीं है, काहतें ? विद्या कर्मका शेष नहीं है इस अर्थमें भी आचार-दर्शन तुल्य है. श्रुति कहती है-कि ब्राह्मण है सो पुत्रैषणा वित्तैषणा लोकैषणासे दूर होके भिक्षाटन करतेभये इति. औ याज्ञवल्क्यादिकों के संन्यासका श्रवण होनेतें विद्या कर्मका शेष नहीं है ॥ ९ ॥

असार्वत्रिकी ॥ १० ॥

इस सूत्रका-असार्वत्रिकी १ यह एकही पद है ॥ जो श्रुति विद्या करके करे कर्मको वीर्यवत्तर कहती है तिस श्रुतिका सर्व विद्याके साथ सम्बन्ध नहीं है किंतु प्रकृत उद्गीथविद्याके साथ ही तिसका सम्बन्ध है ॥ १० ॥

विभागः शतवत् ॥ ११ ॥

इस सूत्रके-विभागः १ शतवत् २ यह दो पद हैं ॥ जो यह कहा कि जब पुरुष परलोकको जाता है तब विद्या कर्म यह दोनों तिसके संगही जाते हैं सो कहना ठीक नहीं, काहेतें ? इहां विभाग जानना चाहिये जैसे किसीने कहा कि इन दो पुरुषोंको सौ

रुपैये देओ तब पचास एकको औ पचास दूसरेको देतेहैं तैसे इहां भी इच्छावाले संसारीपुरुषके संग कर्म जाता है औ इच्छारहित मुमुक्षुपुरुषके संग विद्या जाती है ऐसे जानना चाहिये ॥ ११ ॥

अध्ययनमात्रवतः ॥ १२ ॥

इस सूत्रका--अध्ययनमात्रवतः १ यह एकही पद है ॥ जो यह कहा कि आचार्यकुलमें वेदका अध्ययन करके पीछे गृहस्थाश्रममें रहके कर्मको करे सो कहना अध्ययनमात्रवाले पुरुपके प्रति है औ जिस पुरुषको वेदके अर्थका ज्ञान है तिसके प्रति नहीं है ॥ १२ ॥

नाविशेषात् ॥ १३ ॥

इस सूत्रके--न १ अविशेषात् २ यह दो पद हैं ॥ "कुर्वन्नेवेह कर्माणि" इत्यादिनियम श्रवणके विषै विशेष करके विद्वान्को कर्म करने का नियम नहीं किंतु अविशेष करके नियमका विधान है ॥ १३ ॥

स्तुतयेऽनुमतिर्वा ॥ १४ ॥

इस सूत्रके--स्तुतये १ अनुमतिः २ वा ३ यह तीन पद हैं ॥ "कुर्वन्नेवेह कर्माणि" इहां और भी विशेष कहते हैं--यद्यपि प्रकरणके सामर्थ्यसे विद्वान्का कर्मके साथ सम्बन्ध है तथापि यह विद्याकी स्तुतिके वास्ते कर्मका अनुज्ञान कहा है ॥ १४ ॥

कामकारेण चैके ॥ १५ ॥

इस सूत्रके--कामकारेण १ च २ एके ३ यह तीन पद हैं ॥ प्रत्यक्ष है विद्याका फल जिनके ऐसे कोई विद्वान् फलान्तरके साधन प्रजादिकोंके विषै प्रयोजनका अभाव कहते हैं औ कहते हैं कि अपनी इच्छासे कर्म प्रजादिकोंका त्याग करना चाहिये ॥ १५ ॥

उपमर्द्दश्च ॥ १६ ॥

इस सूत्रके-उपमर्द्दम्१च२ यह दो पद हैं ॥ कर्माधिकारका हेतु औ क्रियाकारकका फलरूप औ अविद्याका कार्य जो सर्वप्रपंच तिसके स्वरूपका उपमर्द्द विद्याके सामर्थ्यसे होता है ऐसे श्रुति कहती है इससे यही निश्चय भया कि विद्या स्वतंत्र है कर्मका शेष नहीं ॥ १६ ॥

ऊर्ध्वरेतःसु च शब्दे हि ॥ १७ ॥

इस सूत्रके-ऊर्ध्वरेतःसु १ च २ शब्दे ३ हि ४ यह चार पद हैं ॥ ऊर्ध्वरेत आश्रममें विद्याका ग्रहण है परंतु तहां विद्याकर्मका अंग नहीं, काहेतें? ऊर्द्धरेता अग्निहोत्रादि वैदिक कर्मको नहीं करते हैं । शंका-ऊर्द्धरेताके आश्रमका वेदमें श्रवण नहीं है ? समाधान-वैदिकशब्दोंमें ऊर्द्धरेताके आश्रमका श्रवण है कि अरण्यमें श्रद्धा तपका सेवना औ इस आत्मलोककी इच्छा करके संन्यास धारना औ ब्रह्मचर्यसे ही संन्यास धारना यह तीन धर्मके स्कन्ध हैं इति १७

परामर्शं जैमिनिरचोदना चापवदति हि ॥ १८ ॥

इस सूत्रके-परामर्शम् १ जैमिनिः २ अचोदना ३ च४अपवद-ति ५ हि ६ यह छह पद हैं ॥ "त्रयो धर्मस्कन्धाः" इत्यादि शब्दोंसे ऊर्द्धरेताके आश्रमकी सिद्धि नहीं होसकती,काहेतें? इन शब्दोंके विषे पूर्व सिद्ध आश्रमोंका परामर्श है विधि नहीं ऐसे जैमिनि आचार्य मानता है. इहां सिद्धवस्तुके कथनका नाम परामर्श है औ इहां कोई चोदनावाचक शब्द भी नहीं है औ आश्रमान्तरका निषेध भी श्रुति कहती है ॥ १८ ॥

अनुष्ठेयं बादरायणः साम्यश्रुतेः ॥ १९ ॥

इस सूत्रके-अनुष्ठेयम्१बादरायणः२साम्यश्रुतेः३यह तीन पदहैं॥

आश्रमान्तरका अनुष्ठान करना ऐसे बादरायण आचार्य मानताहै, काहेतें? गार्हस्थ्यके परामर्शकी श्रुतिके समानहीं आश्रमान्तरके परामर्शकी "त्रयो धर्मस्कन्धाः" इत्यादि श्रुति है. जैसे इहां अन्यश्रुतिविहित गार्हस्थ्यका परामर्श करते हो तैसेही अन्य श्रुतिविहित आश्रमान्तरका "त्रयो धर्मस्कन्धाः" इहां परामर्श करना चाहिये १९

विधिर्वा धारणवत् ॥ २० ॥

इस सूत्रके–विधिः १ वा २ धारणवत् ३ यह तीन पद हैं ॥ जैसे महापितृयज्ञके विषै "अधस्तात् समिधं धारयन्" इत्यादि वाक्यकरके हविषके नीचे समिधका धारण करनेसेही अधस्तात्' इत्यादि वाक्योंके एकवाक्यताकी प्रतीति होती है परंतु अपूर्व होनेतें ऊपर भी समिधधारणका विधान है तैसे इहां भी परामर्शमात्र नहीं है किंतु आश्रमान्तरकी विधि है इसीसे विद्या स्वतंत्र है कर्मका शेष नहीं ॥ २० ॥

स्तुतिमात्रमुपादानादिति चेन्नापूर्वत्वात् ॥ २१ ॥

इस सूत्रके–स्तुतिमात्रम् १ उपादानात् २ इति ३ चेत् ४ न ५ अपूर्वत्वात् ६ यह छह पद हैं ॥ पृथिवी जल औषधि पुरुष वाक् ऋक् साम इन सर्वसे ओंकाररूप उद्गीथ श्रेष्ठ है औ परब्रह्मकी प्रतीक होनेतें उपासनाके योग्य है ऐसे श्रुति कहती है. तहां संशय है कि यह श्रुति उद्गीथादिकोंकी स्तुतिके अर्थ है वा उपासनाविधिके अर्थ है ? तहां पूर्वपक्षी कहता है कि कर्मके अंग उद्गीथादिकोंको लेके श्रवण होनेतें स्तुतिके अर्थ है सो कहना ठीक नहीं, काहेतें ? इन श्रुतियोंका स्तुतिमात्र प्रयोजन नहीं है किंतु अपूर्व प्रयोजन है सो अपूर्व उपासना विधिके अर्थ होनेतेंही सिद्ध होता है ॥ २१ ॥

भावशब्दाच्च ॥ २२ ॥

इस सूत्रके–भावशब्दात् १ च २ यह दो पद हैं ॥ "उद्गीथमुपा-

सीत" इत्यादि विधिशब्दोंका स्पष्ट श्रवण होनेतें उद्गीथादि श्रुति उपासना विधिके अर्थ हैं स्तुतिमात्रके अर्थ नहीं हैं ॥ २२ ॥

पारिप्लवार्था इति चेन्न विशेषितत्वात्॥ २३ ॥

इस सूत्रके—पारिप्लवार्थाः १ इति २ चेत् ३ न ४ विशेषितत्वात् ५ यह पांच पद हैं॥ वेदान्तके विषे आख्यानश्रुति कहती है कि याज्ञवल्क्यके मैत्रेयी कात्यायनी यह दो भार्या होती भई दिवोदासका पुत्र प्रतर्दन इंद्रके प्रियधाम स्वर्गको जाताभया जानश्रुति राजा बहुदायी होता भया इति । तहां संशय है कि यह श्रुति । परिप्लव प्रयोगके अर्थ है वा सन्निहित विद्याकी प्राप्तिके अर्थ है इति। अश्वमेधयज्ञमें पुत्र अमात्यादिसहित राजाके अर्थ नाना विद्याके आख्यानका कथन करनेका नाम पारिप्लवप्रयोग है तहां पूर्वपक्षी कहताहै कि आख्यान का कथन होनेतें यह श्रुति पारिप्लवप्रयोगके अर्थ हैं सो कहना ठीक नहीं, काहेतें ? जो श्रुति पारिप्लवप्रयोगके अर्थ हैं तिनके विषे "मनुर्वैवस्वतो राजा यमो वैवस्वतः वरुण आदित्यः"इत्यादि विशेषणोंका श्रवण है औ इहां इन विशेषणोंका श्रवण है नहीं इसीसे सन्निहित विद्याकी प्राप्तिके अर्थ हैं ॥ २३ ॥

तथा चैकवाक्यतोपबन्धात् ॥ २४ ॥

इस सूत्रके--तथा १ च २ एकवाक्यतोपबन्धात् ३ यह तीन पद है॥ सन्निहितविद्याके साथ एकवाक्यताका सम्बन्ध होनेतें आख्यानसन्निहितविद्याके प्रतिपादक हैं मैत्रेयी ब्राह्मणके विषे " आत्मा वा अरे द्रष्टव्यः" इस विद्याके साथ आख्यानकी एकवाक्यता है औ प्रतर्दनके आख्यानकी "प्राणोस्मि प्रज्ञात्मा" इस विद्याके साथ एकवाक्यता है ऐसे और भी जानलेना ॥ २४ ॥

अत एव चाग्नीन्धनाद्यनपेक्षा ॥ २५ ॥

इस सूत्रके—अतः १ एव २ च ३ अग्नीन्धनाद्यनपेक्षा ४ यह

चार पद हैं ॥ विद्याको पुरुषार्थका हेतु होनेतें अपनेफलकी सिद्धिके वास्ते आश्रमके कर्म अग्नि इन्धनादिकोंकी अपेक्षा नहीं करते२५

सर्वापेक्षा च यज्ञादिश्रुतेरश्ववत् ॥ २६ ॥

इस सूत्रके—सर्वापेक्षा १ च २ यज्ञादिश्रुतेः ३ अश्ववत् ४ यह चार पद हैं ॥ विद्याको आश्रम कर्मकी सर्वथा अपेक्षा नहीं है वा कोई अपेक्षा है तहां कहते हैं कि जैसे अश्वको हलके जुतनेकी योग्यता नहीं है औ रथके जुतनेकी योग्यता है तैसे विद्याको अपने फलकी सिद्धिके वास्ते कोई कर्मकी अपेक्षा नहीं है औ अपनी सिद्धिके वास्ते सर्वकर्मकी अपेक्षा है, काहेतें ? यज्ञादि श्रुति कहती है कि ब्राह्मण हैं सो वेदानुवचन करके यज्ञ करके दानकरके तप करके तिस ब्रह्मको जानते हैं ॥ २६ ॥

शमदमाद्युपेतः स्यात्तथापि तु तद्विधेस्तद-
ङ्गतया तेषामवश्यानुष्ठेयत्वात् ॥ २७ ॥

इस सूत्रके—शमदमाद्युपेतः १ स्यात् २ तथा ३ अपि ४ तु ५ तद्विधेः ६ तदङ्गतया ७ तेषाम् ८ अवश्यानुष्ठेयत्वात् ९ यह नौ पद हैं ॥ विधिका अभाव होनेतें विद्याके साधन यज्ञादिक नहीं हैं औ "यज्ञेन विविदिषन्ति" यह श्रुति विद्याकी स्तुति करती है ऐसे कोई कहे तो विद्याकी इच्छावाला शम दमादिकोंका ग्रहण करे, काहेतें? शमदमादिक विद्याके साधन कहेहैं तिनका अनुष्ठान अवश्य करना चाहिये औ गीतास्मृतिमें यज्ञादिक विद्याके साधन कहे हैं तिनका अनुष्ठान भी करना चाहिये यज्ञादिक बहिरंग साधन हैं और शमादिक अन्तरंग साधन हैं ॥ २७ ॥

सर्वान्नानुमतिश्च प्राणात्यये तद्दर्शनात् ॥ २८ ॥

इस सूत्रके—सर्वान्नानुमतिः १ च २ प्राणात्यये ३ तद्दर्शनात् ४ यह चार पद हैं ॥ छान्दोग्यमें औ वाजसनेयीशाखामें प्राणसंवादके

विषै श्रवण होताहै कि जो प्राणको जानता है तिसके सर्व अन्य भक्ष्य हैं तहां संशय है कि यह सर्व अन्नका अनुज्ञान है सो शमादिकोंकी न्याईं विद्याका अंग है वा विद्याकी स्तुतिके अर्थ है ? तहां कहते हैं कि विद्याकी स्तुतिके अर्थ है, काहेतें ? प्राणनाशक आपत्कालके विना अभक्ष्य भक्षण करना योग्य नहीं औ इस अर्थके विषै चाक्रायण ऋषिकी आख्यायिकाहै सो ऐसेहै कि एकसमें कुरुक्षेत्रके विष दुर्भिक्ष होताभया तब चाक्रायण ऋषि अपनी भार्या करके सहित देशांतरमें भ्रमता हुआ इभ्य ग्राममें वसताभया तहां हस्तीके ऊपर चढनेवाले महावतके उच्छिष्ट माष खाताभया जब महावत जलपान देने लगा तब ऋषि बोला कि तेरा उच्छिष्ट जल मेरे पीनेयोग्य नहीं जब महावत बोला कि यह माष क्या उच्छिष्ट नहीं थे तब ऋषि बोला कि हां उच्छिष्ट थे परंतु यह मैं नहीं खाता तो मेरे प्राण नहीं रहते औ जल तडागादिकोंके विषै बहुत है तहां जलपान करूंगा इति । इस आख्यायिकासे भी यही निश्चय भया कि आपत्कालके विना अभक्ष्यका भक्षण नहीं करना ॥ २८ ॥

अबाधाच्च ॥ २९ ॥

इस सूत्रके–अबाधात् १ च २ यह दो पद हैं ॥ जो अभक्ष्यभक्षण न करे तो "आहारशुद्धौ सत्त्वशुद्धिः" आहारकी शुद्धि होनेतें अन्तःकरणकी शुद्धि होती है इत्यादि भक्ष्य अभक्ष्यके विभागको कहनेवाले शास्त्रका भी बाध न होवे ॥ २९ ॥

अपि च स्मर्यते ॥ ३० ॥

इस सूत्रके–अपि १ च २ स्मर्यते ३ यह तीन पद हैं॥ स्मृति कहती है–कि आपत्कालके विषै विद्वान् वा अविद्वान् जहां तहां सर्व अन्न भक्षण करे तो भी जैसे कमलका पत्र जलसे लिंपायमान नहीं होता

है तैसे पापसे लिंपायमान नहीं होता है परंतु ब्राह्मण कोई भी काल-के विषै सुरापान न करे ॥ ३० ॥

शब्दश्चातोऽकामकारे ॥ ३१ ॥

इस सूत्रके-शब्दः १ च २ अतः ३ अकामकारे ४ यह चार पद हैं॥ ब्राह्मण अपनी इच्छासे सुरापान न करे ऐसा शब्द भी कठसं-हिताके विषै है औ जो ब्राह्मण सुरापान करे तो मरणांतप्रायश्चित्तके विना शुद्ध नहीं होवे ॥ ३१ ॥

विहितत्वाच्चाश्रमकर्मापि ॥ ३२ ॥

इस सूत्रके-विहितत्वात् १ च २ आश्रमकर्म ३ अपि ४ यह चार पद हैं॥ पूर्व यह कहा कि आश्रमके कर्म विद्याके साधन हैं, तहां संशय है कि जो पुरुष मुमुक्षु नहीं है औ आश्रममें निष्ठ है तिसकरके यहकर्म अनुष्ठेय है वा नहीं? तहां कहतेहैं कि अनुष्ठेय है, काहेतें? जितने जीवे उतने अग्निहोत्र करे, ऐसे श्रुति नित्यकर्मका विधान करती है ३२

सहकारित्वेन च ॥ ३३ ॥

इस सूत्रके-सहकारित्वेन १ च २ यह दो पद हैं ॥ जो ऐसे कहे कि अमुमुक्षु पुरुष आश्रमके कर्मका अनुष्ठान करेगा तो यह कर्म विद्याके साधन न रहेंगे सो कहना ठीक नहीं, काहेतें ? श्रुति करके विहित होनेतें आश्रमके कर्म विद्याके सहकारी हैं ॥ ३३ ॥

सर्वथापि त एवोभयलिङ्गात् ॥ ३४ ॥

इस सूत्रके-सर्वथा १ अपि २ ते ३ एव ४ उभयलिङ्गात् ५ यह पांच पद हैं॥ सर्वप्रकार करके आश्रमधर्मपक्षमें औ विद्या सहकारी पक्षमें तिन अग्निहोत्रादिधर्मोंका अनुष्ठान करना, काहेतें ? इन दोनोंको विधान करनेवाले श्रुति स्मृतिरूप हेतु हैं॥ ३४ ॥

अनभिभवं च दर्शयति ॥ ३५ ॥

इस सूत्रके–अनभिवभवम् १ च २ दर्शयति ३ यह तीन पद हैं॥ जो पुरुष ब्रह्माचर्यादि साधन करके संपन्न हैं तिसका रागद्वेषादि क्लेश करके तिरस्कार नहीं होता ऐसे श्रुति कहती है इससे यही सिद्ध भया कि आश्रमके कर्म विद्याके सहकारी हैं ॥ ३५ ॥

अन्तरा चापि तु तद्दृष्टेः ॥ ३६ ॥

इस सूत्रके–अन्तरा १ च २ अपि ३ तु ४ तद्दृष्टेः ५ यह पांच पद हैं॥ जो द्रव्यादिसंपत् करके हीन हैं औ आश्रम करके हीन हैं ऐसे मध्यवर्ती पुरुषोंको विद्याका अधिकार है वा नहीं? तहां कहते हैं कि विद्याका अधिकार है, काहेतें? आश्रमहीन रैक्क गार्गीको आदि लेके ब्रह्मवेत्ता भये हैं, ऐसे श्रुति कहती है ॥ ३६ ॥

अपि च स्मर्यते ॥ ३७ ॥

इस सूत्रके–अपि १ च २ स्मर्यते ३ यह तीन पद हैं ॥ संवर्त्तादिक ब्रह्मचर्याको धारण करतेभये औ किसी भी आश्रमका कर्म नहीं करते भये परंतु तिनको इतिहास स्मृतिमें महायोगी कहे हैं३७॥

विशेषानुग्रहश्च ॥ ३८ ॥

इस सूत्रके–विशेषानुग्रहः १ च २ यह दो पद हैं ॥ यद्यपि रैक्क गार्गी संवर्त्तादिक किसी आश्रमके कर्मको नहीं करतेथे तथापि पुरुषमात्रके संबंधि जप उपवास देवताऽऽराधनादिधर्मविशेष करके तिनके ऊपर विद्याका अनुग्रह होताभया ॥ ३८ ॥

अतस्त्वितरज्ज्यायो लिङ्गाच्च ॥ ३९ ॥

इस सूत्रके–अतः १ तु २ इतरत् ३ ज्यायः ४ लिङ्गात् ५ च ६ यह छह पद हैं॥इस मध्यवर्त्तीसे आश्रमवर्त्ती श्रेष्ठ है, काहेतें? श्रुति कहती है कि अपने आश्रम विहित कर्मको करनेवाला ज्ञानमार्ग

करके ब्रह्मको प्राप्त होताहै औ स्मृति भी कहती है कि द्विज एक दिन भी अनाश्रमी न रहे औ जो संवत्सरपर्यंत अनाश्रमी रहे तो एक कृच्छ्रचान्द्रायणव्रत करनेसे शुद्ध होवै ॥ ३९ ॥

तद्भूतस्य नातद्भावो जैमिनेरपि नियमा-त्तद्रूपाभावेभ्यः ॥ ४० ॥

इस सूत्रके–तद्भूतस्य १ न २ अतद्भावः ३ जैमिनेः ४ अपि ५ नियमात् ६ तद्रूपाभावेभ्यः ७ यह सात पद हैं ॥ जो पूर्व यह कहा कि ऊर्द्धरेताके आश्रम हैं, तहां संशय है कि जो जिस आश्रमको प्राप्त होता है तिसका तिस आश्रमसे पतन होता है वा नहीं ? तहां कहते हैं कि जो ऊर्द्धरेतोभावको प्राप्त भया है तिसका पतन नहीं होता, काहेतें? आचार्यकी आज्ञासे चारों आश्रमोंमेंसे कोईसे एक आश्रममें शरीरपातपर्यंत यथाविधि रहे यह नियम पतनके अभावको कहता है औ ब्रह्मचर्यके अनंतर गृही होवै वा संन्यासी होवै इत्यादि वचन पतनके अभावको कहते हैं यह जैमिनि औ बादरायणका एकही प्रामाणिक मत है ॥ ४० ॥

न चाधिकारिकमपि पतनानुमानात्तदयोगात् ॥ ४१ ॥

इस सूत्रके–न १ च २ अधिकारिकम् ३ अपि ४ पतनानुमानात् ५ तदयोगात् ६ यह छह पद हैं ॥ जो नैष्ठिक ब्रह्मचारी प्रमादसे योनिके विषे वीर्यका सेचन करे तो तिसका प्रायश्चित्त है वा नहीं है ? तहां पूर्वपक्षी कहता है–कि नहीं है, काहेतें ? शास्त्र कहता है कि जो नैष्ठिक धर्मको प्राप्त होके पतित होवै तो तिस आत्महा पुरुषकी शुद्धिके वास्ते कोई प्रायश्चित्त नहीं है इति ॥ ४१ ॥

उपपूर्वमपि त्वेके भावमशनवत्तदुक्तम् ॥ ४२ ॥

इस सूत्रके–उपपूर्वम् १ अपि २ तु ३ एके ४ भावम् ५ अशनवत् ६ तत् ७ उक्तम् ८ यहआठ पद हैं॥सिद्धान्ती कहता है–कि गुरुदारादि-

कोंके विना अन्ययोनिके विषै जो ब्रह्मचारीके वीर्यका त्याग है सो महापातक नहीं किंतु उपपातक है ऐसे कोई आचार्य मानते हैं औ तिसका प्रायश्चित्त भी मानते हैं जैसे मांसभक्षण करनेसे ब्रह्मचारीके व्रतका लोप होता है औ पीछे संस्कार करनेसे तिसकी शुद्धि होती है तैसे इहां भी जानलेना ॥ ४२ ॥

बहिस्तूभयथापि स्मृतेराचाराच्च ॥ ४३ ॥

इस सूत्रके–बहिः १ तु २ उभयथा ३ अपि ४ स्मृतेः ५ आचारात् ६ च ७ यह सात पद हैं ॥ जो ऊर्द्ध्वरेताका अपने आश्रमसे पतन है सो महापातक है वा उपपातक है दोनों ही प्रकारसे शिष्टलोग तिनको पंक्तिके बाहिर करें ऐसे स्मृति कहती है । औ यज्ञ अध्ययन विवाहादि कार्य तिनके साथ न करें यह शिष्टोंका आचार है ॥४३॥

स्वामिनः फलश्रुतेरित्यात्रेयः ॥ ४४ ॥

इस सूत्रके–स्वामिनः १ फलश्रुतेः २ इति ३ आत्रेयः ४ यह चार पद हैं ॥ यज्ञादि कर्मके अंगोंकी उपासनाके विषै संशय है कि यह उपासना यजमानका कर्म है वा ऋत्विक्का कर्म है ? तहां पूर्वपक्षी कहता है–कि यजमानका कर्म है, काहेतें ? उपासनाके फलका श्रवण कर्ताके विषै होता है ऐसे आत्रेय आचार्य मानता है ॥ ४४॥

आर्त्विज्यमित्यौडुलोमिस्तस्मै हि परिक्रीयते ॥ ४५ ॥

इस सूत्रके–आर्त्विज्यम् १ इति २ औडुलोमिः ३ तस्मै ४ हि ५ परिक्रीयते ६ यह छह पद हैं ॥ सिद्धान्ती कहता है–कि यज्ञादिकर्मके अंगोंकी उपासना यजमानका कर्म नहीं है किन्तु ऋत्विक्का कर्म है ऐसे औडुलोमि आचार्य मानता है, काहेतें ? अंगसहित कर्मके वास्तेही यजमान ऋत्विक्का ग्रहण करता है ॥ ॥ ४५ ॥

श्रुतेश्च ॥ ४६ ॥

इस सूत्रके--श्रुतेः १ च २ यह दो पद हैं ॥ श्रुति कहती है-कि यज्ञके विषे जो कोई आशीर्वाद ऋत्विक् कहता है सो यजमानके वास्ते कहता है इति । इससे यहां निश्चय भया कि उपासना ऋत्विक्का कर्म है औ जिसका फल यजमानको होता है ॥ ४६ ॥

सहकार्यन्तरविधिः पक्षेण तृतीयं तद्वतो विध्यादिवत् ॥ ४७ ॥

इस सूत्रके--सहकार्यन्तरविधिः १ पक्षेण २ तृतीयम् ३ तद्वतः४ विध्यादिवत् ५ यह पांच पद हैं ॥ बृहदारण्यमें श्रवण होता है कि, जो ब्राह्मण पाण्डित्यको प्राप्त होके बाल्यको प्राप्त होता है औ बाल्य को प्राप्त होके मौनको प्राप्त होता है सो ब्रह्मको प्राप्त होता है इति । इहां पाण्डित्य बाल्य मौन यह क्रमसे श्रवण मनन निदिध्यासनका नाम जानना तहां संशय है कि मौनकी विधि है वा नहीं ? तहां कहते हैं कि मौनको विद्याका सहकारी होनेतें विद्यावाले संन्यासीको पाण्डित्य बाल्यकी अपेक्षासे इस तृतीय मौनका विधान है । प्रश्न-- मौनविधिका क्या प्रयोजन है ? उत्तर--जैसे दर्शपूर्णमास विधिके विषे सहकारी होनेतें अग्न्याधानादि अङ्गका विधान है तैसे जिस पक्षमें भेद दर्शनकी प्रबलतासे ब्रह्मकी प्राप्ति न होवे तिस पक्षमें मौनका विधान है ॥ ४७ ॥

जो बाल्यादिविशिष्टसन्यासही अनुष्ठेय है तो छान्दोग्यमें गृहीका उपसंहार क्यों किया है इस शंकाका समाधान कहते हैं ॥

कृत्स्नभावात्तु गृहिणोपसंहारः ॥ ४८ ॥

इस सूत्रके--कृत्स्नभावात् १ तु २ गृहिणा ३ उपसंहारः ४ यह चार पद हैं ॥ कृत्स्नभाव गृहीके प्रति विशेष है अर्थात् बहुत परिश्रम

करके सिद्ध होनेवाले यज्ञादिकर्मका उपदेश गृहीके प्रति होनेतैं गृहीके उपसंहार किया है औ अन्य आश्रममें अहिंसा इन्द्रियसंयमादि धर्म कहे हैं ॥ ४८ ॥

मौनवदितरेषामप्युपदेशात् ॥ ४९ ॥

इस सूत्रके–मौनवत् १ इतरेषाम् २ अपि ३ उपदेशात् ४ यह चार पद हैं ॥ जैसे मौन संन्यास औ गार्हस्थ्य यह दो आश्रम श्रुति करके विहित हैं तैसे वानप्रस्थ औ गुरुकुलमें वास यह दो आश्रम भी श्रुति करके विहित हैं ॥ ४९ ॥

अनाविष्कुर्वन्नन्वयात् ॥ ५० ॥

इस सूत्रके–अनाविष्कुर्वन् १ अन्वयात् २ यह दो पद हैं ॥ पूर्व यह कहा कि ब्राह्मण पाण्डित्यको प्राप्त होके बाल्यको प्राप्त होवे तहां संशय है कि पुरुषकी प्रथम अवस्थाका नाम भी बाल्य है जैसे बालक जहां तहां मूत्रपुरीष करता है औ भक्ष्याभक्ष्य करता है ऐसा बाल्य लेना चाहिये वा दंभ दर्प प्ररूढ इन्द्रियादिकों से रहित होना ऐसा बाल्य लेना चाहिये ? तहां कहते हैं कि ज्ञान अध्ययन धार्मिकत्वादिकोंसे अपने आत्माको प्रगट न करै औ दंभ दर्प प्ररूढइन्द्रियत्वादिकोंसे रहित रहे ऐसा बाल्य विवक्षित है ॥ ५० ॥

ऐहिकमप्यप्रस्तुतप्रतिबन्धे तद्दर्शनात् ॥ ५१ ॥

इस सूत्रके–ऐहिकम् १ अपि २ अप्रस्तुतप्रतिबन्धे ३ तद्दर्शनात ४ यह चार पद हैं ॥ "सर्वापेक्षा च यज्ञादिश्रुतेः" इस सूत्रको आदि लेके विद्याके साधन कहे तहां संशय है कि इन साधनोंसे इसी जन्ममें विद्याकी उत्पत्ति होती है वा जन्मान्तरमें होती है ? तहां कहते हैं कि जो इस जन्ममें कोई प्रतिबन्धक न होवे तो इसी जन्ममें विद्याकी उत्पत्ति होवे औ जो प्रतिबन्धक होवे तो जन्मान्तरमें होवे ऐसे श्रुति स्मृति कहती हैं ॥ ५१ ॥

एवं मुक्तिफलानियमस्तदवस्थावधृते-स्तदवस्थावधृतेः ॥ ५२ ॥

इस सूत्रके-एवम् १ मुक्तिफलानियमः २ तदवस्थावधृतेः ३ तदवस्थावधृतेः ४ यह चार पद हैं ॥ मुक्तिफलके विषे कोई विशेष नियम नहीं है, काहेतें ? सर्व वेदान्तके विषे एक ब्रह्मस्वरूप मुक्तिरूप अवस्थाका अवधारण है औ इस सूत्रमें "तदवस्थावधृतेः" इस पदका दो बेर अभ्यास है सो इस साधनाध्यायकी समाप्तिको द्योतन करता है ॥ ५२ ॥

इति श्रीमद्योगिवर्य्ययमुनानाथपूज्यपादशिष्यश्रीमन्मौक्तिकनाथयोगिविरचितायां ब्रह्मसूत्रसारार्थप्रदीपिकायांतृतीयाध्यायस्य चतुर्थः पादः ॥ ४ ॥

इति तृतीयोऽध्यायः समाप्तः ॥ ३ ॥

चतुर्थोऽध्यायः ४.

प्रथमः पादः ।

आवृत्तिरसकृदुपदेशात् ॥ १ ॥

इस सूत्रके-आवृत्तिः १ असकृत २ उपदेशात ३ यह तीन पद हैं ॥ तृतीय अध्यायके विषे साधनका विचार किया अब चतुर्थ अध्यायके विषे प्रथम साधनविशेषका विचार करके फलका विचार करते हैं "आत्मा वा अरे द्रष्टव्यः श्रोतव्यो मंतव्यो निदिध्यासितव्यः" अस्या अर्थः-याज्ञवल्क्य कहताभया कि अरे मैत्रेयि आत्मा श्रवण करने योग्य है, मनन करने योग्य है, निदिध्यासन करने योग्यहै जानने योग्यहै इति। तहां संशयहै कि श्रवणमननादिकोंका एक बर अनुष्ठान करना वा वारंवार करना ? तहां कहते हैं कि वारंवार करना, काहेतें? "श्रोतव्यो मंतव्यः" इत्यादि वारंवार उपदेश है ॥ १ ॥

लिङ्गाच्च ॥ २ ॥

इस सूत्रके–लिङ्गात् १ च २ यह दो पद हैं ॥ उद्गीथादिलिङ्गसे भी श्रवणादिकोंकी आवृत्ति जाननी जैसे उद्गीथकी ध्यानकी आवृत्ति कहीहै तैसे श्रवण मनन निदिध्यासनकी भी आवृत्ति कही है ॥२॥

आत्मेति तूपगच्छन्ति ग्राहयन्ति च ॥ ३ ॥

इस सूत्रके--आत्मा १ इति २ तु ३ उपगच्छन्ति ४ ग्राहयन्ति५ च ६ यह छह पद हैं ॥ ध्यानकालके विषै 'अहं ब्रह्म' ऐसा ध्यान करना वा मेरेसे अन्य मेरा स्वामी ईश्वर है ऐसा ध्यान करना ? तहां कहतेहैं कि 'अहं ब्रह्म' ऐसा ध्यान करना, काहेतें ? परमेश्वर प्रक्रियाके विषे जाबाल आत्मरूप करकेही ईश्वरका अंगीकार करतेहैं औ "तत्त्वमसि अहं ब्रह्मास्मि" इत्यादि महावाक्यभी जीवात्मा परमात्माकी एकताको ग्रहण करातेहैं ॥ ॥ ३ ॥

न प्रतीकेन हि सः ॥ ४ ॥

इस सूत्रके--न १ प्रतीकेन२हि ३ सः ४ यह चार पद हैं ॥ जैसे अहंग्रह उपासनाके विषे आत्मबुद्धि करतेहैं तैसे "मनो ब्रह्मेत्युपासीत आकाशो ब्रह्म"इत्यादि प्रतीक उपासनाके विषै आत्मबुद्धि करनी वा नहीं करनी? तहां कहतेहैं कि नहीं करनी, काहेतें ? यह मन आकाशादिक ब्रह्मके विकार हैं तिनकी आत्माके साथ एकता बनें नहीं॥४॥

ब्रह्मदृष्टिरुत्कर्षात् ॥ ५ ॥

इस सूत्रके--ब्रह्मदृष्टिः १ उत्कर्षात्२यह दो पदहैं॥तिन उदाहरणोंके विषै औरभी संशयहै कि मन आकाश आदित्य इत्यादिकोंकीदृष्टि ब्रह्मके विषे करनी वा ब्रह्मकी दृष्टि इनके विषै करनी ? तहां कहतेहैं कि ब्रह्मकी दृष्टि इनके विषे करनी, काहेतें? उत्कृष्टकी दृष्टि निकृष्टके विषै होती है जैसे लोकमें कदाचित् राजाकी दृष्टि दासमें करतेहैं परंतु दासकी दृष्टि राजाके विषे नहीं करते तैसे इहांभी जानना चाहिये ॥५॥

आदित्यादिमतयश्चाङ्ग उपपत्तेः ॥ ६ ॥

इस सूत्रके--आदित्यादिमतयः १ च २ अङ्गे ३ उपपत्तेः ४ यह चार पद हैं ॥ "य एवासौ तपति तमुद्गीथमुपासीत" जो यह आदित्य तपता है तिसकी उद्गीथरूप करके उपासना करनी इत्यादि कर्म के अंगकी उपासना है तहां संशयहै कि आदित्यादिकोंके विषे उद्गीथादिकोंकी मति करनी वा उद्गीथादिकोंके विषे आदित्यादिकोंकी मति करनी?तहां कहते हैं कि उद्गीथादिकोंके विषे आदित्यादिकोंकी मति करनी? काहेतें ? जब आदित्यादिमति करके उद्गीथादिक संस्क्रियमाण होते हैं तब कर्मकी समृद्धि होती है ॥ ६ ॥

आसीनः सम्भवात् ॥ ७ ॥

इस सूत्रके—आसीनः १ सम्भवात् २ यह दो पद हैं ॥ कर्मका अनुष्ठान बैठके करतेहैं औ उठके भी करते हैं इसीसे कर्म औ कर्मके अंगकी उपासनाम बैठनेका नियम नहीं परंतु और उपासनामें बैठनेका नियम है वा नहीं ? तहां कहते हैं कि बैठनेका नियम है, काहेतें ? समान प्रत्ययके प्रवाहका नाम उपासना है सो बैठनेसेही ठीक होता है उठनेमें चलनेमें सोनेमें चित्तविक्षेप निद्रादिक होजाते हैं ॥ ७ ॥

ध्यानाच्च ॥ ८ ॥

इस सूत्रके--ध्यानात् १ च २ यह दो पद हैं ॥ जो यह समान प्रत्ययका प्रवाह करणरूप उपासना है सो ध्यायति धातुका अर्थ है जैसे लोकमें 'बको ध्यायति' यह प्रयोग होता है तैसे स्थितदृष्टिपूर्वक एक विषयमें जो चित्तको लगाता है तिसके विषे ध्यायति ऐसा प्रयोग होता है ॥ ८ ॥

अचलत्वं चापेक्ष्य ॥ ९ ॥

इस सूत्रके—अचलत्वम् १ च २ अपेक्ष्य ३ यह तीन पदहैं॥ध्यायतीव

पृथिवी इहां पृथिवीके विषै अचलताकी अपेक्षासे ध्यायति प्रयोग होता है ॥ ९ ॥

स्मरन्ति च ॥ १० ॥

इस सूत्रके–स्मरन्ति १ च २ यह दो पद हैं॥ "शुचौ देशे प्रतिष्ठाप्य स्थिरमासनमात्मनः" इत्यादि वाक्यों करके शिष्ट पुरुष स्मरण करते हैं कि आसन उपासनाका अंग है इसीसे योगशास्त्रके विषै पद्मादिक आसन कहे हैं ॥ ॥ १० ॥

यत्रैकाग्रता तत्राविशेषात् ॥ ११ ॥

इस सूत्रके–यत्र १ एकाग्रता २ तत्र ३ अविशेषात् ४ यह चार पद हैं ॥ उपासनाके विषै दिशा देश कालका नियम है वा नहीं ? तहां कहते हैं कि मनकी एकग्रता नियम है और कोई विशेष नियम नहीं जिस दिशा देश कालमें मनकी एकाग्रता सुखपूर्वक होवै तिस दिशा देश कालके विषै उपासना करनी ॥ ११ ॥

आप्रयाणात्तत्रापि हि दृष्टम् ॥ १२ ॥

इस सूत्रके–आप्रयाणात् १तत्र२ अपि ३ हि ४ दृष्टम् ५ यह पांच पद हैं ॥ पूर्व यह कहा कि सर्व उपासनाके विषै आवृत्ति करनी, तहां संशय है कि अहंग्रह उपासनाके विषै किंचित्काल आवृत्ति करनी वा मरणपर्यंत करनी तहां कहते हैं कि मरणपर्यंत करनी, काहेतें? "प्रयाणकाले मानसाऽचलेन"इत्यादि स्मृति मरणपर्यंत ही आवृत्ति को कहती है ॥ १२ ॥

तदधिगम उत्तरपूर्वाघयोरश्लेषविनाशौ तद्व्यपदेशात् ॥ १३ ॥

इस सूत्रके–तदधिगमे १ उत्तरपूर्वाघयोः २ अश्लेषविनाशौ ३ तद्व्यपदेशात् ४ यह चार पद हैं ॥ अब ब्रह्मविद्याके फलका विचार

करते हैं कि ब्रह्मविद्याकी प्राप्ति होनेतें पापकर्मका क्षय होता है वा नहीं? तहां कहते हैं कि ब्रह्मविद्याकी प्राप्ति होनेतें आगामी पापक संबंध नहीं होता है औ संचित पापका नाश होता है,काहेतें? श्रुति कहती है--कि "यथा पुष्करपलाश आपो न श्लिष्यंत एवमेव विदि पापकर्म न श्लिष्यते"अस्या अर्थः--जैसे कमलपत्रके विषे जल स्पर्श नहीं करते तैसे ब्रह्मवेत्ताके विषे पापकर्म स्पर्श नहीं करते इति ॥१३॥

इतरस्याप्येवमसंश्लेषः पाते तु ॥ १४ ॥

इस सूत्रके--इतरस्य १ अपि२एवम्३ असंश्लेषः ४ पाते ५ तु ६ यह छह पद हैं ॥ जैसे विद्वान्के विषे पापकर्मका असंबंध विनाश है तैसे पुण्यकर्मकाभी असंबंध विनाश जानना,काहेतैं?पापकी न्याईं पुण्यभी मुक्तिका प्रतिबंधक है ऐसे पापपुण्यका संबंध न होनेतें शरीरपातके अनंतर अवश्य विद्वान्की मुक्ति होती है ॥ १४ ॥

अनारब्धकार्ये एव तु पूर्वे तदवधेः ॥ १५ ॥

इस सूत्रके--अनारब्धकार्ये १ एव २ तु ३ पूर्वे ४ तदवधेः५ यह पांच पद हैं॥जो यह कहा कि ज्ञानसे पुण्यपापका नाश होताहै तहां संशयहै कि सर्व पुण्यपापका नाश होताहै वा जिस पुण्यपापने अपने फलका आरम्भ न किया है तिसका होता है तहां कहते हैं कि जिस पूर्वजन्मके वा इस जन्मके कर्मने फलका आरम्भ नहीं किया है तिसका ज्ञानसे नाश होता है सर्वका नहीं,काहेतें?जिस कर्मने फलका आरम्भ किया है तिसकी शरीरपातपर्यंत अवधि है ॥ १५ ॥

अग्निहोत्रादि तु तत्कार्यायैव तद्दर्शनात् ॥ १६ ॥

इस सूत्रके--अग्निहोत्रादि १ तु २ तत्कार्याय३ एव४तद्दर्शनात्५ यह पांच पदहैं॥ जो अग्निहोत्रादि नित्यकर्म हैं सो ज्ञानका जो कार्य है तिसी कार्यके अर्थ हैं, काहेतें ? श्रुति कहती है--कि ब्राह्मण हैं सो

वेदानुवचन करके यज्ञ करके दान करके तिस परमात्माको जानते हैं ॥ १६ ॥

अतोऽन्यापि ह्येकेषामुभयोः ॥ १७ ॥

इस सूत्रके–अतः १ अन्या २ अपि ३ हि ४ एकेषाम् ५ उभयोः ६ यह छह पद हैं ॥इस अग्निहोत्रादि नित्यकर्मसे औरभी श्रेष्ठ कर्म है तिसको काम्यकर्म कहते हैं तिसको लेके कोई शाखावाले कहते हैं कि तिस ज्ञानीके पुत्र दायको लेते हैं सुहृद् साधुकर्मको लेते हैं द्वेषी पापकर्मको लेते हैं इति । यह काम्यकर्म विद्याका विरोधी है ऐसे जैमिनि औ बादरायण आचार्य मानते हैं ॥ १७ ॥

यदेव विद्ययेति हि ॥ १८ ॥

इस सूत्रके–यत् १ एव२ विद्यया३ इति ४ हि ५ यह पांच पद हैं ॥ केवल अग्निहोत्रादि कर्म आत्मविद्याका हेतु है वा अपने अङ्गकी उपासना करके सहित हेतु है ? तहां कहते हैं कि दोनोंही प्रकारका कर्म अत्मविद्याका हेतु है औ ज्ञानकी उत्पत्तिसे पूर्व मुमुक्षुपुरुषके करने योग्य है ॥ १८ ॥

भोगेन त्वितरे क्षपयित्वा सम्पद्यते ॥ १९ ॥

इस सूत्रके–भोगेन १ तु २ इतरे ३ क्षपयित्वा ४ संपद्यते ५ यह पांच पद हैं ॥जिस पुण्यपापने फलका आरम्भ नहीं किया है तिसका विद्याके सामर्थ्यसे क्षय होता है ऐसे पूर्व कहा है औ जिसने फलका आरम्भ कियाहै तिसका भोगसे क्षय करके ब्रह्मको प्राप्त होता है॥ १९

इति श्रीमन्मौक्तिकनाथयोगिविरचितायां ब्रह्मसूत्रसारार्थप्रदीपिकायां चतुर्थाध्यायस्य प्रथमः पादः ॥ १ ॥

चतुर्थाध्याये द्वितीयः पादः ।

वाङ्मनसि दर्शनाच्छब्दाच्च ॥ १ ॥

इस सूत्रके—वाक् १ मनसि २ दर्शनात् ३ शब्दात् ४ च ५ यह पांच पद हैं ॥ अपर विद्याके विषै देवयानमार्ग कहनेको प्रथम उत्क्रान्तिक्रम कहते हैं । श्रुति कहती है—कि म्रियमाण पुरुषकी वाक् मनमें लीन होती है मन प्राणमें लीन होता है प्राण तेजमें लीन होता है तेज परदेवतामें लीन होता है इति । तहां संशय है कि अपने स्वरूपसे वाक् मनमें लीन होती है वा वाक्की वृत्ति लीन होती है ? तहां कहतेहैं कि वाक्की वृत्ति लीन होती है, काहेतें ? विद्यमान मनोवृत्तिके विषै वाक्की वृत्तिका उपसंहार दीखताहै औ जो श्रुतिमें "वाङ्मनसि सम्पद्यते" यह शब्द है सो वाक् औ वृत्ति के अभेदके उपचारको लेके है ॥ १ ॥

अत एव च सर्वाण्यनु ॥ २ ॥

इस सूत्रके--अतः १ एव २ च ३ सर्वाणि ४ अनु ५ यह पांच पद हैं ॥ वाग्वृत्तिकी न्याई चक्षुरादिकोंकी वृत्तिभी मनके विषै लीन होती है वृत्तिद्वारा सर्व इन्द्रिय मनके पीछे वर्त्तते हैं ॥ २ ॥

तन्मनः प्राण उत्तरात् ॥ ३ ॥

इस सूत्रके—तत् १ मनः २ प्राणे ३ उत्तरात् ४ यह चार पद हैं ॥ लीन भई है बाह्य इन्द्रियोंकी वृत्ति जिसमें ऐसा मन है सो अपनी वृत्तिद्वारा प्राणमें लीन होता है, काहेतें ? उत्तरवाक्यमें कहा है कि जो पुरुष सोता है औ मरता है तिसके मनकी वृत्ति प्राणवृत्तिमें लीन होती है ॥ ३ ॥

सोऽध्यक्षे तदुपगमादिभ्यः ॥ ४ ॥

इस सूत्रके—सः १ अध्यक्षे २ तदुपगमादिभ्यः ३ यह तीन पदहैं॥ प्राण तेजमें लीन होता है वा देह इन्द्रियादि पंजरके स्वामी जीवोंमें लीन होता है ? तहां कहते हैं कि सो प्राण अविद्या कर्म वास-

नादि उपाधिवाले जीवमें लीन होता है, काहेतें ? श्रुति कहती हैं-कि अन्तकालमें सर्व प्राण जीवके सन्मुख होते हैं ॥ ४ ॥

भूतेष्वतःश्रुतेः ॥ ५ ॥

इस सूत्रके-भूतेषु १ अतः २ श्रुतेः ३यह तीन पद हैं॥जो प्राणका जीवमें लय होताहै तो "प्राणस्तेजसि" यह श्रुति तेजमें प्राणका लय क्यों कहती है ? तहां कहते हैं कि इस श्रुतिका यह अर्थ जानना चाहिये कि प्राण करके संयुक्त जीव है सो देहके कारण जो तेज सहित सूक्ष्म भूत है तिनके विषै स्थित होताहै ॥ ५ ॥

जो यह कहा कि तेजसहित सूक्ष्मभूतोंके विषै प्राणसंयुक्त जीव स्थित होता है सो कहना ठीक नहीं, काहेतें ? "प्राणस्तेजसि" इस श्रुतिके विषै एक तेजमात्रकाही श्रवण है इस शंकाका समाधान कहते हैं ॥

नैकस्मिन्दर्शयतो हि ॥ ६ ॥

इस सूत्रके-न १ एकस्मिन् २दर्शयतः ३ हि ४ यह चार पद हैं ॥ शरीरान्तरकी प्राप्तिकालमें एक तेजके विषैही जीव स्थित नहीं होता है,काहेतैंकार्यरूपशरीर अनेक भूतोंका है ऐसे श्रुतिस्मृति कहती हैं६

समाना चामृत्युपक्रमादमृतत्वं चानुपोष्य ॥ ७ ॥

इस सूत्रके-समाना १च २ आसृत्युपक्रमात् ३अमृतत्वम् ४च ५ अनुपोष्य ६ यह छह पद हैं ॥ विद्वान् अविद्वानकी उत्क्रान्ति समान है वा विशेष है? तहां कहते हैं कि अर्चिरादि मार्गकी प्राप्तिसे पूर्व "वाङ्मनसि सम्पद्यते" इत्यादि उत्क्रान्ति दोनोंकी समान है विद्वान् मस्तककी नाड़ीद्वारा अर्चिरादि मार्गको प्राप्त होता है औ अविद्वान् नहीं होता है इतना विशेषहै,काहेतें ? विद्वान् अपर विद्याके सामर्थ्यसे अविद्यादिक सर्व क्लेशको दग्ध करके अमृतको प्राप्त होता है परन्तु यह अमृत आपेक्षिक है मुख्य नहीं ॥ ७ ॥

तदापीतेः संसारव्यपदेशात् ॥ ८ ॥

इस सूत्रके–तत् १ आपीतेः २ संसारव्यपदेशात् ३ यह तीन पद हैं ॥ जो श्रुति कहती है कि तेज परदेवतामें लीन होता है तिसका यह तात्पर्य है कि जीव प्राण इन्द्रिय भूतान्तर इन सर्व करके सहित तेज परदेवतामें लीन होता है। तहां संशय है कि तेज अपने स्वरूपसे ही लीन होता है वा सुषुप्ति प्रलयकी न्याईं बीज रूप करके बना रहताहै? तहां कहते हैं कि श्रुति स्मृतिमें पुनः संसारका कथन होनेतें जितने सम्यक् ज्ञान न होवै उतने बीजरूप करके बनाही रहता है ॥ ८ ॥

सूक्ष्मं प्रमाणतश्च तथोपलब्धेः ॥ ९ ॥

इस सूत्रके--सूक्ष्मम् १ प्रमाणतः २ च ३ तथा ४ उपलब्धेः ५यह पांच पद हैं ॥ इस शरीरसे निकलनेवाले जीवका आश्रय औ अन्य भूतोंकरके सहित जो तेज है सो सूक्ष्म परिमाणवाला है, काहेतें? जब तेज इस शरीरसे निकलता है तब सूक्ष्मनाडीद्वारा निकलता है इसी से समीप बैठे पुरुषको दीखता नहीं ॥ ॥

नोपमर्देनातः ॥ १० ॥

इस सूत्रके–न १ उपमर्देन २ अतः ३ यह तीन पद हैं ॥ सूक्ष्म होनेतें जब दाहादि निमित्तसे स्थूल शरीरका उपमर्दन होता है तब सूक्ष्मशरीरका उपमर्दन नहीं होता ॥ १० ॥

अस्यैव चोपपत्तेरेष ऊष्मा ॥ ११ ॥

इस सूत्रके–अस्य १ एव २ च ३ उपपत्तेः ४ एषः ५ ऊष्मा ६ यह छह पद हैं ॥ जीवत् शरीरके विषे स्पर्श करनेसे जो ऊष्मा जाना जाताहै सो ऊष्मा सूक्ष्मशरीरका है इसीसे मृतशरीरके विषे शारीरके रूपादि गुण विद्यमान भी हैं परंतु ऊष्माका ज्ञान नहीं होता ॥ ११ ॥

प्रतिषेधादिति चेन्न शारीरात्॥ १२॥

इस सूत्रके-प्रतिषेधात् १ इति २ चेत् ३ न ४ शारीरात् ५ यह पांच पद हैं॥ इस पादके सातवें सूत्रमें 'अनुपोष्य' यह पद है तिस करके सूचित भया कि दग्ध होगये हैं सर्व क्लेश जिसके ऐसे परब्रह्मवेत्ताकी उत्क्रान्ति नहीं होती है इति। तहां किसी कारणसे उत्क्रान्तिकी आशंका करके श्रुति प्रतिषेध करती है कि परब्रह्मवेत्ताके शरीरसे प्राणोंकी उत्क्रान्ति नहीं होती है किंतु परब्रह्मवेत्ता ब्रह्मरूप होके ब्रह्मकोही प्राप्त हो ता है इति। तहां पूर्वपक्षी कहता है कि यह प्राणकी उत्क्रान्तिका प्रतिषेध शारीरात्मासे है शरीरसे नहीं अर्थात् जीवके साथही प्राण रहता है॥ १२॥

स्पष्टो ह्येकेषाम्॥ १३॥

इस सूत्रके-स्पष्टः १ हि २ एकेषाम् ३ यह तीन पद हैं॥ परब्रह्म वेत्ताकी प्राणसहितही इस देहसे उत्क्रान्ति होतीहै औ प्राणकी उत्क्रान्तिका प्रतिषेध है सो देहीको लेके है देहको लेके नहीं यह पूर्वपक्षीका कहना ठीक नहीं, काहेतें? कोई शाखावालोंके प्राणकी उत्क्रान्तिका प्रतिषेध देहको लेके स्पष्टही भान होता है अर्थात् ज्ञानीके प्राणकी उत्क्रान्ति इस देहसे होतीही नहीं॥ १३॥

स्मर्यते च॥ १४॥

इस सूत्रके-स्मर्यते १ च २ यह दो पद हैं॥ ब्रह्मवेत्ताकी गति औ उत्क्रान्तिके अभावका महाभारतमें स्मरण होता है "सर्वभूतात्मभूतस्य सम्यग्भूतानि पश्यतः। देवा अपि मार्गे मुह्यन्त्यपदस्य पदैषिणः॥" इति। अस्यार्थः-जो सर्व भूतोंका आत्मभूत है औ सर्व भूतोंको आत्मभावकरके देखता है औ प्राप्य स्वर्गादि पद करके रहित है

एस ज्ञानीके पदकी इच्छा करनेवाले देवहैं सो भी तिसके मार्गके विषै मोहको प्राप्त होते हैं अर्थात् तिसके मार्गको नहीं जानते हैं ॥१४॥

तानि परे तथा ह्याह ॥ १५ ॥

इस सूत्रके–तानि १ परे २ तथा ३ हि ४ आह ५ यह पांच पद हैं॥ परब्रह्मवेत्ताके प्राणशब्दवाच्य श्रोत्रादिक इन्द्रिय हैं सो तिस परमात्माके विषै लीन होते हैं तैसेही श्रुति कहती है कि जैसे नदी समुद्रको प्राप्त होके समुद्रमेंही लीन होती है तैसे सारे ब्रह्म देखनेवालेकी प्राण श्रद्धादिक षोडशकला हैं सो ज्ञेयपुरुषको प्राप्त होके पुरुषके विषैही लीन होती हैं ॥ १५ ॥

अविभागो वचनात् ॥ १६ ॥

इस सूत्रके–अविभागः१ वचनात् २ यह दो पद हैं ॥ विद्वान्‌की प्राणश्रद्धादि षोडश कलाका लय है सो अविद्वानकी न्याई पुनर्जन्म का हेतु है वा नहीं? तहां कहते हैं कि पुनर्जन्मका हेतु नहीं है, काहेतें ? जैसे समुद्रमें लीन हुये पीछे नदीके नाम रूप नहीं रहते हैं सर्व समुद्रही कहाता है तैसे जब षोडक कलाका लय होता है तब पुरुष अकल अमृतही कहाता है ॥ १६ ॥

तदोकोऽग्रज्वलनं तत्प्रकाशितद्वारो विद्यासामर्थ्या-त्तच्छेषगत्यनुस्मृतियोगाच्च हार्दानुगृहीतः शताधिकया ॥ १७ ॥

इस सूत्रके–तदोकोऽग्रज्वलनम् १ तत्प्रकाशितद्वारः २ विद्यासामर्थ्यात् ३ तच्छेषगत्यनुस्मृतियोगात् ४च ५हार्दानुगृहीतः ६ शताधिकया७ यह सात पद हैं॥प्रसंगसे प्राप्त भई परविद्याका विचार करके अब अपरविद्याका विचार करते हैं मरणकालमें उपसंहत होगई हैं वागादि सर्व इन्द्रिय जिसकी ऐसे जीवात्माका हृदय स्थान है तिस

हृदयका अग्र जो नाडियोंका मुख तिसका ज्वलन जो भावि फलका स्फुरणरूप प्रद्योतन तिस प्रद्योतन करके जब जीवात्मा निकलताहै यद्यपि तब चक्षुसे वा मूर्धासे वा और किसी शरीरके द्वारसे निकलता है यद्यपि हृदयाग्र प्रद्योतन औ तिस करके प्रकाशित चक्षुरादि द्वार विद्वान् अविद्वान्के समान हैं तथापि विद्वान् विद्याके सामर्थ्यसे मूर्धस्थानसेही निकलता है औ अविद्वान् चक्षुरादि स्थानसे निकलताहै औ विद्याकी शेष जो मूर्धामें होनेवाली सुषुम्नाख्यनाडीद्वारा गति तिसका जो अनुस्मरण तिसके योगसे औ हृदयमें स्थित जो उपास्य ब्रह्म तिसके अनुग्रहसे ब्रह्मभावको प्राप्त भया विद्वान् है सो सौ नाडीसे अधिक सुषुम्नाख्य नाडीद्वारा निकलता है औ अविद्वान् दूसरी नाडीद्वारा निकलताहै ॥ १७ ॥

रश्म्यनुसारी ॥ १८ ॥

इस सूत्रका–रश्म्यनुसारी १ यह एकही पद है ॥ प्रारब्ध कर्मके अंतमें विद्वान्का उत्क्रमण होता है सो नाडी संबंधि रश्मीके अनुसार होता है तहां संशय है कि दिनके विषे वा रात्रिके विषे जो विद्वान् मरता है सो रश्मीके अनुसारी होता है वा दिनके विषे मरनेवालाही होता है ? तहां कहते हैं कि दिनमें मरे वा रात्रिमें मरे रश्मीके अनुसारी ही होता है यह नियम है ॥ १८ ॥

निशि नेति चेन्न सम्बन्धस्य यावद्देहभावित्वात् दर्शयति च ॥ १९ ॥

इस सूत्रके–निशि १ न २ इति ३ चेत् ४ न ५ सम्बन्धस्य ६ यावद्देहभावित्वात् ७ दर्शयति ८ च ९ यह नौ पद हैं ॥ नाडी औ रश्मिका संबंध दिनमें ही रहता है इसीसे जो दिनमें मरता है सो रश्मिके अनुसारी होता है औ जो रात्रिमें मरता है सो रश्मिके अनुसारी नहीं होता है यह कहना ठीक नहीं, काहेतें ? नाडी औ रश्मिका

संबंध देहकी स्थितिपर्यंत बनाही रहता है औ श्रुति भी कहती है कि आदित्यसे निकली रश्मि नाडीके साथ संबद्ध रहती है ॥१९॥

अतश्चायनेऽपि दक्षिणे ॥ २० ॥

इस सूत्रके–अतः १ च २अयने ३ अपि ४ दक्षिणे ५ यह पांच पद हैं ॥ विद्याके फलको नित्य होनेतें जो विद्वान् दक्षिणायनमें मरता है सो भी विद्याके फलको प्राप्त होता है औ जो भीष्मनें उत्त-रायणकी प्रतीक्षा करी है सो अपने पिताके वरसे प्राप्त भया जो इच्छा पूर्वक मृत्यु तिसकी प्रसिद्धिके वास्ते करी है औ अज्ञानीका मरण उत्तरायणमें श्रेष्ठ है ॥ २० ॥

गीतास्मृतिमें अनावृत्तिके वास्ते अहरादिकाल कहा है तुम रात्रिमें वा दक्षिणायनमें मरनेवालेकी अनावृत्ति कैसे कहते हो इस शंकाका समाधान कहते हैं ॥

योगिनः प्रति च स्मर्यते स्मार्ते चैते ॥ २१ ॥

इस सूत्रके–योगिनः १ प्रति २ च ३ स्मर्यते ४ स्मार्ते ५ च ६ एते ७ यह सात पद हैं ॥ जो अनावृत्तिके वास्ते अहरादिकालका स्मरण है सो योगीके प्रति है योग औ सांख्य स्मार्त्त हैं श्रौत नहीं इसीसे स्मार्त्त अहरादिकालका श्रौत विज्ञानके विषै उपयोग नहीं२१

इति श्रीमन्मौक्तिकनाथयोगिविरचितायां ब्रह्मसूत्रसारार्थ-
प्रदीपिकायां चतुर्थाध्यायस्य द्वितीयः पादः ॥ २ ॥

चतुर्थाध्याये तृतीयः पादः ।

अर्चिरादिना तत्प्रथितेः ॥ १ ॥

इस सूत्रके–अर्चिरादिना १ तत्प्रथितेः २ यह दो पद हैं ॥ पूर्व यह कहा है कि आसृतिके उपक्रमसे पहिले विद्वान औ अविद्वान्की उत्क्रान्ति समान है औ सृतिनाम मार्गका है इति।अब सृतिका विचार

करते हैं कि अनेक श्रुतियोंके विषे अनेक सृति दिखती हैं एक सृति नाडीरश्मिके संबंधसे कही है औ दूसरी अर्चिरादि सृति कही है औ तिसरी देवयानसे अग्निलोकको प्राप्त करनेवाली कहीहै औ चौथी इस लोकसे मरे पीछे वायुलोकको प्राप्त करनेवाली कहीहै औ पंचमी सूर्यद्वार करके कही है तहां संशय है कि यह सृति परस्पर भिन्न हैं वा अभिन्न हैं ? तहां कहते हैं कि अभिन्न हैं, काहेतें ? तिस सृतिको प्रसिद्ध होनेतें सर्व विद्वान् आर्चिरादि मार्ग करकेही जाते हैं विशेषणके भेदसे सृतिका भेद है वास्तव भेद नहीं ॥ १ ॥

वायुमब्दादविशेषविशेषाभ्याम् ॥ २ ॥

इस सूत्रके–वायुम् १ अब्दात् २ अविशेषविशेषाभ्याम् ३ यह तीन पद हैं ॥ अब सृतिका क्रम कहते हैं कि विद्वान् उत्क्रान्तिके अनन्तर अर्चिको प्राप्त होता है इहां अर्चि नाम अग्निका है आर्चिसे अहको प्राप्त होता है अहसे शुक्लपक्षको प्राप्त होता है शुक्लपक्षसे उत्तरायणको प्राप्त होता है उत्तरायणसे संवत्सरको प्राप्त होता है संवत्सरसे आदित्यको प्राप्त होता है ऐसे श्रुति कहती है; परंतु इहां ऐसे जानना चाहिये कि संवत्सरसे वायुको प्राप्त होके आदित्यको प्राप्त होता है; काहेतें ? "स वायुलोकम्" इस श्रुतिके विषे अविशेष करके वायुका पाठमात्रही है परंतु अन्य श्रुति विशेष करके कहती है कि इस लोकसे प्राप्त भये उपासकको वायु अपने आत्मामें रथचक्रके छिद्रके तुल्य छिद्र देताहै तिस छिद्रद्वारा आदित्यको प्राप्त होता है इति ॥ २ ॥

तडितोऽधिवरुणः सम्बन्धात ॥ ३ ॥

इस सूत्रके–तडितः १ अधिवरुणः २ संबंधात् ३ यह तीन पद हैं ॥ आदित्यसे चंद्रमाको प्राप्त होताहै चंद्रमासे बिजलीको प्राप्त होताहै इहां बिजलीके उपरि वरुणका संबंध जानना अर्थात् बिजलीसे वरु-

णको प्राप्त होताहै इसी क्रमसे इंद्रलोक प्रजापतिलोक ब्रह्मलोककी प्राप्ति जाननी ॥ ३ ॥

आतिवाहिकस्तल्लिङ्गात् ॥ ४ ॥

इस सूत्रके–आतिवाहिकः १ तल्लिङ्गात् २ यह दो पद हैं ॥ तिन अर्चिरादिकोंके विषै संशय है कि यह मार्गके चिह्न हैं वा भोगभूमि हैं वा आतिवाहिक हैं? तहां कहते हैं कि आतिवाहिक हैं, काहेतें ? श्रुति कहती है कि जो ब्रह्मलोकको जाता है तिसको अमानव पुरुष लेजाता है सो अमानव पुरुष अर्चिरादिक है गमन करनेवालेको जो गमन करावै तिसका नाम आतिवाहिक है ॥ ४ ॥

उभयव्यामोहात्तत्सिद्धेः ॥ ५ ॥

इस सूत्रके–उभयव्यामोहात् १ तत्सिद्धेः २ यह दो पद हैं ॥ अर्चिरादि मार्ग जानेवाले स्वतंत्र नहीं रहते हैं, काहेतें ? देहके वियोगसे तिनके सर्व इंद्रिय संकुचित होजाते हैं औ अचेतन अर्चिरादिक भी स्वतंत्र नहीं हैं इसीसे अर्चिरादिकोंके अभिमानी देवता तिनको लेजाते हैं ॥ ५ ॥

वैद्युतेनैव ततस्तच्छ्रुतेः ॥ ६ ॥

इस सूत्रके–वैद्युतेन १ एव २ ततः ३ तच्छ्रुतेः ४ यह चार पद हैं ॥ जो अमानव पुरुष बिजलीके लोकमें लके आया है सोई बिजलीके लोकसे उपरि वरुणादिलोकद्वारा ब्रह्मलोकमें ले जाता है औ श्रुति भी कहती है कि ब्रह्मलोकमें जानेवालेको अमानवपुरुष लेजाताहै औ वरुणादिक अप्रतिबंधक होनेतें सहायक हैं ॥ ६ ॥

कार्यं बादरिरस्य गत्युपपत्तेः ॥ ७ ॥

इस सूत्रके–कार्यं १ बादरिः २ अस्य ३ गत्युपपत्तेः ४ यह चार पद हैं॥जो अर्चिरादिमार्गसे जातेहैं सो कार्यरूप अपरब्रह्मको प्राप्त होते हैं

वा मुख्यपरब्रह्मको प्राप्त होतेहैं? तहां कहतेहैं कि कार्यरूप सगुण अपरब्रह्मको प्राप्त होतेहैं ऐसे बादरि आचार्य मानताहै, काहेतें ? कार्य ब्रह्मको एक देशमें होनेतें गंतव्यत्वका संभव है औ अकार्यब्रह्मको सर्वगत होनेतें गंतव्यत्वका संभव नहीं ॥ ७ ॥

विशेषितत्वाच्च ॥ ८ ॥

इस सूत्रके-विशेषितत्वात् १ च २ यह दो पद हैं ॥ "ते तेषु ब्रह्मलोकेषु पराः परावतो वसन्ति " इस श्रुतिमें बहुवचन लोकशब्द आधारमें सप्तमी इत्यादि विशेषणों करके कार्यब्रह्मको विशेषित होनेतें कार्यब्रह्मही गमनका विषय है अवस्थाभेदसे कार्यब्रह्मके विषैही बहुवचनका संभव है औ श्रुतिका अर्थ यह है कि उपासक हैं सो ब्रह्मलोकके विषै दीर्घ आयुवाले हिरण्यगर्भके दीर्घ संवत्सरपर्यंत वसते हैं ८

कार्यके विषै ब्रह्मशब्दका प्रयोग नहीं होसकता, काहेतें ? समन्वयाध्यायमें सर्व जगत्का कारण ब्रह्म कहा है इस शंकाका समाधान कहते हैं ॥

सामीप्यात्तु तद्व्यपदेशः ॥ ९ ॥

इस सूत्रके--सामीप्यात् १ तु २ तद्व्यपदेशः ३ यह तीन पद हैं ॥ तु शब्द शंकाकी निवृत्तिके अर्थ है परब्रह्मके समीप होनेतें अपर कार्यके विषै ब्रह्म शब्दका प्रयोग है ॥ ९ ॥

कार्यब्रह्मकी प्राप्तिमें अनावृत्तिका श्रवण है सो समीचीन नहीं, काहेतें ? परब्रह्मसे अन्यत्र अनावृत्तिका संभव नहीं इस शंकाका समाधान कहते हैं ॥

कार्यात्यये तदध्यक्षेण सहातः परमभिधानात् ॥ १० ॥

इस सूत्रके-कार्यात्यये १ तदध्यक्षेण २ सह ३ अतः ४ परम् ५ अभिधानात् ६ यह छह पद हैं ॥ जब कार्यब्रह्मलोकका प्रलय प्राप्त होता है तब कार्यब्रह्मलोकमें सम्यक् ज्ञानको प्राप्त होके हिरण्यगर्भके

साथ इस कार्यब्रह्मलोकसे परे विष्णुके शुद्ध पदको प्राप्त होते हैं ऐसे क्रममुक्तिमें अनावृत्तिका अभिधान है ॥ १० ॥

स्मृतेश्च ॥ ११ ॥

इस सूत्रके--स्मृतेः १ च २ यह दो पद हैं ॥ इस अर्थको स्मृतिभी कहती है कि "ब्रह्मणा सह ते सर्वे संप्राप्ते प्रतिसञ्चरे॥ परस्यान्ते कृतात्मानः प्रविशन्ति परं पदम्" ॥ अस्या अर्थः । जब महाप्रलय प्राप्त होता है तब हिरण्यगर्भके अन्तमें ब्रह्मलोकनिवासी सम्यक् ज्ञानको प्राप्त होके सर्व ब्रह्माके साथही परमपदको प्राप्त होते हैं इति ॥ ११ ॥

परं जैमिनिर्मुख्यत्वात ॥ १२ ॥

इस सूत्रके--परम् १ जैमिनिः २ मुख्यत्वात् ३ यह तीन पद हैं ॥ यह पूर्वपक्षसूत्र है परब्रह्मको मुख्य होनेतें अर्चिरादिमार्गसे जानेवाले परब्रह्मकोही प्राप्त होते हैं ऐसे जैमिनि आचार्य मानता है ॥ १२ ॥

दर्शनाच्च ॥ १३ ॥

इस सूत्रके--दर्शनात् १ च २ यह दो पद हैं ॥ कठवल्लीके विषै परब्रह्मके प्रकरणमें कहा है कि जो सुषुम्ना नाडीद्वारा ऊपरको जाता है सो अमृतको प्राप्त होता है इति । सो अमृत परब्रह्मही है विनाशी कार्यब्रह्म अमृत नहीं है ॥ १३ ॥

न च कार्ये प्रतिपत्त्यभिसन्धिः ॥ १४ ॥

इस सूत्रके--न १ च २ कार्ये ३ प्रतिपत्त्यभिसंधिः ४ यह चार पद हैं ॥ प्रजापतिकी सभा औ वेश्मको मैं प्राप्त होऊं ऐसा मरण कालमें उपासकके संकल्प होताहै सो संकल्प कार्यब्रह्मकी प्राप्तिका नहीं किंतु परब्रह्मका प्रकरण होनेतें परब्रह्मकी प्राप्तिका है यह जैमिनिका पूर्वपक्ष है औ सिद्धान्तपक्ष "कार्यं बादरिः" इत्यादि सूत्र करके पूर्व कहा है सो जानना ॥ १४ ॥

अप्रतीकालम्बनान्नयतीति बादरायण उभ-यथाऽदोषात्तत्क्रतुश्च ॥ १५ ॥

इस सूत्रके–अप्रतीकालम्बनात् १ नयति २ इति ३ बादरायणः ४ उभयथा ५ अदोषात् ६ तत्क्रतुः ७ च ८ यह आठ पद हैं ॥ जो विकारका उपासना करते हैं तिन सबको अमानव पुरुष ब्रह्मलोकमें लेजाता है वा किसीको लेजाता है ? तहां कहते हैं कि जो अप्रतीककी उपासना करता है तिसको लेजाता है प्रतीककी उपासनावालेको नहीं लेजाता ऐसे दोनों प्रकार माननेमें कोई दोष नहीं अप्रतीककी उपासनावालेका नाम ब्रह्मक्रतु है तिसीको लोक ऐश्वर्य मिलता है ऐसे बादरायण आचार्य मानता है ब्रह्मकी उपासनाका नाम अप्रतीकउपासना है औ नाम वाक् मन इत्यादिकोंकी उपासनाका नाम प्रतीकउपासना है ॥ १५ ॥

विशेषं च दर्शयति ॥ १६ ॥

इस सूत्रके–विशेषम् १ च २ दर्शयति ३ यह तीन पद हैं ॥ नामादि प्रतीक उपासनाके विषे पूर्वपूर्वकी अपेक्षासे उत्तर उत्तरका फल विशेष है, काहेतें ? श्रुति कहती है कि नामसे वाक् श्रेष्ठ है वाक्से मन श्रेष्ठ है ऐसेही इनकी उपासना औ उपासनाका फल जानना चाहिये औ ब्रह्म एक है तिसकी उपासना औ उपासनाका फलभी एक है १६

इति श्रीमन्मौक्तिकनाथयोगिविरचितायां ब्रह्मसूत्रसारार्थप्रदीपिकायां चतुर्थाध्यायस्य तृतीयः पादः ॥ ३ ॥

चतुर्थाध्याये चतुर्थः पादः ।

सम्पाद्याविर्भावः स्वेन शब्दात् ॥ १ ॥

इस सूत्रके- सम्पाद्याविर्भावः १ स्वेन २ शब्दात् ३ यह तीन पद हैं ॥ श्रुति कहती है पर ब्रह्मको जाननेवाला इस शरीरसे उठके

परंज्योतिको प्राप्त होके अपने रूपकरके ब्रह्मभावको प्राप्त होता है इति। तहां संशयहै कि स्वर्गादिकोंकी न्याईं आगंतुक विशेषरूप करके प्राप्त होता है वा आत्मामात्र करके प्राप्त होता है? तहां कहते हैं कि "स्वेन रूपेणाभिनिष्पद्यते" इस श्रुतिके विषै स्वशब्दका प्रयोग होनेतें केवल आत्ममात्र करके ही प्राप्त होता है धर्मान्तर करके नहीं १॥

मुक्तप्रतिज्ञानात् ॥ २ ॥

इस सूत्रका--मुक्तप्रतिज्ञानात् १ यह एकही समस्त पद है॥ जागरितमें देहके आन्ध्यादि धर्म करके युक्त रहता है औ स्वप्नमें पुत्रादिशोकसे रुदन करतेकी न्याईं रहता है औ सुषुप्तिमें विनष्टकी न्याईं रहता है औ मोक्षमें सर्व बन्धसे विनिर्मुक्त शुद्धस्वरूप करके स्थित रहताहै इतनी जागरितादि अवस्थात्रयसे मोक्षमें विशेषता है काहेतें "स्वेन रूपेणाभिनिष्पद्यते स उत्तमः पुरुषः" इत्यादि श्रुतिसे मुक्तात्माका प्रतिज्ञान होता है जो अपने स्वरूपकरके ब्रह्मभावको प्राप्त होता है सो उत्तम पुरुष है इति श्रुत्यर्थः ॥ २ ॥

आत्मा प्रकरणात् ॥ ३ ॥

इस सूत्रके--आत्मा १ प्रकरणात् २ यह दो पद हैं ॥ ज्योतिश्शब्दको कार्यरूप भौतिक ज्योतिके विषै रूढ होनेतें ज्योतिको प्राप्त होके ब्रह्मभावको प्रात नहीं होसकता ऐसे पूर्वपक्षी कहता है सो ठीक नहीं, काहेतें ? आत्माका प्रकरण होनेतें ज्योतिश्शब्दसे इहां आत्माकाही ग्रहण है ॥ ३ ॥

अविभागेन दृष्टत्वात् ॥ ४ ॥

इस सूत्रके--अविभागेन १ दृष्टत्वात् २ यह दो पद हैं ॥ जो परब्रह्मको प्राप्त होता है सो परब्रह्मसे पृथक् स्थित रहता है वा अविभाग करके स्थित रहता है? तहां कहते हैं कि अविभाग करके स्थित रहता है,

काहेतें ? तत्त्वमसि अहं ब्रह्मास्मि इत्यादि महावाक्य अविभाग करकेही आत्माको दिखाते हैं॥ ४ ॥

ब्राह्मेण जैमिनिरुपन्यासादिभ्यः ॥ ५ ॥

इस सूत्रके-ब्राह्मेण १ जैमिनिः २ उपन्यासादिभ्यः ३ यह तीनपद हैं॥ यह आत्मा पापरहित है सत्यकाम है सत्यसंकल्प है इत्यादिउपन्यास होनेतें अपहतपाप्मत्व सत्यकामत्व सत्यसंकल्पत्व सर्वज्ञत्व इत्यादि ब्राह्मरूप करके ब्रह्मभावको प्राप्त होता है ऐसे जैमिनि आचार्य मानता है ॥ ५ ॥

चिति तन्मात्रेण तदात्मकत्वादित्यौडुलोमिः ॥ ६ ॥

इस सूत्रके--चिति १ तन्मात्रेण २ तदात्मकत्वात् ३ इति४ औडुलोमिः ५ यह पांच पद हैं ॥ यद्यपि अपहतपाप्मत्व सत्यकामत्वादि धर्मोंका भेद करके निर्देश किया है तथापि यह धर्म अत्यन्त असत् है पाप्मत्वादिकोंकी निवृत्तिमात्र चैतन्यही आत्माका स्वरूप है तिस स्वरूप करके ही ब्रह्मभावको प्राप्त होता है ऐसे औडुलोमि आचार्य मानता है ॥ ६ ॥

एवमप्युपन्यासात्पूर्वभावादविरोध बादरायणः ॥७॥

इस सूत्रके-एवम् १ अपि २ उपन्यासात् ३ पूर्वभावात ४ अविरोधम् ५ बादरायणः ६ यह छह पद हैं ॥ ऐसे पारमार्थिक चैतन्यमात्र स्वरूपका अंगीकार भी है परंतु व्यवहारकी अपेक्षासे पूर्वउपन्यासादिकों करके प्राप्तभये ब्राह्मऐश्वर्यका विरोध नहीं ऐसे बादरायण आचार्य मानता है ७ ॥

संकल्पादेव तु तच्छ्रुतेः ॥ ८ ॥

इस सूत्रके-संकल्पात् १ एव २ तु ३ तच्छ्रुतेः ४ यह चार पद हैं ॥ ऐसे परविद्याका फल कहा अब अपराविद्याका फल कहते हैं-हार्द विद्याके विषै श्रवण होता है कि जब उपासक पितृलोककी

कामना करता है तब इसके संकल्पसेही पितर उठते हैं इति । तहां संशय है कि केवल संकल्पही पित्रादिकोंके समुत्थानका हेतु है वा निमित्तान्तर करके सहित हेतु है? तहां कहते हैं कि केवल संकल्पही हेतु है, काहेतें? "संकल्पादेवास्य पितरः समुत्तिष्ठन्ति" यह श्रुति केवल संकल्पसेही पित्रादिकोंका समुत्थान कहती है ॥ ८ ॥

अत एव चानन्याधिपतिः ॥ ९ ॥

इस सूत्रके–अतः १ एव २ च ३ अनन्याधिपतिः ४ यह चार पद हैं ॥ अवन्ध्यसंकल्पवाला होनेतें विद्वान् अनन्याधिपति होता है अर्थात् इसका अन्य कोई अधिपति नहीं होता है ॥ ९ ॥

अभावं बादरिराह ह्येवम् ॥ १० ॥

इस सूत्रके–अभावम् १ बादरिः २ आह ३ हि ४ एवम् ५ यह पांच पद हैं ॥ विद्वान्के संकल्पसेही पित्रादिकोंका समुत्थान होता है इस कहनेसे संकल्पका साधन मन सिद्ध भया परंतु ऐश्वर्यप्राप्ति के अनंतर विद्वान्के शरीर इन्द्रिय होते हैं वा नहीं? तहां कहते हैं कि नहीं होते हैं ऐसे बदरिआचार्य मानता है, काहेतें? श्रुति कहती है कि जो ब्रह्मलोकमें जाता है सो मन करकेही सर्व कामोंको देखता है और मानता है ॥ १० ॥

भावं जैमिनिर्विकल्पामननात् ॥ ११ ॥

इस सूत्रके–भावम १ जैमिनिः २ विकल्पामननात् ३ यह तीन पद हैं ॥ जैसे मुक्तके मन रहता है तैसे शरीर इन्द्रियभी रहते हैं ऐसे जैमिनि आचार्य मानता है, काहेतें? "सएकधा भवति त्रिधा भवति" इत्यादि शास्त्र सो मुक्त एक प्रकारका होता औ है तीन प्रकारका होता है ऐसें अनेक प्रकारका विकल्प कहता है औ शरीरभेदके विना अनेक प्रकारता बने नहीं ॥ ११ ॥

द्वादशाहवदुभयविधं बादरायणोऽतः ॥ १२ ॥

इस सूत्रके--द्वादशाहवत् १ उभयविधम् २ बादरायणः ३ अतः ४ यह चार पद हैं ॥ जैसे उभयलिङ्ग श्रुतिका दर्शन होनेतैं द्वादशाह सत्र होता है औ अहीन होता है तैसे इहांभी उभयलिङ्ग श्रुतिका दर्शन होनेतैं उभयविधही श्रेष्ठ है ऐसे बादरायण आचार्य मानता है जब सशरीरताका संकल्प करता है तब सशरीर होता है औ जब अशरीरताका संकल्प करता है तब अशरीर होता है ॥ १२ ॥

तन्वभावे सन्ध्यवदुपपद्यते ॥ १३॥

इस सूत्रके-तन्वभावे १ सन्ध्यवत् २ उपपद्यते ३ यह तीन पद हैं॥ जब अशरीर होता है तब जैसे स्वप्नस्थानमें शरीर इन्द्रिय विषयके न होनेतैंभी ज्ञानमात्रसे पित्रादिकोंकी कामनावाला होता है तैसे मोक्षमेंभी जानलेना ॥ १३ ॥

भावे जाग्रद्वत् ॥ १४ ॥

इस सूत्रके-भावे १ जाग्रद्वत् २ यह दो पद हैं॥जब सशरीर होता है तब जैसे जाग्रत्में विद्यमान पित्रादिकोंकी कामनावाला होता है तैसे मोक्षमेंभी होता है ॥ १४ ॥

प्रदीपवदावेशस्तथाहि दर्शयति ॥ १५ ॥

इस सूत्रके-प्रदीपवत् १ आवेशः २ तथा ३ हि ४ दर्शयति ५ यह पांच पद हैं ॥ जो यह कहा कि जैमिनिके मतमें मुक्तपुरुषके एक प्रकारका औ अनेक प्रकारका शरीर होता है तहां संशय है कि अनेक प्रकारके शरीर दारुयंत्रकी न्याईं निरात्मक होतेहैं वा सात्मक होतेहैं ? तहां कहतेहैं कि सात्मक होतेहैं, काहेतैं ? जैसे एक प्रदीप अनेक वर्त्तिके संयोगसे अनेक प्रदीपभावको प्राप्त होता है तसे एक विद्वान् अपने ऐश्वर्यके योगसे अनेक शरीरभावको प्राप्त होता है ऐसेही श्रुति कहती

है "स एकधा भवति त्रिधा भवति पञ्चधा सप्तधा नवधा" इति॥१५
मुक्तपुरुषके अनेक शरीर प्रवेशादि रूप ऐश्वर्य नहीं हो सकता काहेतें "न तु तद्द्वितीयमस्ति" इत्यादि श्रुतिविशेष विज्ञानका अभाव कहती है इस शंकाका समाधान कहते हैं ॥

स्वाप्ययसंपत्त्योरन्यतरापेक्षमाविष्कृतं हि ॥ १६ ॥

इस सूत्रके--स्वाप्ययसंपत्त्योः १ अन्यतरापेक्षम् २ आविष्कृतम् ३ हि ४ यह चार पद हैं ॥ कहीं सुषुप्ति अवस्थाकी अपेक्षासे औ कहीं कैवल्य मुक्तिकी अपेक्षासे विशेष विज्ञानका अभाव कहा है क्रम-मुक्तिकी अपेक्षासे नहीं ॥ १६ ॥

जगद्व्यापारवर्ज्जं प्रकरणादसन्निहितत्वाच्च ॥ १७ ॥

इस सूत्रके--जगद्व्यापारवर्ज्जम् १ प्रकरणात् २ असन्निहितत्वात ३ च ४ यह चार पद हैं ॥ जो सगुणब्रह्मकी उपासनासे मन करके सहित ईश्वरभावको प्राप्त होते हैं तिनका ऐश्वर्य स्वतंत्र होता है वा परतंत्र होता है? तहां कहते हैं कि जगतकी उत्पत्ति स्थिति प्रलयरूप व्यापारको वर्जके अन्य सर्व अणिमादि ऐश्वर्य स्वतंत्र होता है औ जगत्का उत्पत्त्यादि व्यापार नित्यसिद्ध ईश्वरके अधीन है, काहेतें ? उत्पत्त्यादि प्रकरण ईश्वरका है औ ईश्वर अन्य पुरुषोंके असन्निहित है ईश्वरको जानके ही अन्य पुरुष अणिमादि ऐश्वर्यको प्राप्त होता है १७

प्रत्यक्षोपदेशादिति चेन्नाधिकारिकमण्डलस्थोक्तेः॥१८॥

इस सूत्रके--प्रत्यक्षोपदेशात् १ इति २ चेत् ३ न ४ आधिकारिक मण्डलस्थोक्तेः ५ यह पांच पद हैं 'प्राप्नोति स्वाराज्यम्' इत्यादि प्रत्यक्ष उपदेश होनेतें विद्वान्का ऐश्वर्य स्वतंत्र होता है यह कहना ठीक नहीं,

काहेतें ? जो सवितृमण्डलादि विशेष स्थानके विषै आधिकारिक परमेश्वर स्थित है तिसके अधीन स्वाराज्यकी प्राप्ति कही है ॥ १८ ॥

विकारावर्त्ति च तथाहि स्थितिमाह ॥ १९ ॥

इस सूत्रके-विकारावर्त्ति १ च २ तथा ३ हि ४ स्थितिम् ५ आह ६ यह छह पद हैं ॥ सवितृमण्डलमें स्थित जो नित्यमुक्त परमेश्वर है तिसका रूप केवल विकारवर्त्ति नहीं है किंतु निर्विकार है काहेतें ? "पादोऽस्य सर्वा भूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवि" यह श्रुति परमेश्वरके सविकार औ निर्विकार इन दोनों रूपोंकी स्थितिको कहती है औ इस श्रुतिका अर्थ पूर्व कर आये हैं ॥ १९ ॥

दर्शयतश्चैवं प्रत्यक्षानुमाने ॥ २० ॥

इस सूत्रके-दर्शयतः १ च २ एवम् ३ प्रत्यक्षानुमाने ४ यह चार पद हैं ॥ ऐसेही परमज्योति परमात्माके रूपको श्रुति स्मृति कहती है "न तत्र सूर्यो भाति न चन्द्रतारकं नेमा विद्युतो भान्ति कुतोयमग्निः" यह श्रुति है औ "न तद्भासयते सूर्यो न शशांको न पावकः" यह गीता स्मृति है तिस परमात्मस्वरूपके विषै सूर्य चन्द्रमा तारा औ यह बिजली इनमें कोई भी नहीं प्रकाशता है तो अल्पतेजवाला अग्नि कैसे प्रकाशै इति श्रुत्यर्थः । औ यही अर्थ स्मृतिका जानना ॥ २० ॥

भोगमात्रसाम्यलिंगाच्च ॥ २१ ॥

इस सूत्रके-भोगमात्रसाम्यलिङ्गात् १ च २ यह दो पद हैं ॥ जो उपासक ब्रह्मलोकमें जाता है तिसका ऐश्वर्य स्वतंत्र नहीं है,काहेतें ? तिसका भोगमात्रही अनादिसिद्ध ईश्वरके भोगके समान है ऐसे श्रवण होता है ॥ २१ ॥

जो उपासकका ऐश्वर्य स्वतंत्र नहीं है तो ऐश्वर्यको अन्तवाला होनेतें उपासककी आवृत्ति होनी चाहिये इस शंकाका समाधान कहते हैं भगवान् सूत्रकार ॥

अनावृत्तिः शब्दादनावृत्तिः शब्दात् ॥ २२ ॥

इस सूत्रके-अनावृत्तिः १ शब्दात् २ अनावृत्तिः ३ शब्दात् ४ यह चार पद हैं ॥ श्रुति कहती है कि जो नाडीरश्मिके संबंधद्वारा देवयानमार्ग करके ब्रह्मलोकको जाता है तिसकी आवृत्ति नहीं होती है किंतु ब्रह्मलोकके भोग भोगके ब्रह्माके साथही मुक्त होता है इति। इहां "अनावृत्तिः शब्दादनावृत्तिः शब्दात्" यह सूत्रका अभ्यास है सो इस शास्त्रकी परिसमाप्तिको द्योतन करता है ॥ २२ ॥

इति श्रीमद्योगिवर्य्ययमुनानाथपूज्यपादशिष्यश्रीमन्मौक्तिकनाथयोगिविरचितायां ब्रह्मसूत्रसारार्थप्रदीपिकायां चतुर्थाध्यायस्य चतुर्थः पादः ॥ ४ ॥

इति चतुर्थोऽध्यायः ४.

पुस्तक मिलनेका ठिकाना-

खेमराज श्रीकृष्णदास,

"श्रीवेङ्कटेश्वर" स्टीम् प्रेस-बंबई.